सुच्चे मन कहानियाँ

सम्पादक : शीतांशु भारद्वाज

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

19501
R.R.M.P

सुच्चेमन की कहानियाँ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुच्चेमन की कहानियाँ

सम्पादन संकलन
डॉ. शीतांशु भारद्वाज

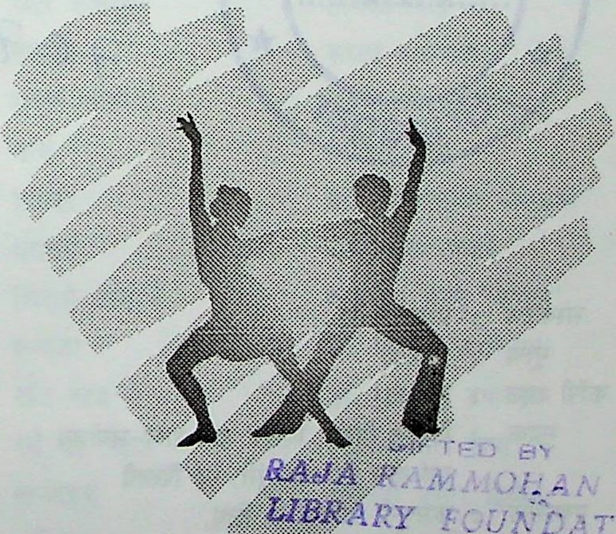

RAJA RAMMOHAN ROY
LIBRARY FOUNDATION
CALCUTTA-700068.

पराग प्रकाशन
नई दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

SPS Central Library
Acc No. 70781
Srinagar

808.831
B47S
70781

संस्करण : प्रथम 2000
मूल्य : 200.00
कॉपी राइट : सुरक्षित
मुद्रक : हिमांशु प्रिंटर्स, दिल्ली द्वारा शब्द-संयोजन
एवं ताज प्रेस मायापुरी, नई दिल्ली
प्रकाशक : फाल्गुनी फीचर्स के लिए,
पराग प्रकाशन, आई 2/16,
मेन अंसारी रोड़, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002, दूरभाष : 3280234

Sucche Man Ki Kahaniyan
(A Collection of Hindi Short Stories Based on Purity)
Compiled & Edited by Dr. Sheetanshu Bhardwaj

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुक्रम

1.	आमने-सामने खड़े सपने	सिम्मी हर्षिता	9
2.	बंद लिफाफा	कुमारी नीर 'शबनम'	26
3.	सनराइज व्यू	डॉ. अजरा 'नूर'	33
4.	अनुभूति	डॉ. आदर्श मदान	42
5.	अनुगामिनी	डॉ. अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता'	46
6.	मैं अब नहीं आऊँगा...., तनु...	सैली बलजीत	52
7.	प्यार की महक	कृष्ण मनु	62
8.	कहाँ हो तुम?	नीलप्रभा भारद्वाज	72
9.	प्यार का पुल	निर्मला सिंह	80
10.	तपस्या	सरला अग्रवाल	87
11.	संपूर्ण समर्पण	सुषमा चौहान 'किरण'	106
12.	फर्ज	निर्मला सिंह	112
13.	प्रतीक्षा	डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी	118
14.	व्रतभंग	कांतिलाल ठाकरे	126
15.	चिट्ठी आई है	कमलेश भटट् 'कमल'	131
16.	रूपांतर	डॉ. विमला उपाध्याय	140
17.	खंड-खंड में	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय	148
18.	दर्द का रिश्ता	किशन लाल शर्मा	157
19.	सम्मोहन	भगवती प्रसाद द्विवेदी	166
20.	एग्रीमेन्ट	चन्द्रभान राही	173
21.	टूटते इंद्रधनुष	कु. अनिता सिंह चौहान	182
22.	बेचारी विभा दी	सुमन शर्मा	190
23.	बोझ	भगवान अटलानी	196
24.	कहानीकारों का परिचय		207

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपनी बात

प्रिय पाठक !

'फाल्गुनी फीचर्स' की चौथी प्रस्तुति पर मैं आप सभी का अभिनंदन करता हूँ। प्रस्तुत संकलन की अधिकांश कहानियाँ 'मन' पर केंद्रित हैं। सुच्चे मन को हम 'मन चंगा तो कठौती में गंगा !' का पर्याय कह सकते हैं। इस मन के अंदर अनेक भावों का उदय-अस्त होता रहता है। लेखक मित्रों से हमने मन के इसी अंतरंग प्रेम-पक्ष को उजागर करने का सविनय आग्रह किया था। प्यार वह तत्त्व है जो मानवता को रोशनी प्रदान किया करता है। इस प्यार के भी अनेक रूप-रंग हैं। कभी-कभी तो यह उलझ कर ही रह जाता है। इस प्रकार आप इस संकलन में इसके विविध वर्णी रूपों से साक्षात्कार कर पाएंगे।

यहां एक-दो कहानियों से उद्धरण दे कर हम मन की इस शुचिता को सुस्पष्ट करना चाहेंगे। 'भूलें भी भली बन जाती हैं, हँसी बन जाती हैं, यदि वे पकड़ में नहीं आतीं। पर मेरी भूल संगीन जुर्म बन गई थी क्योंकि वह नजर में आ गई थी।—'

> 'उस प्रेम की जगह घर के पिछले दरवाजे पर थी—मेघा का प्यार सामने द्वार पर खड़ा है घर के अंदर आने के लिए।'
>
> (आमने-सामने खड़े सपने : सिम्मी हर्षिता)
>
> 'उसने (अनुभूति) ने बहुत चाहा था कि काश ! उसे कोई स्त्री के नाते नहीं, देह के लिए नहीं, कामवासना के लिजलिजे अहसासों से नहीं बल्कि बौद्धिक स्तर पर कोई सोचे और चाहे। कृष्ण और द्रौपदी में भी तो ऐसा ही सख्य भाव था।'
>
> (अनुभूति : डॉ० आदर्श मदान)

प्रस्तुत संकलन में स्थापित लेखकों के साथ-साथ उदीयमान कथाकारों को भी अभिव्यक्ति का अवसर दिया गया है। संपादक उस रसोइये के सदृश्य हुआ करता है जो अभ्यागतों के समक्ष विभिन्न प्रकार के व्यंजन परोसा करता है। उन व्यंजनों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का वास्तविक स्वाद व्यक्ति विशेष के अनुरूप भी हो सकता है। अतः इनका आस्वाद आप ही ले पाएंगे।

हार्दिक मंगलकामनाओं के साथ !

सदैव आपका ही,
(डॉ० शीतांशु भारद्वाज)

पो० बॉ० नं० 17,
138, विद्या विहार,
पिलानी-333031 (राजस्थान)
फोन : 01596-43184

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आमने-सामने खड़े सपने

• सिम्मी हर्षिता

'कहीं रिश्ते की बात चलाने से पहले मेघा से तो पूछ लें ! कहीं कोई उसकी पसंद ?'—मैं सलाह दे रही हूं ।

सुनकर वह मुस्करा रहे हैं विस्मय से—'क्या सच ही हमारा बेटा इतना बड़ा हो गया है कि हमारे फैसले से पहले ही फैसले का फासला तय कर ले ?'

'यह बात मुझसे ना पूछकर अपनी बेटी से पूछें न ! मैं नहीं चाहती कि एक प्रेमी उसके अंदर जीता रहे और बाहर वाले पति-पुरुष को ताउम्र झुठलाता-ललकारता रहे !'

'तुमने तो ऐसी बातें कभी नहीं की ! तर्क-वितर्क से दूर चुपचाप परंपरागत ढंग से ही जीते हुए देखा है ।'

'आज वक्त है कि हम ऐसी बातें कह-सुन लें कोई निणय लेने से पहले । अकारण ही जीवन को नाटक बनाने से क्या लाभ ? सारी नाटकबाजी प्रेम के ही आस-पास क्यों हो ? लोग हजार तरह की बुराइयाँ हजम कर जाते हैं, पर प्रेम के नाम पर बिदक जाते हैं और कई तरह के जोड़-घटाव करने बैठ जाते हैं ।'

'वाह ! प्रेम की ऐसी वकालत तो कभी देखी-सुनी नहीं !' मेघा के पापा के अंदर बैठा पति एकाएक चौंक उठा है—'यदि तुमसे किसी ने शादी से पहले पूछा होता तो ?'

"तो आज आप मेरे पति ना होते ! क्या मैं यह उत्तर दे सकती हूँ ?"

'तो क्या ?'

'तो क्या कहती तुम ?'

'आज मुझसे नहीं—मेरी बेटी से पूछें न कि वह क्या चाहती है ? आज उसका दिन है—उसका वक्त है ! मुझे क्यों व्यर्थ घसीटते हैं ? अब समय बदल गया है ।'

'पर प्रेम नहीं बदला—प्रेम का स्वभाव नहीं बदला । वह तो हर युग में होता आया है । ना उसने दीवारों की परवाह की—न हत्यारों की !'

'पहले वह गूंगा था । अब उसे जुबान मिल गई है । इसलिए उसे बोलने का अवसर दें । नहीं तो सिर पर चढ़कर बोलेगा तो हमें अपना अपमान महसूस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होगा ।'

मेघा के पापा ने हांक लगाई है—'मेघा बेटा ! इधर तो आना ।'

'बेटा नहीं, बेटी ! आज अपनी बेटी से बात करनी है ।'

'मेघा बेटी, तुम्हारी मम्मी कहती हैं कि कहीं रिश्ते की बात शुरू करने से पहले तुम्हारी पसंद पूछ लें ! क्या तुम्हारी पसंद पूछने की जरूरत है हमें ?'

'पापा ! मैंने कामरूप के बारे में मम्मी को सब कुछ बता दिया है । एक बार उनके घर भी गई थी । कामरूप और उसके मम्मी-पापा बड़े अच्छे हैं !'

'अच्छा ! तो खिचड़ी पहले से पकी हुई है और मुझसे कहा जा रहा है छौंक लगाने को ! वाह ! प्रेम महाशय ने हमारे घर में भी सेंध लगा दी और हमें पता ही ना चला !'

मेघा के पापा मुस्कराते सहज भाव से सुन रहे हैं मेघा की सालों लंबी प्रेमयात्रा को और मैं देख रही हूँ अपने अंदर दफन जूतों को ! क्या मैं भी सुना दूँ मेघा के पापा को एक छोटी-सी कहानी ? क्या वे इसी तरह से मुस्करा सकेंगे ?

वह भी तो दिनों जैसा ही एक दिन था—पर उस दिन नियति मेरा पीछा कर रही थी ! एक पगलाया-सा कुत्ता न जाने कहाँ से छलांगता हुआ आया और बेभाव भौंकने लगा । मैं दौड़ी तो वह मेरे पीछे लग गया । चीख-पुकार सुनकर उस राहगीर ने पत्थर मारकर कुत्ते को भगा दिया था और डरती-रोती हुई मुझ को स्कूल के रास्ते तक पहुँचा दिया था । अगले दिन राह में पड़े पत्थर पर ही पैर जा चढ़ा और ऐसा मुड़ा कि न उठा जाए—न चला जाए । आज फिर वही राहगीर मेरे सामने उलझा-सा खड़ा था । उस अजनबी ने सावधानी से थामकर घर पहुँचा दिया था और इसी बीच मेरा नाम-धाम और पढ़ाई आदि के बारे में भी पूछ लिया था और अपने बारे में बता दिया था । मोच के दर्द के साथ उसकी सोच मरहम-पट्टी की तरह लिपटी रही थी । जब फिर उस सड़क पर जाना हुआ था तो उसने परिचित की तरह पुकारा था—'सुंदरा ! आज फिर ऐसा कुछ मत कर बैठना कि तुम्हें स्कूल या घर पहुँचाना पड़े । आज कालेज मुझे समय पर पहुँचना है । लगता है, इस रास्ते के ईट-पत्थरों से तुम्हारी कोई पुरानी दोस्ती है ।"

वह चला गया—पर उसके वे मुस्कराते-से शब्द पीछे छूट गए और रह-रहकर मुझे चौंका देते । अपने नाम को वर्षों से सुनती आ रही थी—पर उस दिन लगा कि पहली बार सुन रही हूँ और सुनना थम नहीं रहा । उस एक बुलाहट ने ऐसी घबराहट में डाला कि स्कूल जाने का अर्थ—उस सड़क का अर्थ और अपने होने का अर्थ एक ही पल में बदल गया था । वे अजनबी-से पल जैसे आज भी ज्यों के त्यों खड़े हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मन पीपल का पत्ता बन गया था—हर पल डाँवाडोल और कांपता हुआ ! मुस्कान और बतरस से रची वह पहचान खत में और खत सपने में ढलते चले गए...... ।

इधर एक रिश्ता रास्ते में बुना जा रहा था और उधर एक रिश्ते की बात घर में चल रही थी । माँ-बाप और बहन ने मुझे देखकर 'हाँ' कह दी थी और अब लड़का भी एक झलक देख लेना चाहता था। वह ऐसा ही दबा-ढका-सा वक्त था कि लड़की को लड़का बहाने से, दूर से देखकर ही तसल्ली कर ले । लड़के की बहन ने बनने वाले एक नए-से रिश्ते के भाव से, विदा होते समय मेरा हाथ थामकर ढेरों सवाल एक साथ पूछ लिये थे—"तुम्हारा स्कूल जाने का रास्ता कौन-सा है ? तुम्हें कौन-सा रंग पसंद है ? तुम कल किस रंग के कपड़े पहनकर जाओगी ? मेरा भाई तुम्हें देखना चाहता है !" उन लोगों की "हाँ" से मुझे इतनी चिंता नहीं हुई थी जितनी इन सवालों से । मैंने बता दिया था रास्ता और कह दिया था—काला रंग ! इसमें झूठ कुछ भी नहीं था। काले रंग के तरह-तरह के रूप मुझे पसंद थे ही । सुनकर वह बोली—"यह भी कोई रंग है ?"

और मैं कहना चाहती थी—किसी को सपने के तोड़ने का भला यह भी कोई ढंग है ?

गली से मिलती सड़क के मुहाने पर एक युवक खड़ा काले रंग की प्रतीक्षा कर रहा था और मेरी उदासी तथा डर से उसे कुछ समझाने की कोशिश कर रहे थे— 'देखो, जिसकी राह तुम देख रहे हो, वह मैं नहीं हो सकती । तुम कोई और लड़की पसंद कर लो और मुझे अपनी राह पर जाने दो । तुम अभी निर्णायक की स्थिति में हो । इसलिए तुम्हारे सामने मुझमें या किसी दूसरी लड़की में कोई अंतर नहीं है—पर मैं उस डूबी हुई निर्णीत मन:स्थिति में हूँ कि अपने सपने और तुममें मेरे लिए जमीन-आसमान का अंतर है । मुझे मेरे सपने के पास जाने दो—उसके संग रहने दो ! पूछ लो इस गली से और उस सड़क से— इन्हें हमारे बारे में सब कुछ पता है क्योंकि इनसे दूर हम कभी कहीं गए ही नहीं ! तुम हमारे इस राह चलते सपने को मत रोको । हम सदा तुम्हारे आभारी रहेंगे ।"

उन कुछ कदमों में मीलों लंबे तूफान को पार किया था । हम अपने इस तर्क से तब कितने उल्लसित थे कि कितनी आसानी से एक संकट आते-आते टल गया है । तूफान ने अपनी दिशा बदल ली है । काले रंग वाली लड़की तो आई ही नहीं ! और जब आई ही नहीं तो बात खत्म हो गई न ! तब मन हुआ था—कहीं चैन से बैठकर बातों की दावत करें ! उस खत्म हुई पराई बात से कभी खत्म न होने वाली अपनी बातों का रेशमी दुशाला बुनें !

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रिश्तेदारी में किसी की शादी आने वाली थी और आगामी रविवार को माँ ने कपड़े की खरीदारी का कार्यक्रम बनाया था। मुन्ना-मुन्नी ने साथ जाने की जिद की थी और मैंने घर रहकर परीक्षा की तैयारी की चिंता जताई थी। हमारे मन में एक निरंतर स्थगित होते बातूनी लालच ने सिर उठाया था और हम बिना अधिक सोचे-समझे उसमें शामिल हो गए थे।

दिन के लगभग तीन बज रहे थे। माँ बच्चों के साथ बाजार की राह जा चुकी थी और प्रकाश मेरे सामने खड़ा था। हम एक दूसरे को सहमे हुए देख रहे थे। तब प्रकाश ने कहा था—"सुंदरा ! तुम तो डर रही हो ! मैं चला जाऊँ ?"

"तुम भी तो डर रहे हो। जब बरात लेकर आओगे, तब भी क्या इसी तरह डरते हुए पिछले दरवाजे से आओगे ?"

"चल हट ! तब तो बहुत-से लोग साथ होंगे तो डर क्यों लगेगा ? धूमधाम से अगले द्वार से आऊँगा.... !" साझी हँसी के साथ अब हम सपने के उस घर में थे जो केवल हमारा था। हम रसोई में मिलकर चाय बना रहे थे—वह सब कुछ प्लेटों में सजा रहे थे जो मैंने कल बड़े चाव से बनाया था। हम सब कुछ लाकर बैठकघर की दरी पर बैठ गए थे।

हमारी वे बातें ! हमारी वह हँसी ! जैसे कि टीचर की आँखों से ओझल होकर पिछली बेंच पर बैठे हों और इमली खा रहे हों ! चाय ज्यों की त्यों सामने पड़ी थी और हम साथ-साथ जीने-मरने की कसमें खा रहे थे। हम अपने सपने की पतंग में ऐसी पक्की डोर बांध रहे थे जो ऊँची उड़ान भर सके और कोई उसे काट न सके।

मैंने पूछा था— "तुम्हारी अम्मी और बापू तुम्हारी बात मान जाएँगे क्या ?"

"अम्मी को मना लूँगा, पर बापू की कठोरता को पिघलाना कठिन होगा।" मैं बापू के हाथों अपने ही जूतों से जूते खाकर बड़ा हुआ हूँ। इसीलिए मुझे अपने बूटों से ऐसी चिढ़ हो गई है कि घर-बाहर इस मरु मुसीबत को उतारे बिना मुझे चैन नहीं आता। मुझे डर है क़ि मेरा जूते-मार बाप विवाह के मामले में भी मुझे अपनी ही इच्छा का जूता मारेगा। और तुम्हारे माता-पिता ?"

तभी मेरे कान खड़े हो गए—'लगता है, किसी ने गेट खोला है !' मेरी साँसों का वहीं थम जाना और सुरक्षा की तलाश में पहली बार प्रकाश का हाथ थाम लेना !

"कोई कितना ही दरवाजा खटखटाए—हम नहीं खोलेंगे। आने वाला अपने आप चला जाएगा।" प्रकाश ने सुझाया था।

और तभी आवाज आई—"सुंदरा ! दरवाजा खोल जल्दी से !"

"अरे ! ये तो माँ है ! पर इतनी जल्दी कैसे लौट आई ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"मैं जा रहा हूँ।" मेरा सपना कह रहा था—मेरे हाथ को अपने होठों की छुअन से साथ लिये जा रहा था—और विदा में बार-बार संबोधित कर रहा था— सुंदरा ! मैं अम्मी से कहूँगा। तुम चिंता न करना, सुंदरा !" इस पुकार ने जैसे मेरी गति और मति को छीन लिया था। अंदर की इस आवाज के सामने बाहर की कोई आवाज सुनाई नहीं दे रही थी। मैं रोई-सी खड़ी रह गई थी। मेरी आत्मा का अतिथि पहली बार आया था और बिना कुछ भी ग्रहण किए चला जा रहा था। पता नहीं फिर कब देखना-मिलना होगा ? समय से पहले ही संध्या का बोझिल अंधेरा मेरे अंदर भर गया था।

इस बार माँ द्वार को धक्का देते हुए चिल्लाई थी—"अरी ओ मरी ! क्या पढ़ने के बदले खा-पीकर सो गई है ? देख, रिक्शे से गिर पड़ने के कारण मुन्ने का क्या हाल हो गया है ! डॉक्टर से पट्टी करवाकर आ रहे हैं !"

अंदर आते ही माँ का प्रश्न गरजा था—"अरी ओ मरी ! तू तो जाग रही है अच्छी-भली यहाँ बैठी चाय सुड़कती हुई ! फिर दरवाजा खोलने में देर क्यों की ?"

"रसोई में बरतन साफ कर रही थी।"

"तू तो एक है—फिर दूसरा प्याला किसलिए है ?"

"चाय अधिक बन गई थी।"

"इतनी प्लेटें क्यों सजा रखी है ? अरी ओ मरी ! पिछला दरवाजा क्यों खुला हुआ है ? कौन आया-गया है वहां से ? जब तू घर में अकेली थी तो दरवाजा क्यों खोला ? समझाया हुआ है न कई बार !"

ओह ! प्रकाश को ऐसी लापरवाही नहीं करनी चाहिए थी। अब मैंने पूरी तरह से होश में आते हुए सोचा और उत्तर ढूंढा— "पड़ोस से सरोज आ गई थी किताब लेने के लिए !"

सोचा की जिरह खत्म हुई कि तभी मां एकाएक चिल्लाई—"अरी ओ मरी ! ये क्या है ?"

"क्या है ?" मैंने जानने के लिए प्रतिप्रश्न किया।

"यह सवाल पूछने से पहले तू मर क्यों न गई ? बेशर्म ! बदचलन ! कुलच्छनी ! मुझसे पूछती है क्या के बारे में ? मुझे नहीं पता कि ये क्या है और क्यों है ? बोल, किस मरे के हैं ? तू किसको खिला-पिला रही थी ? क्या यही इम्तहान की तैयारी थी तेरी ? हमें तूने कहीं का नहीं छोड़ा। तेरे तो ब्याह की बात तय होने वाली है तो फिर यह क्या करतूत कर रही है ? मैं आज तुझे जान से मार डालूँगी। न जाने हमारे किन पापों का फल है तू !" माँ उसी पल मुझे चोटी से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खींचते हुए एक कमरे में बंद हो गई थी । हाथ में था बगीचे में पानी देने वाले रबर के पाईप का टुकड़ा और मुख में था लफंगे प्रश्नों और गालियों का लावा ! सटाक-सटाक और हाथों-दाँतों से वहशी नोच-खसोट ! माँ के क्रोधी रूप को मैंने जाना था—आज उसके हिंसक रूप को देख रही थी ।

माँ मुझे मेरे अपराध के साथ कुचल देना चाहती थी—"...बता ! बता ! किस बदमाश के बूट हैं वे ? क्यों आया था वह यहाँ ? जरूर तूने ही उसे बुलाया होगा क्योंकि तुझे पता था कि-हम बाजार जा रहे हैं । कब से है तेरी यह गुमराही ? कब से कर रही है यह कुकर्म ? कब से हमारी इज्जत की कब्र खोद रही है ? तेरी कुलबुलाती जवानी को जरा सब्र न हुआ ? कहाँ मिल गया था तुझे वह ? तेरी किस सहेली का भाई है वह ? तुझे तो हम पढ़ने स्कूल भेजते थे न !"

कोई झूठ बोलकर लांछन, मार और शर्मिंदगी से अपने बचाव का रास्ता भी मेरे सपने ने मेरे लिए नहीं छोड़ा था । सिला हुआ मुख ही अब मेरे पास एक उत्तर था ।

"देखो तो कितनी निर्लज्ज और ढीठ है ! इतनी मार खाकर भी मुँह का ढक्कन नहीं खोला ! अरे, देखती हूँ कि तू कब तक नहीं फूटती । ले...और ले.... !"

अब मेरी किस्मत में और कुछ नहीं—केवल अपने सपने के जूतों से जूते खाने लिखे थे, जिन्हें वह मेरे लिए पीछे छोड़ गया था । जहाँ हम दो पल इकट्ठे बैठे हँसे-बोले थे—साथ-साथ जीने-मरने की कसमें खाई थीं—वहाँ उस दरी पर अब बेआवाज रोना और सोग मनाना था जिंदगी भर—जीना भी अलग-अलग था और मरना भी अलग-अलग था । चोर जब रंगे हाथों पकड़ा जाता है तो फिर मार और ज़ेल की सलाखें ही उसके हिस्से में आती हैं । मैंने एक सपने की चोरी की थी—मेरा दुर्भाग्य कि मेरी चोरी पकड़ी गई ! भूलें भी भली बन जाती हैं—हँसी बन जाती हैं, यदि वे पकड़ में नहीं आतीं—पर मेरी भूल संगीन जुर्म बन गई थी क्योंकि वह नजर में आ गई थी ।

कुछ लोग जीवन में भूल करते हैं और फिर भूल भालकर आगे बढ़ जाते हैं । कुछ लोग भूल करते हैं और भूल नहीं पाते । पर कुछ लोग ऐसे होते हैं जो जीवन में कभी कोई भूल नहीं करते, इसलिए भूल करने वालों को भूल भूलने नहीं देते । पिता उन दिनों नौकरी के सिलसिले में दूसरे शहर में थे । माँ ने उन्हें उसी गरजती-बरसती रात पत्र लिखकर झटपट घर आने के लिए कहा और वे तीसरे दिन मेरे सामने खड़े थे अपने विकराल कसाई रूप में ।

घटना-स्थल पर छूटे एक युवक के बूटों के सबूत के सामने 'हाँ', 'ना' और 'चुप' का अर्थ एक ही था—और सजा भी एक ही थी । एक हाथ में माँ का पत्र,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दूसरे हाथ में नंगी तलवार और मुख में प्रश्नों की दहाड़ ! अपने सपने के पास बिना माँ-बाप की अनुमति के बैठने की सजा इतनी भयानक ।

माँ ने पिता के हाथ से तलवार खींच ली थी— "ये तो बरबाद हो ही गई है ! इसे मारकर सारे घर को भी बरबाद कर देना चाहते हो ? आप जाओ काम पर । मैं इसे देख लूँगी बिना तलवार के भी । इस पर निकली चींटी को मसलकर न रख दिया तो मैं इसकी माँ नहीं !"

और माँ हर पल अपना माँ होना सिद्ध करती रहती । प्रतिपल मरते हुए मैं सोचती रहती कि कैसे कुछ चीजें जब अपनी जगह बदल देती हैं तो उनके अर्थ अनर्थ में बदल जाते हैं । जो बूट मेरे सपने के पैरों में शोभा देते थे—मेरे पास घबराहट में छूट जाने से मेरी चरित्रहीनता का प्रमाण-पत्र बन गए । प्रेम तभी तक प्रेम था, जब तक वह किसी तीसरे की नजर में नहीं आया—नजर पड़ते ही वह शरीर और शरीर की भूख बन गया था—और शरीर की यह मजाल ।

"अरी ओ बेसवा ! कुतिया ! कलंकिनी ! कहीं तूने अपने को पूरी तरह से बरबाद तो नहीं कर डाला ?" माँ यह सवाल बार-बार धकियाकर पूछती और मुझे निरुत्तर पाकर चेहरे पर चांटे जड़ देती ! "सुंदरा ! तेरा चेहरा कैसा फूल-सा कोमल है ।" मुझे प्रकाश की आवाज सुनाई देती ।

माँ ने उन बूटों को घनघोर घृणा से कोसते और पैरों से ठोकर मारते हुए मकान के पिछवाड़े में फेंक दिया था । दूसरे दिन जमादार उन बूटों को शान से पहनकर आया था और माँ से खुश होकर बोला—"ये नए-नकोर बूट न जाने कौन पागल फेंक गया है पिछवाड़े की झाड़ियों में ? मेरा यह बाकी जाड़ा अच्छा कट जाएगा ।"

स्कूल जाना बंद हो गया था । हाई स्कूल की परीक्षा के दिन आए और चले गए । कभी कोई सखी-सहेली आती तो माँ उसे बीमारी की बात कहकर दरवाजे से ही टाल देती । लगभग पाँच महीने श्मशान की तरह गुजर गए । न माँ ने आग बुझने दी—न मेरे मुख पर से चुप्पी का कफन हटा ! मेरे गूंगेपन को इतना लंबा खिंचते देख माँ ने एक दिन घबराकर पिता से कहा— "लगता है, मेरे बार-बार के सवालों और मार के सदमे से यह मरी पागल हो गई है । पहले तो पूछने पर मूर्खों की तरह टुकुर-टुकुर ताकती रहती थी और अब दीवार की ओर मुँह करके रोने बैठ जाती है । (मेरा सपना जो मर गया था ! मैं रोती न तो क्या करती ?) इस गूंगी पगली से अब विवाह कौन करेगा ? सारी जिंदगी हमारे गले में जंजीर की तरह लटकती रहेगी मरी ! अब तो ईश्वर किसी तरह से इससे जान छुड़ाए ।"

पिता से सलाह करके माँ ने पाँच तीर्थों के दर्शन की योजना बना ली और अपनी छोटी बहन को भी संग-साथ के लिए बुला लिया कि सुंदरा पर किसी का

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बुरा साया पड़ गया है—उससे मुक्ति का उपाय अब केवल ईश्वर ही है। बेचारी बन चुकी पगली-गूंगी सुंदरा पर अब हमदर्दी की वर्षा होती, नदियों के पवित्र जल का छिड़काव किया जाता, मनौतियाँ मानी जातीं, चढ़ावे चढ़ाये जाते, भिखारियों को दान दिए जाते। जब हम यात्रा के अंतिम पड़ाव पर पहुँचे तो माँ की इतनी मेहनत को अंतत: ईश्वर द्वारा सकारने के ढब से कहा— "देखो माँ! तुम्हारे भगवान की यह मूर्ति हमें देखकर हँस रही है!" माँ ने इस मरी से मुक्ति और अपनी साधना की सफलता के आवेग में मुझे छाती से लगा लिया....पर एकांत पाते ही एक बार फिर पूरी तसल्ली कर लेनी चाहती थी— "बेटी सुंदरा, वे बूट किसके थे? पिछले दरवाजे से उस दिन कौन आया था तुझसे मिलने? वह कहाँ रहता है? (ताकि मैं उसकी टांगें तोड़ सकूँ!) इज्जत है या गई? सच-सच बता दे। मैं बिलकुल नहीं मारूँगी। कुछ नहीं कहूँगी!"

"माँ! क्या कह रही हो? क्या मुझसे कुछ पूछ रही हो? क्या घर में कोई बात हो गई है या यहाँ सराय में? दरवाजा! बूट! मुझे तो कुछ भी समझ नहीं आ रहा। ठीक से सारी बात समझाओ न! मेरे तो माथे में दर्द होने लगा है!"

मौसी तीर्थयात्रा से मिले पुण्य की पोटली लिये खुशी-खुशी अपने घर लौट गई थी। माँ पिता से यात्रा की सफलता की चर्चा करते हुए सुख की सांस ले रही थी—"... सुंदरा की याद में गुजरा हुआ मनहूस कल अब नहीं रहा! यह तो उस घटना की याददाश्त ही खो बैठी है! जो भूल जाए, उसे हुआ नहीं कहते। अच्छा ही हुआ। हमारी बेटी पहले की तरह निर्दोष और पवित्र हो गई है! अब कहीं कोई डर-खतरा नहीं। अब विवाह में देरी करना ठीक नहीं।"

मुझे उस युवक के साथ घर से बाहर कर दिया गया जिससे मैं अपने सपने के कारण विवाह नहीं करना चाहती थी और इसीलिए काले के बदले सफेद कपड़े पहनकर उसके सामने से निकल गई थी। सोचा था कि वह इस तरह से मुझे नहीं पहचान पाएगा—व्यर्थ की प्रतीक्षा की ठेस खाकर बनता हुआ रिश्ता टूट जाएगा। पर मेरे कपड़ों के बदले रंग को उसने एक संकोचशील खूबसूरत पहेली का मजाक समझ लिया था और बहन की बताई पहचान के आधार पर बूझ लिया था। उसे अच्छा लगा था कि मैंने अपनी नहीं, उसकी पसंद का रंग पहना था! मेरी की तथा सोची हुई सारी बातें एक-एक कर उलटी पड़ गई थीं। मैं पराजित तथा अपमानित सपने का घूँघट काढ़कर और मन में कैद कितने ही प्रश्न लिये एक अंधे कुँए की तरह विदा हो गई थी—अंदर घनघोर अंधेरा—ऊपर बिछी हुई तिल्ले-गोटे की रेशमी घास।

मेरी दुलारी मेघा के साथ ऐसा कुछ न हो! उसके पापा बहुत अच्छे हैं। वही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करेंगे जिसमें उसकी खुशी और सुख है । अतीत में दफन वह प्रेम निषेधों का बंदी और कलंक था । इसलिए कठोर दंड और घृणा का भागी था—पर उस अतीत से जन्मी मेघा का प्रेम किसी भी तरह के विशेषणों के बोझ से मुक्त है । वह प्रेम अपने ही एहसास से डरा-सहमा, सिकुड़ा-सिमटा, लुक-छिपकर ताक-झांक किया करता था अपने सपने की एक झलक पाने के लिए—मेघा का प्रेम कुलांचे भरता और अठखेलियाँ करता बड़ा हुआ है । उस प्रेम की जगह घर के पिछले दरवाजे पर थी—मेघा का प्रेम सामने के द्वार पर खड़ा है घर के अंदर आने के लिए । वह प्रेम कसूरवार था—मेघा का प्रेम न्यायकार है—फैसला वही होगा जो वह चाहेगी ! यह मेघा का वक्त है । हमारा वक्त वह था, जब पहले माता-पिता फिल्म देखते थे और यदि वह उन्हें शिक्षाप्रद लगती तो हमें देखने का अवसर मिलता सालों में कहीं एक बार । और अब पहले मेघा देखती है अपनी सखियों या सखा के साथ और फिर फैसला करती है कि हम भी अवश्य देखें या न देखें । कभी रेडियो कोई प्यार का गाना गा रहा होता तो पिता झट से उसका कान उमेठ देते—और अब चारों ओर कितना कुछ अवांछित बजता-घटता रहता है—पर कोई मना नहीं कर पाता । हमें चुपचाप अंदर ही अंदर बड़ा होने की इजाजत थी—पर बड़ा दिखने की नहीं—और अब खिलते यौवन को रोकने-टोकने की अनुमति नहीं ।

पर मेघा के पापा यह क्या कह रहे हैं ?— "फिल्मी ढंग की इस प्रेम कहानी में खोई खास दम नहीं है ! फिल्म हिट नहीं हो सकती !"

"अरे ! अपने बच्चे की जिंदगी क्या कोई फिल्म होती है जिसे आप इस बेरहमी से सेंसर करें ?'

"प्रेम और विवाह की खिचड़ी पकाने की कोई जरूरत नहीं है । प्रेम-व्रेम के नाम पर हम अपनी मेघा को यूँ ही इधर-उधर नहीं फेंक सकते । जरूर लड़के के मन में हमारी इकलौती बेटी होने का लालच रहा होगा। आज के लड़के समझ-बूझकर प्रेम का जाल फेंकते हैं । आजकल प्रेम का भी व्यवसायीकरण हो गया है जिसके माध्यम से गए-गुजरे लोग अपने बहुत-से ख्वाब पूरा करना चाहते हैं ।"

सब कुछ सुनकर फूल जैसी खिली हुई मेघा का मुँह उतर गया है । शब्दहीन दीवार को ताक रही है । अपने आँसू पोंछने की भी सुध उसे नहीं है । वे आँसू मेरी आँखों में रिसते जा रहे हैं । क्या मेरी बेटी को भी उसी जगह आकर बैठना है, जहाँ कभी मैं बैठी थी ? क्या उसके पापा भी उसे एक अंधकूप देना चाहते हैं ?

"यदि लड़की इकलौती है तो लड़का भी तो इकलौता है । क्या पता, इनका यह इकलौता एकाकीपन ही इन्हें एक दूसरे के निकट लाया हो । और फिर लड़के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

के घर में भी किसी चीज की कमी नहीं है जो वह दूसरों की चीजों पर नजर रखे ।"

"क्या तुम उसके घर हो आई हो ? क्या तुमने उसके दिल के अंदर झांककर देखा है जो इस तरह से उसकी वकालत कर रही हो ? क्या तुमने उसे देखा है ?"

"नहीं ! मेघा ने जो बताया है, उसी के आधार पर कह रही हूँ ।"

"यह प्रेम-व्रेम आजकल बच्चों का खेल बन गया है । यह भी आजादी का प्रतीक और एक फैशन बन गया है । ऐसे किसी अंधे-बहरे खेल को अधिक गंभीरता से लेने की आवश्यकता नहीं होती, मेघा ! प्रेम तो एक गुब्बारे की तरह होता है जो अधिक देर तक हवा में नहीं उड़ सकता । अंततः उसे बेदम होकर धरती पर आना और अपनी उड़ान पर पछताना ही पड़ता है ।"

मेघा कोई उत्तर देने के बदले उठकर बिस्तर पर औंधी जा पड़ी है । मेघा के पापा को यह क्या हो गया है ? उन्होंने कभी किसी से प्रेम किया होता और उसके लिए आँसू बहाए होते तो ऐसे रूखे-सूखे अखबारी तर्क कभी न देते जो दूसरे दिन बासी हो जाते हैं । मैं चाहती हूँ—मेघा अपने पापा से लड़े और अड़े । हठी होकर अपने लाड़ले तर्कों से उन्हें परास्त कर दे—वह यह कह सकती है—करती रही है ! पर आज वह एकदम सुन्न हो गई है । शायद उसे अपने पापा से ऐसे नकार की आशा नहीं थी—मुझे भी तो नहीं थी । मैंने उन्हें एक सरल पिता और विश्वासी पति समझा था—पर आज वे एकदम-से अबूझ-जटिल हो आए हैं । शायद मेघा कहीं आहत और अपमानित अनुभव कर रही है । पहले उसकी बातों को महत्व देते हुए सहमति भाव से खोद-खोदकर सुनना और फिर सब कुछ को ऐसी हृदयहीनता से निरर्थक कह-कहाकर अस्वीकार कर देना । यह पहला अवसर है कि इस तरह से घर में मतभेद-मनमुटाव पैदा हुआ है । उन्हें किसी भी तरह से अपने पाले में खींचकर लाना ही होगा । यदि इस घर में मेघा की हँसी-खुशी न रही तो फिर जीने को रह ही क्या जाएगा ?

"हमारी एक ही तो बेटी है ! उसके भविष्य को लेकर हमारा एक ही तो सपना है कि लड़का हर तरह से उसके योग्य हो और ऐसे दो रिश्ते आए भी हुए हैं । उनमें से एक इंजीनियर है और एक आई.ए.एस. है । हमारे उस सपने को कोई नौसिखिया कम्प्यूटरिस्ट अपने मोहजाल से लूट ले—हम यह सहन नहीं कर सकते और न होने दे सकते हैं !"

मेघा के पापा की यह दो टूकता कंपा देने वाली है— "बचपन से लेकर अब तक आपने हर बात में मेघा की राय—मेघा की इच्छा—मेघा की पसंद" को महत्व दिया था—और आज एकाएक आप अपनी पसंद और अपने सपने की बात करने लगे हैं ! यह तो वही बात हुई कि पहले छत पर चढ़ा देना और फिर नीचे से सीढ़ी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खींच लेना। या फिर वहीं घर-घर की बात कि खाने-पहनने की महत्वहीन बातों में दूसरों को पहल देना और जब असली मुद्दे की बात आए तो उसे अपना सपना बना लेना—चाहे उस सपने पर दूसरे का हक हो।"

"लो, अपने पक्ष में तुम्हारी जेठमलानी दलीलों से खुश होकर, मेघा रुठना भूलकर वापस आ गई है। यह सोच रही होगी कि पापा मम्मी के सामने हार जाएँगे—पर ऐसा होने वाला नहीं।"

"हाँ! मेघा की मम्मी तो मेघा के पापा की कोई भारी दुश्मन है न कि हार से हेटी हो जाएगी। आज आप एक साधारण पिता नहीं—एक भाग्यविधाता की कुर्सी पर बैठे हुए हैं। दोनों सदनों से पास होकर प्रेम का बिल आपके सामने आया है। हे महामहिम राष्ट्रपति जी! अब आप छोटी-मोटी धाराओं को नजरअंदाज कर, प्रेम के इस बिल पर अपनी मुहर लगाकर ऐसा कानून बना दें जिसे ये दोनों कभी न तोड़ सकें।"

"प्रेम अपनी जगह है और जिंदगी अपनी जगह है।"

" क्यों? जिन्दगी प्रेम वाली जगह पर क्यों नहीं खड़ी हो सकती? आखिर जिंदगी का कसूर क्या है और प्रेम से ऐसी चिढ़ क्यों है?"

मैं उनके मुख से 'हाँ' सुनना चाहती हूँ—
पर वे तो कुछ और ही कह रहे हैं।

"आज से मैं एक रिसर्च करने जा रहा हूँ।"

"क़िस विषय पर?"

"मेघा की मम्मी का अतीत!"

"क्यों भला? क्या हुआ है मेघा की मम्मी के अतीत को?"

"किसी से प्रेम! अतीत की किसी दबी हुई आग में से ही ये मोटे-मोटे तर्क और सूक्तियाँ निकल सकती हैं!"

नहीं बोलती तो एक कोमल सपना टूटता है—बोलती हूँ तो पुराने सपने की सींवन टूटती है। "मेघा की मम्मी की बात छोड़ो, मेघा के पापा जी! मेघा और कामरूप की बात कीजिए। बातों की गाड़ी को वक्रगति से चलाने से दुर्घटनाएँ हो जाती हैं! मेघा से कहकर कामरूप को पहले घर बुलाइए ताकि हम भी तो देखें-जानें उसे और फिर करें आप अपना कोई फैसला!"

मेघा पापा के शोध के विषय की बात सुनकर मेरे अतीत के प्रति उत्सुक हो उठी है—"मम्मी जी! क्या आपने भी कभी किसी से प्रेम किया था?"

"बेटा! तुम्हारी मम्मी सपनों से प्रेम करती है और उन्हें हर हाल में जीवित देखना चाहती है। पापा से कहकर कामरूप को फोन करो। परिस्थितियों को ऐसा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अविश्वसनीय और भयावह मोड़ लेता देख उदासी हावी हो आई है—पर अभी मुझे उदास नहीं होना है ! उठकर वहाँ जाना चाहिए जहाँ उदासी को धोया-पकाया और फिर मजे से खाया जा सकता है ! मेघा और उसके पापा के बीच नोकझोंक होने लगी है । इस बीच उनकी पसंद की कॉफी और कुछ नमकीन की भागीदारी हो जाए तो और अच्छा रहेगा । रूखे-सूखे तर्क तो बहुतेरे हो लिये । घंटी बज रही है.... । कौन हो सकता है इस समय ?

"पापा ! कामरूप हैं । आप डांटना मत । मैंने आपसे बिना पूछे फोन कर दिया था कि आप हममें से किसी की बात नहीं सुन रहे । इसलिए खुद आकर आपसे बात करें ।"

द्वार पर मेरी बेटी का सपना खड़ा है आत्मविश्वास और अधिकार से भरा । ऐसा लगता है जैसे यह सूरजमुखी चेहरा कभी कहीं देखा है ! मेघा के कहने पर उसका यहाँ पहुँच जाना उसकी हिम्मत और संबंधों की ईमानदारी-गहराई को दर्शा रहा है । मेरे लिए यह बात सबसे बड़ी है । बाकी नौकरी और पैसा आदि मेधा के पापा तौलते रहें । चरणस्पर्श में कैसा नम्य भाव है कि सामने वाला आशीषमय होने को विवश हो जाए । इससे पहले कि कोई कुछ कहे, उधर फोन बज उठा है ।

मेघा आकर सूचना देती है— "पापा, आपका फोन है । कामरूप के पापा हैं ।"

'यहाँ कामरूप है—वहाँ कामरूप के पापा हैं । यह क्या तमाशा है । हमारे घर पर ये बाहरी हमले ।" कहते हुए वे कितनी कठोरता से उस ओर "हैलो !" फेंककर मार रहे हैं ।

"जब से मेघा बेटी का फोन आया है, हम सब घबराए हुए हैं । कृपया आप जल्दबाजी में कोई फैसला ना करें । एक अवसर अवश्य दें मिलने का । कल शाम की चाय आप सब यहीं पिएँ...हम सब प्रतीक्षा करेंगे । हम आपके लिए अपरिचित हैं, पर मेघा बेटी हमारे लिए इस घर का एक भावमय हिस्सा है, जो अनुपस्थित रहते हुए भी हमेशा उपस्थित रहती है । उसका दुख-सुख हमारा भी दुख-सुख है क्योंकि हमारा भी एक बेटा है जो इस समय आपकी पेशी में है !"

सब फोन के पास शंकित-से घिर आए हैं और चौकन्ने हुए सुन रहे हैं— "...इस घर से उस घर तक जब सारे इस हद तक सिर मिलाए हुए हैं तो मुझे खलनायक बनने की कोई इच्छा नहीं है । हाँ, विवाह मैं जल्दी चाहता हूँ !"

जन्म के संबंध के सामने सपने का संबंध जीत गया है । यह मिठास की घड़ी है ! कोई ढोलक पर थाप दे ! कोई गीतों को न्यौता दे ।

हम उसकी सद्‌भावना के प्रति अभिभूत हैं और नहीं लगता कि किन्हीं अपरिचितों के यहाँ जा रहे हैं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरी भी यह कैसी भद्दी आदत है कि यह दुनिया एक चेहरे की न होकर दो जूतों की नजर आती है हमेशा ! ऐसे अवसरों पर माँ-बाप मकान का आकार-प्रकार देखते हैं—बाहर खड़ी कार देखते हैं—और मैं कामरूप की माँ की चप्पल देख रही हूँ । बड़ी खूबसूरत हैं । पता नहीं किस कम्पंनी की हैं ? कभी बाजार गए तो पता करूँगी । वह बाँहों में भरकर घने प्यार से मिल रही हैं । सखीभाव से मेरे कंधे को घेरे हुए हमें ड्राइंग रूम तक ले आई हैं । तभी कामरूप के पिता दूसरे द्वार से 'स्वागत' की झड़ी लगाते हुए अंदर आए हैं और बिजली के सारे बटन दबाकर कमरे के हर कोने को रोशन कर दिया है । मेघा के पापा से वह हाथ मिला रहे हैं—"घर ढूँढने में कोई परेशानी तो नहीं हुई !" के बारे में पूछ रहे हैं...

और मैं उनके बूटों को देख रही हूँ—देख रही हूँ और हैरान हो रही हूँ—बिलकुल वही रंग—वही बनावट ! तो क्या कंपनी वालों ने इतने सालों में भी डिजाइन नहीं बदला या उनका फैशन फिर लौटा है ? इस व्यक्ति को भी क्या वैसे ही बूट पसंद हैं जो उसे पसंद थे ? इस शुभ वेला में वे अशुभ बूट क्यों दिखाई दे रहे हैं मुझे ? उतार कर फेंक दो इन बूटों को ! तभी वह नमस्कार की मुद्रा में हाथ जोड़े हुए मेरे सामने आ खड़े हुए हैं । उत्तर देते हुए मेरे माथे पर बल पड़ गए हैं और उस चेहरे की मुस्कान गायब हो गई है ।

यह व्यक्ति कौन है ? जो है—वही मैं देख रही हूँ या मुझे ही मतिभ्रम हो गया है ? आँखें अपने अंधकूप की ओर झाँकने लगी हैं—जोर डालकर अंधेरे में कुछ देखने-पहचानने की कोशिश कर रही हैं । घटाटोप अंधकार सांय-सांय करते हुए कहता है—"बेरहम वक्त आज उल्टी गिनती करने बैठ गया है । जब तुमने चाहा था तो कुछ न दिया—और आज जब चाहना कहीं पीछे छूट गई है तो उसे तुम्हारे सामने ला खड़ा किया है । यह वही है ! यह प्रकाश है ! माथे पर वही बालों का गुच्छा प्रश्न की तरह छितराए हुए जो तुम्हारा मन मोह लेता था । वैसे ही नैन-नक्श और चाल-ढाल ! तुम तो अपनी बेटी के सपने के लिए यहाँ आई हो—पर यह तो तुम्हारा अपना सपना खड़ा है तुम्हारे सामने साकार सांस लेता हुआ—जिसे एक बार देख लेने के लिए तुम्हारा मन कितना भटका था— जिसकी याद के रंग को तुमने आँसुओं से धोने की कोशिश की थी— जिसे हारकर जीते जी काले संगमरमर की कब्र में दफन कर दिया था । अब क्या होगा ? अब क्या करोगी ? तुम गलत जगह पर आ गई हो ! चलो यहाँ से !"

मेरी बेटी का आज का सुख मेरे कल के सोए पड़े दुःख और अपमान को झकझोर कर जगा गया है और वे दोनों मुझे ऊँच-नीच समझा रहे हैं । अपनी खुशी की तरह मेघा की खुशी भी मेरे हाथ से छिन जाना चाहती है । सोफे पर बैठने की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोशिश कर रही हूँ— पर ऐसा लगता है कि मैं किसी खाई में गिरती जा रही हूँ ! अधूरा-सा सपना देखने का दंड क्या अभी पूरा नहीं हुआ ? कैसी बदकिस्मती है कि जिसे कभी मैंने पति के रूप में पाना-जीना चाहा था—वह वर्षों बाद मेरा समधी बनकर लौट आया है । मेरी बेटी को भी जूतेछोड़ भगोड़े का बेटा ही पसंद आना था ।

अतीत की परछाइयों ने कमरे की रोशनी में से चमक छीन ली है । प्रकाश के स्वागत वाले उत्साही मनोभाव को पाला मार गया है । वह सामने के सोफे पर बैठा हुआ बेध्याने ही बूट उतारने-पहनने की क्रिया में खोया हुआ है । अपने अंतस के हाहाकार पर हाथ रखकर उसकी ओर एक बार फिर देखने की हिम्मत जुटाती हूँ । रेत में से जैसे पानी रिसकर ऊपर आता है, इस तरह उसकी आँखों में अपने प्रति उभरती पहचान् और एक उलझी शंका अनुभव कर मन होता है, उसे अपनी पहचान का पक्का सबूत देने के लिए उससे उसकी बातें करने लगूँ— "महाशय ! आपने कहाँ से खरीदे हैं ये बूट ? बड़े सुंदर हैं ! कभी इन्हें उतारते भी हैं या रात-दिन पहने ही रहते हैं ? हमारे जमादार के पास भी ऐसे ही बूट थे ! पता नहीं, उसने इतने कीमती बूट कहाँ से लिये थे ? कहीं वे आपके तो नहीं थे ? जरा नंबर तो बता दीजिए, ताकि पिछले बूटों के ऋण की भरपाई की जा सके समधियाने के रिश्ते से । अब तो आपसे कुछ भी लेना पाप है हमारे लिए— बस, देना ही पुण्य है ! तब की बात और थी, जब आपने बिन मांगे ही हमें वे सुंदर-मुंदर बूट दे दिए थे ! आपके उस एहसान को कभी नहीं भुलाया जा सकता । बस, एक जोड़ी बूट देकर सब कुछ से किनाराकशी कर ली ।" तब गूंगी पागल बनी थी और अब यह सब कहकर बोलती पागल बन जाऊँ— उठकर घर की राह लूँ और मेघा को सुना दूँ अपना दो टूक फैसला ।

मध्य में पड़े अंडाकार मेज के कांच पर प्रकाश का प्रतिबिंब पड़ रहा है और मेरी दृष्टि बार-बार जाकर वहीं ठहर जाती है । उस दिन की तरह आज भी यह व्यक्ति अपने बारे में— अपने बचाव के बारे में सोच रहा होगा— जूते छोड़कर भागने की तैयारी कर रहा होगा ! आज मेरी बेटी का सपना इस व्यक्ति की मुट्ठी में कैद है । मैं इस व्यक्ति की कायरता की गवाह हूँ और ऐसे गरिमापूर्ण समधियाने रिश्ते में कोई ऐसे गवाहों को पसंद नहीं करता । पहले इसने मेरे सिर पर जूता मारा था— अब यह मेरी बेटी के सिर पर भी जूता मार देगा ! उधर मेघा उत्सुकता से हमारे लौटने का इंतजार कर रही होगी । खुशी से लबालब भरी मेघा जैसे मेरे सामने आकर खड़ी हो गई है और मेरे पास उसे देने को कुछ भी नहीं ! मेरी दुलारी मेघा, मुझे क्षमा कर देना ! तुम अपने प्रेम की प्रसन्नता को जीओ— मैंने चाहा था—

70781
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोशिश भी की थी— तुम्हारे प्रेम के लिए मैं युगों तक प्रतीक्षा कर सकती हूँ— पर वह सब अब न हो सकेगा ! मेघा इनकार के कारण तक पहुँचना चाहती है और मैं उत्तर देने के बदले मरण तक पहुँचना चाहती हूँ । वह मेरे गले से लिपटकर जार-जार रो रही है— मेरी पथराई आँखें न रो पाती हैं— न मुँद पाती हैं ! दोनों सपने एक ही चिता पर धूँ-धूँकर जलते देख रही हूँ... तभी मुस्कराता हुआ कामरूप मेरे पास आकर मेघा के बारे में कुछ कहने-पूछने लगता है और मेरी झनझनाती हुई प्रश्निल मनःस्थिति के चक्रवात को आगे बढ़ने से रोककर मुस्कान से मुस्कान को प्रदीप्त कर देता है ।

रसोई में गिलासों का खनकना— ठंडी बोतलों के ढक्कनों का आवेग से खुलकर फर्श पर गिरना— आतिथ्यभाव से लदी प्लेटों का इधर-उधर जाना । मेघा के पापा की दुनिया नाप लेने वाली रौनकी बातें— कमलेश की हँसमुखता— प्रकाश का कभी अतीत में अस्त और कभी वर्तमान में उदित होता चेहरा— और मेरे अंतस में शब्दों का सहरा !

जिंदगी अजीब शै है— साँसों को देती कितना भय है !
इसके खारे सागर में— अंततः सब कुछ विलय है ।
उधेड़ती है एक सपना—फिर बुनती है एक सपना ।
तोड़ता है एक सपना—राह मोड़ता है एक सपना ।
ना तेरे गुजरे से मेरा परिचय— ना मेरे गुजरे से तेरा परिचय ।
फिर भी है मेरे गुजरे हुए पल— आज जाने की ज़ल्दी न कर ।
कुछ सोच लेने दे मुझे— कुछ बोल लेने दे मुझे ।
हारी हुई परवाज हूँ— इक जीत लेने दे मुझे !

"बेटा, मेघा से दोस्ती हुए कितना समय हो गया है ?" प्रकाश ने कामरूप को अपने निकट बैठाकर उसके आगे प्रश्नों की अर्गला लगा दी है एकाएक !

"तीन साल पहले आज के ही दिन ! और आज के ही दिन हम सब की भी एक दूसरे दोस्ती हो रही है !" उसके उत्तर से हँसी वातावरण में बिखर जाती है ।

"मैं चाहता हूँ कि आज के इस खूबसूरत दिन मेघा के मम्मी-पापा के सामने शादी की बात तय हो जानी चाहिए ।"

"पापा, अभी उस दिन ही तो दादा जी ने बात पक्की की थी दिसंबर की ।"

"पर वह बात मेघा के मम्मी-पापा के सामने नहीं हुई थी । मैं चाहता हूँ कि प्रेम और शादी में अधिक दूरी न रखी जाए । लड़के को कोई फर्क न पड़े— पर लड़की और उसके माता-पिता को पड़ता है— चिंता भी होती है और हमें भी उस चिंता में भागीदार होना चाहिए ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"पापा, जब तक मेरी एम. टेक. पूरी न हो जाए— मैं शादी नहीं कर सकता। मेघा भी मेरी इस बात से सहमत है। कम से कम एक साल मुझे चाहिए।"

"तुम्हारे दादा मेरे साथ हर फैसले में वीटो पावर से काम लेते थे और तुम वीटो पावर से काम लेते हो। हमारे हाथ में तो कभी कोई पावर रही ही नहीं। हम तो सदा से ही तीसरी दुनिया के बाशिंदे रहे हैं। इसलिए केवल सलाह ही दे सकते हैं कि अच्छा काम जितनी जल्दी हो जाए, उतना ही अच्छा है। दुकानदारों की तरह समय कभी किसी बात की गारंटी नहीं देता। अनदेखी-अनजानी अड़चनों का क्या कोई पता होता है कि कब आकर दरवाजा खटखटा दें? कब वक्त का मन बदल जाए और इनसान अपने सपने की गलियों और दर के चक्कर ही काटता रह जाए? आज के इस दिन और अवसर को खाली न जाने दो। गाड़ी स्टेशन पर खड़ी सीटी बजा रही है— मेघा के साथ सवार हो जाओ बाकी सारे हिसाब-किताब छोड़कर !"

"ओह पापा ! आप तो डराने और निराशा वाली बातें करते हैं।"

"तीसरी दुनिया के लोगों के पास यही कुछ होता है। और फिर, मेरी तबीयत भी कुछ ठीक नहीं रहती। चाहता हूँ कि एक यह खुशी अपनी आँखों से देख लूँ ताकि कोई मलाल न रह जाए।"

"पापा, अब आपकी सेहत को क्या हो गया है भला? 99 परसेंट ठीक है। एक परसेंट तो सब को ही कुछ न कुछ रहता है। समझ नहीं आता कि आज आपको हो क्या गया है? इतने सेंटीमेंटल क्यों हो रहे हैं? कौन-सा वहम सता रहा है आपको?"

"कमलेश, तुम समझाओ अपने बेटे को !"

"इन्हें तो हमेशा किसी न किसी होनी-अनहोनी का ही डर लगा रहता है। बेटा, हो ही जाने दो यह शुभ काम। अब तक सारी बातें तुम्हारी— आज एक बात पापा की और हम सबकी। मेघा के पापा भी यही चाहते हैं।"

"ठीक है, पापा ! जैसी आपकी इच्छा और खुशी !"

"शुक्रिया, मेरे प्यारे बेटे ! तो फिर कल सगाई और अगले हफ्ते आज के ही दिन शादी तय हुई !"

"ओह ! यू आर अनप्रिडिक्टेबल पापा ! यू आर चट मंगनी पट ब्याह पापा। सो दिस इज योर पावरलेस तीसरी दुनिया ! शायद आप भूल गए हैं कि मेरे एक पावरफुल दादा जी भी हैं जो तीर्थ-यात्रा से लौटकर आपको बताएँगे कि इतना बड़ा फैसला आपने अपने आप कैसे ले लिया? आपने उनके निर्णय को काटने की हिम्मत कैसे की?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"उसमें तुम मेरे वकील बन जाना !"

मेरा गुजरा हुआ कल किसी गुड्डे की तरह गुलाबी पाग सजाए मेघा के आज को उसका सपना बिना एक भी पल देर किए, सौंपने द्वार पर आ पहुँचा है। यह स्वागत की घड़ी है। मुख कैसा दीप्त है और तसमे भी तो खूब कसकर बांधे हुए हैं। शुक्र है जो आज वे बूट नहीं डाले जिसके तमसे नहीं होते और उतारने में आसानी रहती है।

कामरूप और मेघा अपने सपने को अपनी-अपनी पसंद की अंगूठी के घेरे में बांध रहे हैं— और इस तरह घर-बाहर उस पर अपनी-अपनी स्वीकृति की पहली मुहर लगा रहे हैं। वह सपना जो अब तक हवा में था— धरती ने उसे अपनी गोद में बैठा लिया है।

मेरे सपने का नन्हा सपना मेरी झोली में आ गया है— और उस सपने को तीर्थ बना गया है।

चारों ओर खुशी की खुशबू छाई हुई है— हँसी हँस रही है— प्रसन्नता लय पर थिरक रही है— आनंद अंधेरे में दीपक जलाकर चारों ओर प्रकाश फैला रहा है। सतरंगी रौनक के बीच आशीर्वादमय साक्षी के रूप में कहीं कामरूप के दादी-दादा और कहीं मेघा के नाना-नानी दिखाई दे रहे हैं। अतीत और वर्तमान एक दूसरे से अनजान आमने-सामने खड़े एक दूसरे के गले मिल रहे हैं— और हर दृश्य मेरे लिए दोहरे अर्थ-रंग समेटे हुए आ-जा रहा है। इस सब के बीच कामरूप सेहरा बांधे खड़ा है दुल्हन के रंग में रंगी मेरी दुलारी मेघा को विदा करा के ले जाने के लिए। सौभाग्य इस आंगन का, जहाँ अनुराग सम्मानित हुआ।

हर रीति-रस्म अपनी पारी की प्रतीक्षा कर रही है....। देखना, कहीं कुछ छूट न जाए। इस धरती पर इन रस्मों के बिना सपनों को कोई मान नहीं मिलता—उन्हें कोई नहीं पूछता— वे लावारिश-अपमानित भटकते-तरसते रह जाते हैं।

मेरे बच्चो ! सपने की संतानो। अपने सपने से कभी न लड़ना— उससे विमुख होने की बात कभी अपने मुख पर ना लाना— कभी अपने प्रेम का अपमान ना होने देना— कभी उसकी बेकद्री ना करना। सपने तो सभी देखते हैं किसी न किसी रंग-रूप में— पर अपने सपने का हाथ थामने का अधिकार सबको नहीं मिलता। जिन्हें नहीं मिलती यह गर्वीली खुशी और स्वीकार— उनसे सपने की कीमत तथा अर्थ पूछना— और कैसी भी तूफानी लहरों में अपने सपने को नौका की तरह थाम लेना। तुम्हारा सपना तुम्हारी शक्ति और विकास का स्रोत बने— आसपास खड़े-बिखरे जीवन को सींचता-संभालता रहे— जीवन की सीमाओं को विस्तारता रहे— और यदि कभी कोई दुःख भी आए तो वह ऐसा बांझ सिद्ध ना हो जिसमें से कोई नया सपना जन्म ना ले सके। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बंद लिफाफा

● कुमारी नीर 'शबनम'

रजनीश !

पिछले साल जब मैंने अपनी शादी की खबर तुम्हारे परिवार को भेजी थी, तब तार द्वारा तुम्हारा मुबारकवाद मुझे मिला था जो आज भी सामने की दराज में पड़ा रह-रहकर मुँह बाए मुझे चिढ़ाता रहता है ।

हर साल मैं अपनी खबर तुम्हारे परिवार को देकर उन सबकी खोज-खबर लिया करती हूँ । कैसी विडंबना है यह ? तुम्हारे शहर में मेरे आने से पहले तुम मेरे कितने करीब थे ! किंतु जैसे ही मैंने तुम्हारे शहर में, तुम्हारे घर में कदम रखा, मैं दूर फेंक दी गई । जबरन तुम्हारे मन से, जैसे कोई अनाड़ी नौकर कमरे की सफाई का वास्ता देकर मालिक का सबसे महत्वपूर्ण समझा जाने वाला पुर्जा उठा कर बाहर गंदी नाली में फेंक दे । जो उठाया न जा सके और फिर काम में भी न लाया जा सके । तुम्हारे घर में मेरे कदम रखते ही तुम्हारा, मुझसे सदा के लिए संबंध टूट गया और तुम्हारे परिवार से अनजाने ही अनचाहा संबंध सदा के लिए जुड़ गया । वह संबंध— जो मैं जोड़ना चाहकर भी नहीं जोड़ सकी और वह संबंध— जो मैं तोड़ना चाहकर भी नहीं तोड़ सकती । और तुम मुझे दुनिया के हाथों में सौंप कर मुझसे बहुत दूर हो गए । बेहतर तो यह था कि तुम मुझे दुनिया से छीन कर अपने करीब ले आते, अपना बना लेते । तुमने 'गाइड' फिल्म तो देखी ही होगी । उसमें रोजी कैदी राजू से मिलने आती है और पश्चात्ताप के आँसू बहाती है । तब राजू कहता है—" अच्छा तो ये होता रोजी कि तुम्हें दुनिया की रानी बनाने के बजाए तुम्हें अपने घर की लक्ष्मी बनाता ।" वही तुमने भी किया । अपना हक गंवा कर तुमने मुझे अपने परिवार के हाथों सौंप दिया । न तुम सुखी हो सके, न तुमने मुझे ही सुखी होने दिया ।

किसी घटना का मन पर कितना गहरा असर हो जाता है, रजनीश ! तुम्हें शायद याद न हो । जिस दिन मैं पहली बार तुम्हारे घर आई थी, उस दिन की बात है । हम सीढ़ियों से ऊपर चढ़कर तुम्हारे कमरे में जाने से पहले वाला अंतर तय कर रहे थे, तभी बरामदे में बैठे ताश खेलते हुए नवजवानों में से कोई एक खूब जोरों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खिलखिला कर हँस पड़ा था— "लो, अब ये आई हैं—" वे शब्द, वह स्वर— और वह खिलखिलाहट आज भी जब मानस में गूंजते हैं तो मैं पागल हो उठती हूं। बेकाबू हो जाती हूँ। सचाई अब भी नहीं जानती कि वे शब्द मेरे लिए इस्तेमाल किए गए थे या कि ताश की किसी बेगम के लिए? तुम्हारे कमरे में रखते हुए मेरे पांव थरथराने लगे थे। तुम बहुत ही खूबसूरत हो। तुम्हारे पीछे बहुत-सी लड़कियाँ पड़ी होंगी, इसमें क्या शक है? पर जब मैंने वे शब्द सुने, ऐसा लगा जैसे कि मुझे ही कहा गया हो कि देखो, अब ये आई हैं। दादा के पीछे पड़ने के लिए।"

कई दिनों बाद जब तुम्हारे छोटे भाई से मेरा परिचय हुआ, तब उसकी झुकी हुई आँखों की ओर देखकर अचानक विश्वास हो बैठा कि वह खिलखिलाहट अजीत की ही थी। घर में सारे बच्चे दीदी! दीदी! की पुकार मचा देते, प्यार से, दुलार से। परंतु अजीत के मुँह से कभी मैंने 'दीदी' शब्द नहीं सुना। कभी मौका आ ही जाता पुकारने का, तो वह कह उठता— 'अरे जीतू! जरा चाय तो इधर लाना।" पूछे जाने पर कहता— "उधर वो जो तुम्हारी दीदी बैठी है।" अगर मैं कहती कि हां इधर ही आ जाओ तो वह जवाब देता— "नहीं, मुझे शर्म आती है।" नहीं, जानती वह अजीत की शर्म थी या घृणा जो उसे मुझसे दूर ले जाती थी, क्योंकि बाद के दिनों में जब मां जी को मैंने अपने प्रति नाराज देखा, तब अजीत की आँखों में भी मुझे वही भाव नजर आते जो मां जी की आँखों में होते थे। मां जी को आश्चर्य होता था रह-रहकर कि इतने कम दिनों में ही मैंने परिवार के सब लोगों को अपनों जैसे बना लिया। कैसे सबको आत्मीय बना लिया है? घर के बड़े-बूढ़े और सारे बच्चे मुझसे इतने खुश क्यों हैं? इस 'क्यों' की अपेक्षा उन्हें परेशान करने वाला एक 'क्यों' और था। उनको डर था कि मैं क्यों सबको अपना बना रही हूँ? इसका कारण क्या है? और उनको शंका, उनके रात-दिन पीड़ा देने लगी— और फिर मैंने घर में आना ही बंद कर दिया था।

वह रक्षाबंधन का दिन था। मुझे खास निमंत्रण मिला था, पर मैं नहीं आई। जानती थी कि खास निमंत्रण खासकर ही दिया गया है। आती भी कैसी? राखी बांधने मैं? किसे? और क्यों? जो कुछ अब तक हुआ, क्या मेरी भावनाओं को कुचलने के लिए काफी नहीं था?

फिर धीरे-धीरे मां जी का मेरे प्रति दृष्टिकोण बदलने लगा था। शायद मेरे घर आना बंद कर देने के कारण ही। मां जी को मेरी अच्छाइयों को परखने का मौका मिला था। शायद वे जान गई थीं कि बेगाने यूं ही अपने नहीं बन जाते। इसके लिए कुछ विशेषताएं होनी चाहिए। उन्हें अचानक ऐसा महसूस हुआ कि उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बहू में उन्हें ऐसी ही विनम्रता चाहिए— और सहसा उन्होंने एक दिन मुझे बुलवा भेजा था। निमंत्रण— बिना तीज-त्योहार के ही। मैं चौंक उठी। मन घबरा उठा था। आश्चर्य तो यह था कि उस दिन अजीत स्वयं बुलाने आया था। वह बोला था—"दादा बीमार हैं। मां ने आपको लाने को कहा है।" दादा वह तुम्हें कहता था। तुम्हारे बीमार होने की खबर? मैंने स्वयं को संभाला था। मैंने पूछा था— "डॉक्टर की दवा चालू तो है न? आज तो मैं आ नहीं सकूँगी। अगले सप्ताह ही आ सकूँगी। माँ जी से कह देना।"

"और दादा—"

उसकी बात बीच में ही काटते हुए मैंने कहा था— "उनसे कुछ कहने की जरूरत नहीं है।" इतना कहकर मैं लौट पड़ी थी। जानती थी कि तुम मुझे बुला नहीं सकते और यदि तुम मुझे बुला भी लेते तो मैं आ नहीं सकती थी।

पर दो ही दिनों बाद जब मैं बस स्टॉप पर बस का इंतजार कर रही थी, मैंने तुम्हें मित्र के स्कूटर पर जाते हुए देखा था। तो क्या वह एक बहाना था मुझे बुलाने का? पंद्रह दिन बाद अजीत फिर मेरे पास आकर बोला था— "आप आईं नहीं। माँ बहुत परेशान हैं। आठ दस दिन से वे भी चारपाई पर पड़ी हुई हैं। आपको खबर देने को कहा है उन्होंने।"

"क्या मुझे बुलाया है?"

"नहीं, आप व्यस्त होंगी। इसलिए केवल खबर देने को ही कहा है।"

"ठहरो!" मैंने कहा था और दरवाजे पर ताला डालकर मैं अजीत के साथ हो ली थी।

पहली बार की तरह यह भी मुझे बुलाने का बहाना है, मैं जानती थी। घर आने पर मां जी ने स्वयं बड़े प्यार से मुझे खाना खिलाया था। उस दिन दस बजे रात को हम जो बिस्तर पर पड़े तो सुबह तीन बजे तक बातें करते रहे थे। मां जी मेरा मन टटोलना चाहती थीं। उधर उन दिनों तुम्हारी शादी की बात चल रही थी।

बातों का सिलसिला चालू करते हुए मां जी ने कहा था— "मुहल्ले वाले और पास-पड़ोस वाले बड़ी अजीब-अजीब बातें करते हैं, बेटी! वे मुझसे पूछते हैं कि तुम्हारे घर में इसका इतना आना-जाना क्यों है? क्या कहूं, किस-किस का मुँह बंद करुं? घर में जवान बेटे हैं।"

"पर अब तो मैंने घर आना-जाना बंद कर दिया है।" मैंने सादगी से उत्तर देकर उनकी शंका का निवारण कर देना चाहा था।

"उससे क्या होता है? होती तो इसी शहर में हो। लोगों को कहते क्या लगता है? जीतू के पिता तो मुझ पर ही नाराज होते हैं कि मैं इतने उथले कानों की क्यों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हूँ ? क्यों नहीं मैं मुहल्ले की औरतों को फटकार देती ? सुनना तो मुझे पड़ता है। उन्हें क्या, रोटी खाई कि चल दिए बाहर। फिर वे किसी बात को बुस नहीं समझते। कहते हैं, जमाना बदल रहा है। घड़ी की सूई निकाल दो तो घड़ी बंद हो जाएगी, पर क्या समय किसी के रोकने से कभी रुका है ? उन्हें किसी बात से ऐतराज नहीं है। वे तो जाति-पांति का बखेड़ा मानते ही नहीं, पर मुझे यह सब नहीं जँचता। वंश परंपरा की बातें हैं, बेटी ! ऊँचा खानदान, ऊँचा नाम है। अपनी प्रतिष्ठा धूल में मिलाना किसे पसंद आएगा ? यदि तुम हमारी जाति की होती तो खुशी-खुशी मैं तुम्हें अपनी बहू बना लेती। इतनी सुशील सुशिक्षित होकर भी इतनी विनम्र और सुंदर कन्या को बहू बनाना कौन नहीं चाहेगा ?"

"मां जी !" मैं जैसे काठ हो गई थी। मैं नहीं जानती कि मुझे क्या हो गया था ? मां जी का वह जातीय अभिमान, वह उधेड़बुन, उस परिवार की इज्जत, तुम्हारे स्वयं का सम्मान और जिम्मेवारी जो कि ऊँचे खानदान के ज्येष्ठ पुत्र में होनी चाहिए, और मेरा स्वाभिमान और स्त्री होने के नाते स्त्री जाति का सम्मान— लगा इन सारी ईंटों को कोई चुनचुन कर मुझे निशाना बना कर मार रहा है। ऐसा लगा, जैसे एक-एक को ज्यों की त्यों उठाकर आई हुई दिशा में फेंकने लगूँ। बदला लूँ और आवाज न सुनूँ। किंतु तभी मैंने अपनी आँखों के आगे उन सारी ईंटों को ढहढहा कर गिरते हुए देखा और मैं चीख उठी थी, "नहीं ! नहीं ! इन ईंटों से तो नीड़ का निर्माण किया जा सकता है। इन ईंटों को खंडहर बनने से रोको ! रोको इन्हें। इन्हें खंडहर बनने से तो रोका जा सकता है।"

तभी मां जी ने कहा था— "मुझे एक वचन दोगी, बेटी ? मैं तुमसे इतना ही माँगती हूँ कि--- ।"

मैं खिलखिला कर हँस पड़ी थी। मां जी मुझे यों हँसती देख क्षण भर कांप गई थीं। मैं एकदम चुप हो आई थी। बहुत देर तक जब मैं खामोश रही, तब मां जी घबरा उठी थीं। मेरे कंधे झकझोर कर वे पूछने लगी थीं, "क्या हुआ ?" मैं फिर से हँसने लगी थी। हँसते-हँसते ही मैंने कहा था, "मां जी, आप भी कहाँ की कहानी ले बैठीं। आपकी शंकाएं एकदम निर्मूल हैं। आप क्यों परेशान होती हैं लोगों के कारण ? उनसे कह क्यों नहीं देतीं कि मेरी तो कभी की सगाई हो चुकी है। मेरे एम.ए. उत्तीर्ण होते ही विवाह तय हुआ है। मैं आपको वचन देती हूँ कि--- ।"

"क्या कह रही हो तुम ? क्या यह सच है ?" वे चौंक पड़ी थीं।

"हाँ, आपसे मैं सच ही कह रही हूँ।"

"तुमने पहले कभी बताया नहीं।"

"आपने आज ही तो बात निकाली है।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके बाद मैं चुप ही रही थी। इस पर मां जी ने दो-तीन बार आवाज लगाई थी, पर मैंने नींद का बहाना बना लिया था। फिर भी, मैंने स्पष्ट रूप से सुना था कि उन्होंने दीर्घ उच्छवास भरा था। जैसे कि वे बहुत बड़े धर्म-संकट से मुक्त हो आई हों। उनकी जाति और खानदान की प्रतिष्ठा बच गई थी।

छुट्टियों से लौटकर तुम्हारे घर गई तो तुमने मेरे तीन पत्र जो तुम्हारे पते पर आए थे, मेरे हाथों में थमाए थे। तीनों पत्र एक ही व्यक्ति के लिखे हुए थे। लिफाफों पर प्रेषक का नाम लिखा हुआ था— चंद्रकांत, इंजीनियर, नई दिल्ली। पत्र देते समय मैंने तुम्हारी आँखों में झाँका था। वहाँ न कोई उत्सुकता थी, न कोई प्रश्न ही। तुम्हारी इस निश्चिंतता से और अपने ऊपर के अटूट विश्वास से मैं झेंप गई थी। मैंने कहा था, "हाँ, उनकी एक बहन इलाहाबाद में रहती हैं जिन्होंने मुझे यहाँ बुलवाया है। य़ही लिखा होगा पत्र में। है न?"

"मुझे नहीं मालूम !" तुमने भोलेपन से कहा था।

तुम कैसे जानते? पढ़ते, तब न ! बड़े ईमानदार बने थे तुम तो। तुमने पोस्ट कार्ड भी नहीं पढ़ा था।

और यदि वे पत्र तुम पढ़ते तो यह भी जान जाते कि वे पत्र मैंने ही स्वयं अपने ही नाम तुम्हारे पते पर भेजे थे। चंद्रकांत इंजीनियर न कोई था, न ही है। पर मैं अपने मन को मना रही थी कि मैंने तुम्हारे मन में शंका का बीज बो दिया है। बीज पड़ जाए तो अंकुर फूटेंगे ही।

और फिर हर बार मुझे देख-देख मां जी अफसोस व्यक्त करतीं कि काश ! तुम मेरी बहू बन सकती। कितना सुशील स्वभाव है तुम्हारा? कितनी विनयशील ! बच्चे भी कितने हिल-मिल गए हैं तुमसे ! सब तुम्हारी ही प्रशंसा किया करते हैं। अब फिर मेरा उस घर में सम्मान बढ़ गया था। घर में बहू बनकर मैं आने वाली नहीं थी न ! इसीलिए। खतरा टल गया था---।

धीरे-धीरे तुम गलतफहमी के शिकार होने लगे थे। एक दिन मैं तुमसे मिलने तुम्हारे कमरे में आई तो तुम अपनी मेज पर एक पुर्जा रखकर कमरे से बाहर जा चुके थे। पुर्जे पर लिखा हुआ था—

तू प्यार करे या ठुकराये, हम भी हैं तेरे परवानों में,
चाहे तो हमें अपना न बना, लेकिन न समझ बेगानों में।

जी चाहा था कि जवाब लिख दूँ—

रहते थे कभी जिनके दिल में हम जान से भी प्यारों की तरह,
बैठे हैं उन्हीं के कूचे में हम आज गुनहगारों की तरह।

और बढ़कर मैंने लिख भी दिया था, पर न जाने क्या सोच कर वह पुर्जा मैं

S.P.S. Library
Srinagar
CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अपने साथ ही ले आई थी।

तुम्हारे शहर से लौटते समय भी मां जी के होंठों पर वही शब्द थे। जब मैं गाड़ी में बैठी, उन्होंने साड़ी का पैकट मेरी गोद में रखते हुए कहा था— "मैं तुम्हें अपनी बहू न बना सकी, पर तुम मेरी बेटी तो हो ही। मुझे कोई बेटी नहीं है। पाँचों बेटे ही हैं। अब तुम ही मेरी बेटी हो। अपने भाइयों को भूलना नहीं। उनकी खबर लेती रहना और अपनी खबर देती रहना। वचन दो कि तुम ऐसा ही करोगी।"

उसी वचन के अनुसार मैंने पिछले वर्ष अपनी शादी की खबर भेजी थी। उसी वचन के अनुसार घर पर हर साल पत्र भेजती हूँ।

हर साल की तरह मैंने इस साल भी तुम्हारे परिवार को एक पत्र भेजा था और इस बार मानो मेरा विवाह हो जाने से तुम्हारे विषय में पूछताछ करने का मैंने हक हासिल कर लिया था। मैंने तुम्हारे विषय में पूछताछ की थी। चूंकि पत्र उन्हें लिखा गया था, तुम्हें नहीं। अत: वे जिस बात से खुश होते, वही बात लिखनी मैंने उचित समझी। मैंने पूछा था कि रजनीश की शादी की कहीं बातचीत चल रही है या नहीं। अभी तक तो कोई लड़की तलाश कर ही ली होगी। और इसी बात पर तुमने मुझे पत्र लिखा है। लगता है, मेरी बात से तुम्हें गहरी चोट लगी है।

तुमने लिखा है— "जिंदगी लगभग वैसी ही है, जैसी आप छोड़ गई थीं। तलाश की बात मेरी समझ में नहीं आई। क्या किसी तलाश का मैंने कभी आपसे जिक्र किया था?"

तुम्हारा "आप" संबोधन देखकर मैं चौंक उठी हूँ। ठीक ही है। तुम्हारे लिए मैं पहले भी "आप" ही थी, और अब भी "आप" ही हूँ। तुमने मुझे "आप" ही रहने दिया। गोया मुझे "आप" ही बना दिया। पर तुम मेरे लिए सदा से "तुम" ही रहे हो और "तुम" ही रहोगे।

तुमसे मैं स्वयं तो तलाश के विषय में पूछ भी नहीं सकती थी। पूछती भी कैसी? तुम उपदेश सुनना पसंद नहीं करोगे, न ही बिन माँगे सलाह मानना पसंद करोगे। फिर भी, मैं तुमसे कहूँगी कि रजनीश, तुम अब विवाह कर लो। इसे आग्रह, अनुनय, आज्ञा कुछ भी समझ लो, पर इतनी बात मेरी मानो, अब तुम विवाह कर लो। जानती हूँ कि मैं तुम्हें आज्ञा नहीं दे सकती। माना कि मैं तुमसे आग्रह भी नहीं कर सकती, पर अनुनय करना तो मेरा अपना अधिकार है। क्या इसे स्वीकार नहीं करोगे?

"जिंदगी लगभग वैसी ही है, जैसी आप छोड़ गई थीं।" तुम्हारे इन शब्दों का अर्थ मेरे सिवाय और कौन समझ सकता है, रजनीश? किंतु मेरे हाथों में क्या है? स्वयं मेरी भी तो जिन्दगी नहीं है। स्त्रियाँ विचित्र कठपुतलियों की तरह होती हैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जिन्हें एक ही सूत्रधार बैठा डोरियों से नचाया नहीं करता है। वे तो कभी किसी के शब्दों पर नाचती हैं तो कभी किसी भावनाओं के लिए, कभी किसी के वचनों से बंध जाती हैं तो कभी किसी के कर्ज से बंध जाती हैं, कभी प्रेम से तो कभी ममता से। मुक्त वह कभी हो ही नहीं सकती।

आज भी मैं मुक्त नहीं हूँ, रजनीश। मैं जानती हूँ कि तुम मुझे कितने प्यारे हो ! जानती हूँ कि गलतफहमियों का पहाड़ मेरे और तुम्हारे बीच फैला हुआ है। फिर भी, यदि मैं चाहूँ तो तुम तक आ सकती हूँ और चाहूँ तो तुम्हें बुला सकती हूँ, पर मैं बंधी हूँ, आ नहीं सकती। मूक हूँ। बोल नहीं सकती।

और यह जो पत्र तुम्हारे नाम आज लिखा है मैंने, है एक वसीयतनामा, जो एक बंद लिफाफे में सदा मेरे सिरहाने, मेरे तकिये के नीचे रखा रहता है, यह पत्र। यह वसीयतनामा तुम्हारे नाम है जो मेरी 'मृत्यु' के बाद ही तुम्हें मिल पाएगा। जिसके द्वारा तुम यह जान पाओगे कि जिंदगी का कारवां तो कब का गुजर चुका है। वहाँ तुम लुट गए और यहाँ मैं लुट गई।

मेरी कहीं भी कोई शादी नहीं हुई है, रजनीश।

परंतु मुझे आशा है कि जब तलक यह वसीयतनामा तुम्हें मिले, तब तक तुम्हारी शादी हो चुकी होगी।

तुम्हारी

अनुया (अनुप्रिया) ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सनराइज व्यू

● डॉ. अजरा 'नूर'

पैराडाइज लॉज की रेलिंग से टिके प्रो. अरुण कपूर चीड़ और देवदार को चूमकर आती ठंडी हवा का स्पर्श अपने जिस्म पर महसूस करते हुए विचार कर रहे थे कि जून के तपते महीने में ऐसी हवा कुदरत की अनमोल सौगात से कम नहीं, यह पहाड़ों की मलिका दार्जिलिंग दूर दराज तक नजर आते हरे-भरे खूबसूरत चेहरों पे कोहरे का घूँघट डाले एक ही नजर में पर्यटकों को अपना मीत बना लेती है। जिंदगी की दौड़-धूप और तपिश से झुलसे आगंतुक इसके पहलू में बैठकर जब ताजा पत्तियों की चाय का आनंद लेते हैं तो उन्हें सचमुच स्वर्गिक सुख की अनुभूति होती है। सूखे, मुर्झाए और तनावग्रस्त चेहरों पर स्निग्धता व ताजगी की कली खिलने लगती है।

गोरे, गुलाबी, चमकीली शक्ल और गठीले बदन के मालिक स्थानीय बाल, वृद्ध और युवा हँसते-मुस्कराते मृगछौनों की तरह फुर्ती से पहाड़ी की चढ़ाई तय कर अपनी मंजिल तक पहुँच जाते हैं। इतना ही नहीं, आकाश छूने की कोशिश में लीन एक और दृश्य 'रोप वे', एक छोर से बैठकर दूसरे छोर तक पहुँचते हुए आदमी खुद को किसी दूसरी दुनिया का वासी समझने लगता है। अहा— जमीन और आसमान के बीच की यह सैर कितनी रोमांचक और आल्हादपूर्ण है— छोटे-से बच्चे की तरह उल्लसित होकर वे जैसे खुंद ही हँस पड़े— अरे यह क्या— वे इतने डूबे हुए थे प्रकृति के सौंदर्य में कि कंधों से सरककर नीचे पहुँच गई शॉल से भी अनभिज्ञ थे। जरा ठंडक का एहसास हुआ तो देखा, शॉल को नीचे से उठाने की गरज से वे झुके तो नजरें फिसलती हुई सीढ़ियों तक जा पहुँची। लॉज में पहुँचने के लिए बनाई गईं सीढ़ियाँ एक के बाद एक तय करती— दीवार का सहारा लिये एक हाथ से साड़ी की परतें सम्हालतीं वह अब बिलकुल साफ नजर आ रही थी। वही है— सचमुच वही...प्रो. अरुण को लगा, उनका दिल उछलकर हलक में आ टिकेगा। वह टकटकी लगाए देखते ही जा रहे थे कि वह आखिरी सीढ़ी पार कर ठीक उनके सामने आ खड़ी हुई— "कृति...तुम कृति ही---हो ?" पानी के बुलबुले की तरह शब्द उनके होंठों से उभरे और फूट गए।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"आप....तुम...अरुण"— बेहद हैरानी का भाव आँखों में लिये कृति के पैर जैसे वहीं जमीन से चिपक गए। अरुण और कृति शब्दों के ज्वालामुखी के बीच खामोश खड़े एक दूसरे को निहार रहे थे। सच, वक्त वह शय है जो किसी के साथ रियायत नहीं करता। उम्र के कदमों से कोई आवाज नहीं होती, मगर उसके गुजरने के निशान जिस्म के रोएं-रोएं से नजर आते हैं— सिर्फ तीन साल के अंदर काली घटाओं के बीच जुगनू से चमकते चाँदी के तार और पेशानी व आँखों के इर्द-गिर्द गहरी होती जाती रेखाएँ वक्त की कारगुजारी के जिंदा सुबूत हैं। जैसा प्रो. अरुण सोच रहे थे, कुछ वैसा ही उन्हें देखकर कृति सोच रही थी। तभी दूर किसी वादी से जैसे प्रो. अरुण की आवाज सुनाई दी... "तुम यहाँ दार्जिलिंग में....कब से— ?"

"मैं यहाँ कल रात ही तो पहुँची हूँ अपनी मित्र भावना के साथ। वह तो आज रुक गई है अपनी मौसी के साथ हॉस्टल में और मैं लौट आई हूँ इसी लॉज के कमरा नं. 3 में...और आप ?"

"मैं भी यहीं कमरा नं. एक में"

'एक्सक्यूज मी !'...पीछे से रास्ता चाहने वाले किसी व्यक्ति की आवाज पर दोनों ओर से खामोशी हो गई और रास्ता छोड़ती हुई कृति कमरे की तरफ बढ़ चली। प्रो. कपूर की नजरें उसकी पुश्त पर थीं कि वह एकाएक पलटी और धीरे से बोली— "आपके कुर्ते के बटन खुले हैं...इन्हें.."

ओह— उनका हाथ गिरेबान तक पहुँचा और बटनों को टटोलते हुए वे कमरे में पहुँचकर कुर्सी पर दराज हो गए। उनकी उंगलियाँ कुर्ते के काज बटन में उलझी हुई थीं और दिमाग जैसे कैमरे से निकालकर ताजा धोई गई फिल्म देखकर उन तस्वीरों को उलटने-पलटने में लगा था।

आज का प्रोफेसर अरुण किसी जमाने में लखनऊ विश्वविद्यालय का बेहद मेधावी, होनहार युवा शोध-छात्र था। विश्वविद्यालय के श्रेष्ठ छात्रों में उसकी गिनती होती थी। तभी डॉक्टरेट की उपाधि पाने के चंद माह बाद ही उसे संस्कृत प्रवक्ता का पद भी प्राप्त हो गया था, चारों ओर से प्राप्त प्रशंसा और मनचाहा अध्यापन कार्य मिलने पर उसका व्यक्तित्व कुछ और भी मुखर हो गया था। एक तो कालिदास का 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' और बाण भट्ट की 'कादम्बरी' जैसी प्रेम व शृंगार रस से परिपूर्ण अनेको प्रसंग, दूसरे अरुण के पढ़ाने का मोहक अंदाज---विद्यार्थी भावविभोर होकर विषय-वस्तु में डूब जाते और अपने प्रिय अध्यापक के प्रशंसक बने बिना न रहते।

अरुण के व्यक्तित्व एवं कार्यकलापों से परिचित कुछ लोगों ने संबंध कायम करने की गरज से उसके माता-पिता से बाराबंकी जाकर संपर्क भी किया किंतु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसके पिता तो कृति को अपनी बहू के रूप में पसंद कर चुके थे। वह व्यवसाय के सिलसिले में बरेली जाया करते थे। वहीं इंजीनियर के पद पर कार्यरत चोपड़ा साहब से उनकी मुलाकात हुई, उनकी एकमात्र पुत्री सुंदर ही नहीं, सुशिक्षित व सुशील भी उन्हें लगी। अरुण को बुलाकर उससे भी उन्होंने सबका परिचय करा दिया। कृति की खूबसूरत कद-काठी और लजीली आँखों ने बेसाख्ता अरुण का मन मोह लिया। कृति के हावभाव देखकर लगा कि वह भी अरुण को पसंद कर चुकी है। फिर क्या था, इधर कृति ने बी.एड. की परीक्षा दी, उधर वे दोनों शादी के बंधन में बंध गए।

प्रेम रस में डूबे कृति और अरुण को देखकर लगता था, जैसे वे बने ही एक दूसरे के लिए हैं। अरुण सुंदरता के साथ कृति के रखरखाव एवं सुघड़ता पर मोहित था तो कृति उसकी बुद्धिमत्ता के साथ लखनवी नफासत पर फिदा थी। उसके चौड़े सीने पे सर रखकर अक्सर मुहब्बत से सराबोर आवाज में वह कहा करती थी— 'तुम्हारी सफेद छाती पे काले रेशम से चमकते ये बाल कितने मुलायम और घने हैं। इनमें बहती हुई तुम्हारे जिस्म की सारी खुशबू, सारी मर्दानिगी मैं जज्ब कर लेना चाहती हूँ...इनपे कभी किसी और की नजर मत पड़ने देना।"

"नहीं...नहीं... कभी नहीं.. इन पर सिर्फ तुम्हारा अधिकार है...इन पर क्या मुझसे जुड़ी हर चीज पर तुम्हारा ही हक है और तुम्हारा ही रहेगा...मैंने तुमसे शादी ही नहीं की...तुम्हें चाहा भी है दिल से...ऐसी चाहत जो पहली नजर से शुरू होकर आखिरी दम तक कायम रहती हैं"...भावावेश में उसके खुले बालों को चूमकर वह उसे अपने सीने से लगा लेता।

अरुण के जाने के बाद इन चाहत भरे लम्हों को आँखों में कैद किए कृति कभी घर को व्यवस्थित करती रहती, तो कभी अपने-आपको अक्सर खाना वगैरह तैयार करने के बाद गेट पर अरुण का इंतजार करने लगती। ऐसे में पड़ोस में रहने वाली महिलाओं से भी दो-चार बातें हो जातीं। उस रोज भी वह बाहर निकली ही थी कि आवाज उभरी—

"मिसेज कपूर.....आपके किचन से पुलाव की जोरदार खुशबू आ रही है। खूब मजेदार डिशेज तैयार करती हैं.. कपूर साहब के लिए।"

"अरे मिसेज सिन्हा, ये जानती हैं कि पति के दिल तक जाने का एक रास्ता पेट से भी होकर जाता है। पति का प्यार पाना हो तो मनपसंद चीजें बनाकर खिलाने में परहेज नहीं करना चाहिए— और फिर मिस्टर कपूर...उनके लिए तो विशेष ख्याल की जरूरत है।"

"विशेष ख्याल...वे क्यों..." कृति चौंककर पूछ बैठी थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'भाई जवान हैं, हैंडसम हैं, टिपटॉप में रहते हैं और फिर उनका विषय— सिन्हा साहब कह रहे थे---जाने क्या बात है कि अधिकतर लड़कियाँ एम.ए., पी-एच.डी. संस्कृत में ही करना पसंद करती हैं ।"

"कहीं ऐसा तो नहीं कि वे शकुन्तलाएँ मि. कपूर में ही दुष्यन्त के दर्शन करती हों'...वे दोनों अपनी बात पर खिलखिलाकर हँस पड़ी, तभी सामने से आते अरुण पर उनकी नजर पड़ी। बोलीं— 'लो याद किया दुष्यन्त जी को और वो हाजिर...संभालो....हम तो चले ।'

आखिरी वाक्य सुनकर अरुण पूछ बैठा, 'क्या कह रहीं थीं ये लोग ?'

'बस यूं ही'

'यूं ही क्या, कोई बात तो होगी हँसने की ।'

'हाँ...बात तो है'...कृति ने सारा वार्तालाप दोहराया तो अरुण जोर से हँसकर बोला— 'ये दोनों मनमौजी स्वभाव की हैं, इसी तरह सारी कॉलोनी में चुटकुले छोड़ती रहती हैं। चलते फिरते मजाक न करें तो इनका खाना ही हजम न हो ।' कहते हैं न, औरतें कान की बड़ी कच्ची होती हैं। जो सुना उसे जाँचे-परखे बिना विश्वास कर लेती हैं। उनके दिमाग के खाने में कभी कोई बात फिट हो गई तो परमात्मा ही उससे निजात दिलाए तो दिलाए। कृति के साथ भी वही हुआ...मजाक में कही गई बातों को वह पूरी संजीदगी से ले बैठी और उसका दिमागी रथ दौड़ने लगा अरुण की गतिविधियों की दिशा में। हमेशा की तरह तैयार होकर हल्का-सा परफ्यूम लगाने की गरज से अरुण ने ड्रॉअर खोली तो शीशी गायब थी, इधर उधर तलाश करता वह कृति तक पहुँचा, 'परफ्यूम...क्या जरूरत है...कॉलेज जा रहे हो या वेडिंग पार्टी में ।

'यह कोई नई बात है...मैं तो हमेशा ही इस्तेमाल करता हूँ। लाओ परफ्यूम दो ।'

'नहीं दूँगी मैं... यूँ महक महकाकर लड़कियों पर इम्प्रेशन मारते शर्म नहीं आती...आखिर शादीशुदा हो ।'

'लगता है....रात में तुमने कोई बुरा सपना देखा है जो सुबह ही मूड खराब करने बैठ गई—गुस्से में बड़बड़ाता हुआ अरुण यूँ ही घर से निकल गया ।

कृति के दिमाग में कुलबुलाते शक के कीड़ों की तेज रफ्तार जिंदगी के नासूर को हवा देने लगी। अरुण को घर पहुँचने में जरा-सी देर हुई नहीं कि कार्यालय के फोन की घंटी खनखना उठती, 'डॉ. कपूर विभाग में हैं क्या ?'

'हाँ हैं ।'

'क्या कर रहे हैं ?'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'जी...बिजी हैं...कुछ रिसर्च स्कॉलर्स हैं। उन्हीं से चैप्टर वगैरह पर बात करते होंगे शायद'....क्लर्क जवाब देकर फोन रख देता।

अरुण के घर पहुँचने पर कृति मुँह बनाए या तो कोई नॉवल या अखबार हाथ में लिये बैठी रहती, उसकी तरफ मुँह उठाकर भी न देखती...वही कहता, 'कृति, खाना लगाओ। भूख लगी है।'

'क्यों....प्रणय निवेदन के साथ खाना नहीं था क्या ?'

'प्रणय निवेदन....क्या मतलब है तुम्हारा ?'

'मतलब साफ है— तुम घर से सज धजकर इसलिए निकलते हो कि लड़कियों से इश्क फरमा सको, पढ़ाई तो महज बहाना है।'

'पढ़ाने और काम करने की तनख्वाह मिलती है मुझे सरकार से। प्यार मुहब्बत की नहीं समझीं...मैं वहाँ से दिमागी तौर पर थक-हार कर घर लौटता हूँ। राहत पहुँचाने की बजाय तुम और परेशान करती हो।'

'मैं परेशान करती हूँ ?'

'और नहीं तो क्या...कोई काम तो है नहीं तुम्हें...बैठकर फिजूल की बातें सोचती रहती हो।'

'काम नहीं है...कोई ढंग का काम करने लायक छोड़ा ही कहाँ है तुमने मुझे...सुबह से शाम तक घर की चूल्हा-चक्की....अपने घर में मैं उठकर एक गिलास पानी नहीं पीती थी और यहाँ मेरी हैसियत घर की नौकरानी से ज्यादा नहीं....हाय क्या दुर्गति हुई है मेरी शादी के बाद'...उसकी बातें और रोना-सुबकना देखकर अरुण असमंजस में पड़ जाता। उसके पास बैठकर नम्रता से कहता— 'यह घर तुम्हारा ही तो है कृति, क्या हो गया है तुम्हें....अपने घर के लिए काम कौन नहीं करता, फिर भी तुम्हारी इच्छा नहीं है तो न करो। अगर नौकरी करना बेहतर जान पड़ता है तुम्हें तो वही करो। मैं मना नहीं करूँगा।'

'हाँ-हाँ तुम क्यों मना करोगे...तुम तो चाहते यही हो कि 'मैं गाँव-कस्बों में भटकती रहूँ....कमाकर तुम्हारा घर भरती रहूँ और तुम करते रहो यहा अय्याशी।'

'कृति'...अरुण गुस्से से चीख पड़ता— 'अय्याशी न मैंने पहले की है और न अब कर रहा हूँ। कही-सुनी बातों पर विश्वास करके अपना घर तबाह करने की मूर्खता तुम जैसे लोग ही करते हैं। वह पति हो या पत्नी, महज शक-ओ-शुबहे में एक दूसरे का जीना दुश्वार कर दें तो उन्हें समझदार कौन कहेगा...लोग तमाशा देखेंगे उनके घर का भी और जिंदगी का भी।'

'इस दुनिया में एक तुम ही अक्लमंद हो, बाकी तो सब बेवकूफ हैं'...कृति सामान को यहाँ वहाँ पटककर अपना रोष निकालती रहती और वह दोनों हाथों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

माथा पटककर बैठ जाता ।

कृति के व्यवहार से क्षुब्ध अरुण घंटों स्टडी रूम में बैठा किताबें उलटता-पलटता रहता मगर किताबी दुनिया में व्यावहारिक समस्या का कोई हल उसे नजर न आता । दरअसल उसकी सारी बुद्धिमत्ता, तार्किक शक्ति सब कृति के सारहीन वक्तव्यों के सामने जवाब दे जाती । वह समझ नहीं पाता कि उनकी जिंदगी में जहर घोलने वाले वहम के इस नाग का सर कैसे कुचला जाए । अक्सर प्यार से उसे समझाया करता, वह दो-चार दिन संयत और खुश रहती, फिर जैसे ही किसी सभा-समारोह में या बाजार जाना हुआ और परिचित महिला से औपचारिक बात भी कर ली तो बस, घर पहुँचते तक कयामत आ जाती—

'क्यों पूछ रही थी तुम्हारा हाल-चाल ? कब से जानते हो— कहाँ मिली थी— ऐसा घूर-घूरकर देख रहे थे, जैसे कभी औरतें देखी ही नहीं ।'

उसके सवालों की बौछार से त्रस्त अरुण क्या कहे, क्या न कहे की कशमकश में हैरान उसका चेहरा देखता रहता । हर वक्त की चीख-पुकार, उठा-पटक उसके स्वभाव का अंग नहीं थे । इसलिए गुस्से की आग में सुलगकर अंदर ही अंदर धुंआ-धुँआ होता रहता । कभी बोलता भी तो सिर्फ इतना—

'शादी के बाद मैंने अपनी नजरें यूँ नीची करके चलना शुरू कर दिया है, जैसे मैं कोई अपराधी हूँ और मेरी नजरों के दायरे में भूल से भी कोई महिला आ गई तो तुम्हारी अदालत में जवाबदेह होना पड़ेगा । रही बोलने की बात, तो अब होंठों पर ताला लगाकर बाहर निकला करूँगा । फिर भी तुम्हें संतोष होगा ही, इस बात की गारन्टी नहीं है ।'

ऐसी घटनाओं के बाद कई दिनों तक मौन की दीवार यूँ उनके बीच खिंची रहती । जैसे एक छत के नीचे दो अजनबी रहते हों । उन दिनों भी सेमिनार के लिए पत्र तैयार करना था । वह छुट्टी लेकर घर पर ही काम कर रहा था कि हिमानी आ पहुँची—

'सॉरी सर, आपको डिस्टर्ब किया, परसों मेरी मौखिक परीक्षा है ।'

'हाँ मुझे मालूम है, मैं रहूँगा वाइवा में ।'

'सर, थीसिस के इस आखिरी चैप्टर पर कुछ आपके साथ विचार कर लूँ— लगता है इसमें से प्रश्न पूछे ही जाएंगे ।'

'ओह...श्योर....तुम्हें जो पूछना है पूछो...ऐसा न हो....कोई जवाब देने में तुम चूक जाओ ।'

कुछ देर बैठकर अपनी शंकाओं का समाधान कर हिमानी चली गई । जैसे ही वह गेट से बाहर हुई, कृति पैर पटकती हुई कमरे में दाखिल हुई— 'पत्नी से बात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करना पसंद नहीं—दूसरों से घंटों घुलमिलकर बातें करते हो— अब भी कहो— मैं बेकार की बात कर रही हूँ— क्या लगती है ये तुम्हारी ।'

'मैं गुरु हूँ— वे विद्यार्थी— उनको पढ़ाना...समझाना...मेरी नौकरी का हिस्सा है ये सब...चाहती क्या हो ? छोड़ दूँ नौकरी...घर में बैठकर पूजा करा करूँ तुम्हारी ।' वह झुंझलाया

'पूजा....तुम्हारे जैसे गिरे चरित्र का आदमी क्या पूजा करेगा किसी की ?'

'हाँ, मैं हूँ जैसा हूँ...तुम्हारी मर्जी में जो आए...सो करो ।'

'हाँ...वही करने जा रही हूँ मैं...जाकर पूछती हूँ तुम्हारे विभागाध्यक्ष से और डीन से...क्या तुम ही अकेले व्यक्ति हो विभाग में शोध कराने वाले...इन लड़कियों को रिसर्च कराने का जिम्मा तुम्हें दिया गया है या तुम्हारी ही विशेष रुचि है उन्हें काम कराने में ।'

'कृति'....अरुण इतनी जोर से चीखा कि उसके चेहरे की सारी नसें उभर आईं.....आँखों से आग-सी बरसने लगी—

'सभा सोसाइटी में मेरा अपमान करती रही तुम वो' सहा मैंने— अब स्टाफ में जाकर मेरी बनी-बनाई इज्जत पर पानी फेरना चाहती हो...सबके बीच मजाक का विषय बनाना चाहती हो मुझे— मेरी सहनशक्ति जवाब दे चुकी है....इस रोज के झिकझिक से तो मुझे लगता है कि मुझे ब्रेन हैमरेज हो जाएगा या मैं आत्महत्या कर लूँगा....मेरी जान लेकर ही चैन से बैठोगी तुम...बोलो...जवाब दो । दोनों कंधों से उसे झिंझोड़ कर उसने उसे सोफे पर धकेल-सा दिया और खुद बाहर निकल आया ।

बेख्याली में चलता हुआ वह कब गोमती के किनारे पहुँच गया, उसे खुद पता न चला । थकान का एहसास जब तलुवों की जलन ने कराया तो रेत में पैर डालकर वहीं एक कोने में बैठ गया । क्षितिज में गुम होती सूरज की धारियाँ शाम समेटने की तैयारी में लगी थी । अवध की मशहूर शाम, जिसके हर लम्हे का कभी उसने पूरा आनंद लिया था, आज जिंदगी की कड़वी हकीकत से दूर जाने में मददगार साबित न हो रही थी । दर्द के समंदर में पड़ी उसकी जीवन नैया विपरीत हवाओं के थपेड़े खाती चिचकोले ले रही थी । वह सोच रहा था कि वक्त का अगर यही प्रहार रहा तो उसकी नाव डूबने से बहुत देर तक बच न पाएगी ।

जिंदगी की भूल-भुलैया में फँसा वह वहीं बैठा था कि रात्रि चौकीदार ने उसे सजग किया और दुखों की गठरी उठाए तन्हा मुसाफिर-सा वह चल पड़ा । पूरी रात बाहर के बरामदे में पड़ी कुर्सी पर बैठा शून्य में ताकता रहा— अपने ही घर में तिरस्कृत और निष्कासित-सा वह अँधेरे का मेहमान बना रहा । यहाँ तक कि

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रात का आखिरी तारा भी डूब गया और सुबह के धुँधलके में कृति हाथ में अटैची लिये घर की दहलीज पार कर गई । न वह उठ सका, न बोल सका । बस सुबकता रहा बगैर आँसुओं के और देखता रहा हवा में तैरते अपनी प्रेम पुस्तक के बिखरे पन्ने.....

खटाक— हवा के तेज झोंकों से खिड़की के दोनों पट टकराए और ले आए लौटाकर उसे वर्तमान में, खिड़की बंद करने की गरज से वह उठा कि जोर से बिजली चमकी और बालकनी में खड़ी परछाई को चमका कर दूर कहीं वादी में गुम हो गई । उसने तेजी से दरवाजा खोला और कृति के पास आकर बोला— 'इतनी रात में यहाँ अकेली—लगता है, बारिश होगी—अंदर आ जाओ ।'

बगैर कुछ बोले वह उसके पीछे चली आई और पलंग के एक किनारे पर बैठ गई ।

'काफी रात हो गई है— सोई नहीं ।'

'नींद नहीं आ रही'— नजरें नीची किए हुए वह धीरे से बोली ।

'हुँ— पहाड़ों पर रात वैसे भी लंबी होती है'— बात बढ़ाने की गरज से अरुण बोला ।

'लंबी...मगर कितनी खुशगवार.....ठंडी हवा के झोंके यहाँ सन्नाटे में भी जिंदगी का अहसास कराते रहते हैं— एक प्यारी-सी खामोशी जिसमें आदमी अपनी सारी थकान और तनाव पहाड़ों के ऊँचे कंधों पर रखकर आश्वस्त हो जाता है । फिर जंगली फूलों की महक पीते हुए रात गुजारता है जबकि मैदानों में— वहाँ तो दिन और रात के बीच अंतर करना ही मुश्किल है....इतनी पार्टियाँ....इतने समारोह... इतनी भीड़...फिर भी हर आदमी तन्हा और परेशान । मैं तो पहली बार ही दार्जिलिंग आई हूँ...अनोखा एहसास हुआ यहाँ आकर ।'

'अच्छा— पहली बार में ही तुम दार्शनिक बन गईं— मैं तो पिछले तीन साल से गर्मी की छुट्टियाँ यहाँ गुजारता आ रहा हूँ ।'

'हर साल... वह भी अकेले...साथ में... ?'

'साथ में कोई नहीं... दिल का साथी सिर्फ एक बार चुना जाता है.... वह मंझधार में छोड़ जाए तो बात अलग है । वैसे भी दिल के कागज पे लिखी इबारत मिटाना इतना आसान नहीं होता । फिर मैंने तो उस नाम को मिटाना ही नहीं चाहा जो मेरे साथ जुड़ चुका था— खैर....छोड़ो मेरी...अपनी कहो ।'

'क्या कहूँ...सर पर नौकरी की धुन सवार थी वही की । मम्मी पापा और सभी परिजनों से अलग होकर अपनी इच्छा से निर्णय लिया और...'

'और क्या.... ?'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'दुनिया वालों को देखकर अपनी कमियों और दोषों का लेखा-जोखा तैयार करती रही...बिलकुल तन्हा होकर मैं जैसे अपनी ही गलतियों का प्रायश्चित करती रही।' कृति का गला भर आया और बात उसके गले में ही अटक गई।

'ओ...मेम शाब...चलें---साढ़े चार हो गया...सब तैयार हैं, आपका 'वेट' करते हैं।'

'ओह— साढ़े चार....इतना समय हो गया'... कृति हड़बड़ाकर पलंग से उतरी और तेजी से बाहर निकल गई।

कुछ ही मिनट बाद वह शॉल लपेटती हुई अंदर वापस आई। अरुण ने प्रश्नात्मक दृष्टि से उसे देखा—

'कौन था?'

'बस का ड्राइवर..... कल 'साईट सीईंग' के लिए गए थे। तभी तय किया था आज 'सनराइज व्यू' के लिए जाना है।'

'अच्छा...सनराइज व्यू...सच, देखने काबिल है, बर्फीली सफेद चोटियों पे झुके बादल और शर्मीली दुल्हन सी बड़ी अदा के साथ धीरे-धीरे सर उठाती सूरज की रंग बिरंगी किरणें....बड़ा नायाब....बहुत दिलफरेब और कीमती होता है सूर्योदय पहाड़ों पर, इसे कभी 'मिस' नहीं करना चाहिए— जा रही हो न?'

'नहीं— मैंने मना कर दिया है।'

'मगर क्यों?'

'इसलिए कि 'सनराइज व्यू' मैं यहीं देख रही हूँ'— धीरे से इतना कहकर कृति अरुण के करीब आकर खड़ी हो गई।

'यहाँ— इस होटल में— भला 'सनराइज व्यू' कहाँ?'

'यहीं तो है...सूरज तो एक अर्से से मेरे पास था, यह और बात है कि उसकी पहली किरण मेरे मन मस्तिष्क तक पहुँचने में समय लगा। अँधेरे में भटकते मेरे जीवन को जो रोशनी से जगमग कर दे, उससे बेहतर कोई 'सनराइज व्यू' दुनिया में कहीं है क्या? बोलो"... अपनी खूबसूरत आँखें उठाकर कृति ने अरुण की ओर देखा। तो लगा---जैसे उसके साथ सारा वातावरण भी सूर्यमय हो गया है।••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुभूति

● डॉ. आदर्श मदान

अनुभूति ने हवा के बिंदास झोंके से बिखरी अपनी लट को पीछे हटाते हुए सोचा—यह प्रकृति कभी नहीं बदलती, चाहे कुछ भी हो जाए। इसकी अठखेलियाँ, बदलते हुए रंग, चिर यौवन, आकर्षण कुछ भी तो कम नहीं होता। नारी को भी प्रकृति कहते हैं। भिन्न-भिन्न रूपों में भी उसका आकर्षण तो बना ही रहता है। उसे याद आई अपनी किशोरावस्था, जब उसने पहली बार जाना था कि स्त्री और पुरुष को विधाता ने अलग-अलग रूपों में सिरजा है। सहज आकर्षण का सिर्फ भावनात्मक रूप ही जाना था उसने। भावनाओं ने उसे उत्फुल्ल होती कलिका का रूप दे दिया था, परंतु विवाह से पूर्व दैहिक अनुभूति उसे नहीं हुई थी।

विवाह के पश्चात पहली रात्रि को पहली बार उसे पता लगा कि पुरुष स्त्री को रमणी के अतिरिक्त माँ के रूप में भी चाहता है। वह लज्जा के मारे गुड़मुड़ी-सी हो गई थी। छिः उसे बहुत बुरा लगा था। उस रात उसने सोचा था, अब वह इस पुरुष को कभी भी प्रेम नहीं कर पाएगी जो प्रेम का प्रथम पृष्ठ ही शिशु के रूप में प्रारंभ कर रहा है। परंतु ऐसा नहीं हुआ। प्रौढ़ावस्था में भी मृत्यु से पूर्व अपने पति को जीवन के लिए संघर्ष करते देख कर अस्पताल के वार्ड में सबके सामने उसने कई बार उनका सिर वक्षस्थल से लगा लिया था। पत्नी में माँ भी छुपी रहती है। वह सोच ही रही थी कि जोर से हवा आई और भड़ाक से दरवाजा बंद हो गया।

अनुभूति की विचार-शृंखला टूट गई। वह चौंक कर उठी। फिर दरवाजा खोला और गुटके लगा दिए। हवा बहुत मोहक लग रही थी। सर्दियाँ खत्म हो चुकी थीं। वसंत का आगमन था। ऐसे में फगुनाहटभरे झकोरे बहुत चंचल हो उठे थे। अकारण ही मन में आल्हाद-सा भरने लगा था। उसने सुहानी हवा से सराबोर होने के लिए खिड़कियाँ भी खोल दीं। खिड़की क्या खुलीं मानो यादों का एक और पृष्ठ खुल गया।

सौष्ठव नाम था उसका। यथा नाम तथा गुण। उसकी कलात्मक रुचि, वस्त्रादि पहनने का ढंग सबसे अलग था। सबसे बड़ी बात यह थी कि वह बहुत शालीनता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से सामने वाले को प्रभावित कर लेता था। अनुभूति को भी वह इशारों में ही काम्प्लीमेन्ट दे जाता। उन दिनों अनुभूति भी स्वयं को विशेष ही समझने लग गई थी। सुबह कार्यालय जाने में अतिरिक्त सज्जा और अभिरुचि दिखाने लगी। काम्पलीमेन्ट्स भी तो कितने प्यारे मिलते थे, जैसे सफेद साड़ी पहनी हो तो आज तो कमरे में चाँदनी छिटक गई है। हरा रंग मखमली दूब का एहसास दिलाता। नीले रंग से आसमान धरती पर उतर आया है आदि-आदि। सौष्ठव कुछ बोले, इसके लिए अनुभूति का मन अकुलाता रहता। जो वह बोलता, वही शब्द वह मन-ही-मन हजारों बार दोहराती रहती। अकेले में शरमा भी जाती। कभी दर्पण में स्वयं को सौष्ठव की नजरों से देखती। जब यह याद आता कि वह विवाहिता है तो मन पर अंकुश लगता। फिर वह विवेक का सहारा लेती। यह कोई पाप तो नहीं है। सुरुचिपूर्ण काम्पलीमेन्ट्स देना तो आधुनिकता की निशानी है और उन्हें सलज्ज अभिवादन सहित स्वीकार करना सभ्यता की। अब आधुनिकता और सभ्यता के नाम पर मनचाहा कुछ मिलता है तो क्या हर्ज है। फिर मन जो चाहता है उसके लिए हजारों तर्क व बहाने मिल जाते हैं। यह सहज संप्रेषण और संवाद स्त्री-पुरुष को अधिक अनौपचारिक बना कर निकट ले आते हैं। प्रशंसा और उसकी भूख, उन्हीं बातों का बार-बार चिंतन, इससे जो ताल्लुकात जन्म ले लेते हैं, क्या नाम दिया जाए ? प्रेम का या वक्ती रिश्तों का ? यह सब याद करके अनुभूति उदास हो गई। सच में ही ऐसे रिश्तों की कोई उम्र नहीं होती। वक्त के भंवर में खो जाते हैं ये नाम। जो सचाई शेष रहती है, वह है अपना पति और अपनी गृहस्थी। अशेष और चिरंतन। तब तो यह सोचती थी कि पति को तो अपने हिस्से का प्यार मिल ही रहा है बल्कि ज्यादा ही मिल रहा है। और अब लगता है, वह सब सच नहीं था। उदासमन अनुभूति अपने दिवंगत पति को याद करके गुनगुनाने लगी,

"ना मैं सोहणी ते ना गुण पल्ले
तू आके निमाणी नूं कज वे"

(न मैं सुंदर हूँ, न मेरे पास कोई गुण है, तू ही मुझ बिचारी को ढक ले।)

ठंडी आह भरके उसने ऊपर की तरफ देखा। कहीं-कहीं सफेद बादल के टुकड़े तैरते हुए चले जा रहे थे। काश ! ऐसा हमारे साथ भी हो सकता। हम भी धरती की तल्ख सचाइयों से दूर, लिजलिजी वासनाओं से ऊपर हल्के हो कर उड़ते रह सकते। ऐसा ही तो चाहा था उसने जब हरेंद्र की साहित्यिक अभिरुचि, बौद्धिक स्तर और विवेकपूर्ण बातों ने उसे बहुत प्रभावित किया। अनुभूति ने बहुत चाहा था कि काश, उसे कोई स्त्री के नाते नहीं, देह के लिए नहीं, काम वासना के लिजलिजे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एहसासों से नहीं, बल्कि बौद्धिक स्तर पर कोई सोचे और चाहे। कृष्ण और द्रौपदी में भी तो ऐसा ही सख्य भाव था। समान रुचियाँ पसंद आदि उसे हरेंद्र के निकट ले आए। कितना सुलझा हुआ इन्सान है हरेंद्र। अनुभूति को यह महसूस होने लगा कि वे दोनों सामान्य बौद्धिक स्तर के लोगों से कुछ ऊँचे बादलों की तरह तैरते फिर रहे हैं, अच्छे विषयों पर वार्तालाप, बौद्धिक चर्चाएँ, दार्शनिक तथ्यों का विश्लेषण—अनुभूति स्वयं को सामान्य से कुछ अतिरिक्त समझने लग गई थी। असामान्य रूप से प्रतिभाशाली हरेंद्र जो उसका मित्र था, परंतु जलधारा कितनी भी ऊँचाई पर पहुँच जाए, गिरना तो उसे नीचे ही पड़ता है। चाहे वाष्प बने या बादलों के साथ उड़ते फिरे, आना तो जमीन पर ही पड़ता है।

एक दिन बहुत धूलभरा वातावरण था। धूल मानो आकाश से बरस ही रही थी। उमस भी बढ़ गई थी। इतने में पेड़ों के पत्तों और टीन शेड पर कंकड़ों के गिरने की-सी आवाजें आने लगीं। मोटी-मोटी बूंदें और ओले द्रुत गति से जमीन पर गिर रहे थे। सान्द्र वाष्प शायद बहुत आतुर थी। एक आँधी जिसका अंत ओलों मिश्रित मूसलाधार वर्षा से हुआ, अपने पीछे अस्त व्यस्त वातावरण तथा आप्लावित सृष्टि छोड़ गया। प्रकृति भी चमत्कार दिखाती है। पता नहीं कहाँ से चले थे बर्फ के टुकड़े और किस धरती पर बरस गए। वह मरुधरा जिसका वास्ता सिर्फ प्यास से था। वर्षा को कभी पूरी तरह जाना नहीं था। आज धरती ओलों की चादर ओढ़ कर पड़ी थी और बादलों के निरंतर घर्षण से बिजली पूरे आकाश में चलती हुई-सी घूम रही थी। मानो प्रकृति अपनी विजय पताका फहरा रही हो और कह रही हो—कितना दुर्धर्ष है यह आकर्षण ! कौन बच पाया है जो तुम बचोगी ? वृष्टि का यह क्रूर अट्टहास हर ओर व्याप्त था। यही है सृष्टि का नियम। अनुभूति हत्प्रभ थी। क्या स्त्री-पुरुष के परिचय या आत्मीयता की एक ही परिणति होती है ! मानो आकाश से जमीन पर गिर पड़ी अनुभूति। उसे लगा, अब अपनी सोच ही बदलनी होगी।

वर्षा के बाद सद्यस्नात वृक्ष, धुली-धुली प्रकृति जिस का आवेग थम चुका था, अब बहुत मासूम लग रही थी। अनुभूति ने अपनी जीवन शैली ही बदल डाली। वर्षों शुष्क-वीरान जिंदगी जीते हुए अनुभूति को आदत-सी हो गई वीतराग जीवन की। बस बागीचे में घूमना, पेड़ पौधों से बतियाना, लेखनी से अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति देना, बस इसी प्रकार अपने जीवन को सबसे असंपृक्त कर लिया। पेड़-पौधों पर ढलने लगा प्यार। पक्षियों के कलरव से मन बहला रहता। पक्षियों को तीन मुट्ठी बाजरा डाल कर घर के लिए स्वस्ति वाचन। सिर्फ माथे पर गौरी चंदन नहीं पोता उसने। मन तो जोगी हो चुका था। कभी-कभी वह रात को वैणा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करती—

चारों चूका मेरी किच्चड़ भरियाँ किस दा मणा कराँ
किनूँ कवाँ मैं दिल देया हाणिया रो रो कर नैणा भराँ ।

(मेरे आंचल के चारों कोने कीचड़ से भरे हैं । मैं किस बात का अभिमान करूँ । मेरे साथी, मैं अपने दिल की बात किससे कहूँ । मैं तो सिर्फ रो रो कर नैन भरती रहती हूँ ।)

अचानक एक पत्र ! सोच बदलने का आह्वान ! एक प्रश्न, स्त्री हाशिये से बाहर आती-आती हाशिये में ही क्यों लौट जाना चाहती है ? क्या यही नियति है स्त्री की ? अनुभूति की आत्मग्लानि को इन पंक्तियों ने धो दिया, प्रेम को किसी धर्मशास्त्र में गुनाह नहीं कहा गया है । पत्नी बनकर क्या स्त्री, स्त्री नहीं रहती ? अनुभूति को लगा, वह अपने गुनाहों को जस्टीफाई करना चाहती है । सौरभ फिर पत्र के जरिये वातावरण में फैल गया । वैधव्य पाप नहीं है । और फिर यह जानबूझ कर थोड़े ही ओढ़ा गया है । न ही स्वेच्छा से स्वीकार किया गया है । जीवन मृत्यु प्रकृति का क्रम है । उसी प्रकृति ने स्त्री को हर बार नई पवित्रता का बोध दिया । बिलकुल ऐसे ही, जैसे वह घोर अंधकार में आकाश में चमकती बिजली से अपना आदेश लिख देती है । वृक्षों को ठूँठ जैसा करके फिर हरा कर देती है । एकाकी मन को वृंदावन कर देती है । जहाँ अहर्निश रास चलता रहता है । जैसे कली खिलती हुई अलग-अलग पँखुड़ियों में विकसित होती हुई टुकड़ों में विभाजित नहीं होती, बल्कि अपने सौरभ से दिग्-दिगंत में व्याप्त हो जाती है ।

प्रेम जीवन का ब्रह्मभाव है । आत्मकेंद्रियता से बाहर निकलने पर अवरुद्ध विकास भी गतिमान हो जाता है । प्रेम अहं से हम तक का सफर है । आत्म से ब्रह्म में विलीन होने की प्रक्रिया । यह मनुष्य का वैश्वीकरण है । प्रेम से मिला दुख दूसरों के दुख को समझने की संवेदना जगाता है । अनुभूति ने पहली बार जाना—जहाँ प्रेम देह के आधार पर खड़ा हो ह्रासमान रहता है, जहाँ जब आत्मा तक का सफर तय कर लेता है, वहाँ अमर हो जाता है ।

मुझे तुम्हें छूना नहीं है, सौरभ । सिर्फ महसूस करना है अन्तस् तक । सौरभ की तरह वह भी हल्की हो जाती है । सौरभ पूरे वातावरण में, अन्तस में, आत्मा में प्रविष्ट हो कर विश्व में व्याप्त होता चलता है । इसकी अनुभूति नीरव है किंतु आशा और अधिकार से परिपूर्ण । शायद यही है प्रेम की चरम अभिव्यक्ति । ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अनुगामिनी

● डॉ. अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता'

भोर की किरणें, चिड़ियों का चहचहाना, बिजली के तारों पर कतारबद्ध कबूतरों का बैठना। ग्वालों का गाय-भैंसों का दूध निकालना। बच्चों का भारी-भारी बस्ते पीठ पर लाद कर कुछ आगे की ओर झुक कर चलना। वह महीनों से नहीं, वर्षों से यही देखती आ रही है। वही जिंदगी की रफ्तार है। वही परंपराएँ हैं। जी भर कर जीने की चाह आज भी उसकी तरह उसे सभी में दिखाई देती है। नैराश्य की स्थिति उसे भी कई संदर्भों में भोगनी पड़ी, पर किससे क्या कहती ? एक प्रश्न पर एक ही व्यक्ति, या वह स्वयं क्या स्थिर रह पाई है ? शायद नहीं। अनायास ही तो जीवन में कोई प्रवेश नहीं करता ? एक लगाव उसके हृदय ने, भावों ने चाहा, दैव-योग्य से उसे कुछ क्षण अपना ही है, रहेगा, का अधिकार काली ने दे दिया था।

श्री काली-स्वामी से परिचय एक असंभावित-सी दिखने वाली घड़ी थी। वह भी अपने से हजार बार पूछ चुकी है कि 'श्री काली-स्वामी' से मात्र तीन दिनों की मुलाकात में, वह भी अपनी सखी की बेटी की शादी में, 'श्री' कैसे हट गया। वह श्री काली-स्वामी कहने के बजाए, मात्र काली जी, और फिर काली ही क्यों कहने लगी ?

एक घटना बेसिर पैर की जरूर उसे याद आती है जबकि सखी की बेटी शादी की विदाई पर 'मामा' कहकर श्री काली-स्वामी से लिपट कर रो रही थी। उसकी भी आँखें नम हो चली थीं। फिर भी, वही बेटी को अपनी बाहों में भरकर फूलों से सजी कार की ओर ले जा रही थी। अचानक अपने दोनों कंधों पर दो हाथों का स्पर्श उसने महसूस किया। पलट कर देखना चाह कर भी नहीं देखा। लेकिन उस स्पर्श में एक असीम आश्वासन की बात थी। अन्तस् तक सुखी महसूस किया था उसने।

बिदा हो जाने पर सभी बैठक में आ गए थे। धीरे-धीरे 'पुरुष आतिथ्य' अलग, 'स्त्री-आतिथ्य' अलग होकर घरेलू, व्यापारिक बातों में मशगूल हो गए थे। लेकिन श्री काली-स्वामी सिल्क का उत्तरीय ओढ़े सोफे पर एक किनारे-से बैठे थे। वह भी नंगे पैरों। धीरे-धीरे बैठक में से होकर गुजर रही थी कि अपना नाम सुन कर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ठिठक गई । सिर दाईं ओर घुमा कर देखा तो उसकी सखी महालक्ष्मी और श्री काली स्वामी जी एक ही सोफे पर बैठे बातें कर रहे थे । सखी महालक्ष्मी ने पुकारते हुए कहा—'सुनो विजया, आओ बैठो । इनसे परिचित तो हो ही गई होगी । मेरे बड़े भैया श्री काली स्वामी अप्पा हैं । बंगलौर में थे । बचपन में सिनेमा का थियेटर खेलने का शौक लग गया था । विवाह किया ही नहीं । अभी भी स्ट्रगल कर रहे हैं । वायलिन खूब अच्छा बजाते हैं...

"रुकोगी लक्ष्मी माँ या बस कहती ही चली जाओगी ? इनका परिचय मैंने पा लिया है । व्यवहार और चेहरा देख कर व्यक्ति को पहचान लेना कठिन नहीं है । हर बात शब्दों में कही जा सकती है ! किंतु भावों की लैंग्वेज यानी भाषा स्पर्श होती है । आँखें होती हैं । लक्ष्मी-माँ, मुझे पता है कि तुम्हारी सखी विजया, रंग-तूलिका के भीगे रंगों में सबसे ज्यादा आसमानी रंग, हल्के उन्नाबी रंग और गुलाबी रंग को प्यार करती है । क्यों विजया जी, ठीक समझा है ना हमने आपको ।' श्री काली स्वामी बोले थे ।

वह भौंचक्की-सी रह गई थी । सखी महालक्ष्मी ने हाथ पकड़कर उसे अपनी जगह बिठाते हुए कहा, 'देख लिया ना हमारे श्री काली स्वामी अप्पा की नजर को, पहचान को । इनसे ही अब तुम अपनी कहानियों के बारे में विचार-विमर्श कर लेना । सिनेमा की थीम में रंग भरना ये जानते हैं । फोटोग्राफी में कई बार राष्ट्रीय पुरस्कार पा चुके हैं । वो पेंटिंग 'शांति-दूत कबूतर' की जो मैंने तुम्हारे जन्मदिन पर दी थी, वह भी अप्पा की ही बनाई हुई है । आग और धुओं के बीच जीवित रहने वाला इन्सान ही होता है । तभी तो वह जमीन पर खड़ा बच्चा, आकाश में उड़ते सफेद कबूतर को ही अपना शांति-वाहक बनाता है । ठीक है विजया, तुम अप्पा से बातें करो, मैं भीतर जाकर मेहमानों के लिए भोजन की व्यवस्था देखती हूँ ।" कहकर उसकी सखी महालक्ष्मी, अपने भँवर-केशों को अँगुलियों में लपेटते अंदर चली गई ।

उसे कुछ क्षण सोचने में लगते कि श्री-काली-स्वामी से कहाँ से बात शुरू करे । दूसरे पल चौंकी ।

"विजया जी ! अँधकार की गहराई में स्त्री को नहीं सोचना चाहिए । नियम ही जिंदगी में जब एकरसता लाकर नीरसता भरने लगे तो नारी, स्त्री या हम ही क्यों न हों, उस नियम में संगीत, कला, पूजा-अर्चन को महत्व देते हुए अपना सकती हैं । मैं पुरुष हूँ । अधिकार की महत्ता समझता हूँ । लेकिन इस छोटी-सी जिंदगी में, यह 'पौरुष' भी व्यर्थ होने लगता है । जब, अधिकार जमाने के लिए स्त्री को ही चुनते हैं । क्यों ? क्या हमारा 'प्यार' स्त्री नहीं सहती ? या 'स्त्री' घर नहीं एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गुड़िया सरीखी रहती है । नहीं जानता हूँ कि विजया जी आप पुरुषों के बारे में क्या सोचती हैं ? लेकिन मैं स्त्री में, एक आकाश, एक समुद्र और पृथ्वी तथा षट्त्रऋतुएं ही देखता हूँ । आपके कंधे पकड़े थे मैंने । आपने मेरे दोनों हाथ हटाए नहीं, न ही 'तुम' आप उस क्षण आगे बढ़ीं । तभी लगा कि एक ऐसे पुरुष साथी की खोज में हैं जिसे आप अपना मित्र कह सकें । ठीक है या गलत ? स्वतंत्र हैं टिप्पणी करने के लिए ।"

वह अपने मन की चोरी पकड़े जाने के भय से बिना श्री काली स्वामी की ओर देखे, अपनी सखी के पास चली गई, 'महालक्ष्मी, बाहर बैठे अतिथियों को बुला लो ! खाना-पीना हो जाना चाहिए । मुझे शाम को ही घर लौटना होगा--- वरना माँ चिंता करेंगी ।'

विजया खाना परोसने लगी ।

घर लौट आने पर उसका चित्त शांत नहीं रह सका । रह-रह कर श्री काली स्वामी की कही बातें कानों में गूँजती रहीं—"मैं, स्त्री में, एक आकाश, एक समुद्र और पृथ्वी तथा षट्ऋतुएँ ही देखता हूँ ।" तो उसमें उन्होंने उन क्षणों में क्या देखा था जो बिना भूमिका बाँधे कह बैठे थे— "मुझे लगता है विजया, कि तुम ऐसे पुरुष मित्र की खोज में हो, जिसे मित्र कह सको ।" जिंदगी में रोशनी का सत्य अँधेरी गुफाओं की कठिन यात्राओं से ही स्थापित होता है । इसे वह स्वीकारती है ।

उसे अचानक ही श्रीकांत वर्मा की कहानी-संग्रह की भूमिका याद आ गई "एक चित्रकार के साथ कोई मजबूरी नहीं कि वह फिल्म बनाए, संगीतकार के लिए आवश्यक नहीं कि वह कवि हो । कवि विवश नहीं है कि कहानी लिखे । यदि वह यह सब करता है तो जरूर कोई मजबूरी होनी चाहिए, क्योंकि कलाकार अपने अधूरेपन को भरना चाहता है ।" लेकिन उसकी ऐसी क्या मजबूरी हो सकती है । विवाह ही तो करना है । जब हृदय की झंकार होगी, कर लेगी । हाँ, उसने श्री काली स्वामी का हाथ क्यों नहीं हटाया, यही बात सोचने की है । क्या वह पुरुष-स्पर्श के लिए समर्पित हो जाना चाहती है ? मन ने कहा 'हाँ' और दिमाग ने उसे अस्वीकार कर दिया ।

उसने कमरे के पर्दे के पीछे से श्री काली स्वामी जी की पेंटिंग निकाली । उसकी धूल साफ की । स्टूल खाली करके कोने में रखा, उसके ऊपर पेंटिंग सजा दी और पलंग पर लेट गई । उसे लगा कि आते समय श्री काली स्वामी से मिल आती तो..."

एक हफ्ते में वह फिर अपनी कार्य-विधियों में लीन हो गई । अचानक ख्याल आया कि नारी-प्रगति मंचों से नहीं, संस्कारों से, पहरावे से ज्यादा प्रभावशाली सिद्ध

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

होगी। अतिक्रमण की सोच में बच्चों की पीड़ाएँ कौन समझेगा ? हमेशा 'अहं' के युद्ध में विकास की गति बच्चों को ही तो कुण्ठित करती है। वह भी अपने मंच पर इन मुद्दों को रखेगी ? तभी नीचे से माँ की आवाज आई, "विजया बेटी ! कोई तुम्हें ही पूछ रहे हैं।"

वह पलंग से उठी ! नंगे पाँव ही सीढ़ी उतरती बैठक में आ पहुँची। ठिठक गई श्री काली स्वामी को रेशमी 'उत्तरीय' के साथ रेशमी साड़ी पहने देख। "आ ऽऽ ?"

विजया जी, विश्वास करना अच्छा होता है। बिना सूचना दिए आ गई थीं। सोचा कि बंगलौर जाने से पहले माफी माँग आऊँ। मेरे कहने से बुरा मान गई होंगी।"

"आप अंदर तो आइए।" कहती हुई विजया आगे चलने लगी। पीछे श्री काली स्वामी थे। 'ओह, चप्पल बाहर उतार आऊँ। तलवों में ठंडक रहे तो अच्छा लगता है।' चप्पलें बाहर उतार कर वह कमरे में आए, तख्त पर बैठ गए। "माँ को बुलाएगी ?" उन्होंने आग्रह किया।

"माँ, महालक्ष्मी के भाई 'काली जी' तुमसे मिलना चाहते हैं।"

"उनसे भी।" कहकर श्री काली स्वामी की आँखों में एक गहराईभरी दृष्टि कौंध गई। दूसरे पल ही सहज हो गए।

"बैठो-बैठो। विजया शादी की बड़ाई कर रही थी। बेटी का ब्याह भी आज एक पुण्य-संस्कार की दृष्टि से नहीं, व्यापार की दृष्टि से देखा जा रहा है। बंगलौर में क्या काम करते हो, बेटा स्वामी ?" माँ ने पूछा।

"माँ, हम लोग का यूं तो काम मंदिरों में पूजा-अर्चना कराना रहा है। पीढ़ियों से यही काम घर में होता आया है। पर मैं वहाँ के योग्य नहीं रह गया था। इसलिए भ्रमणकारी 'यायावर' बन गया हूँ। अपराध माँ इतना था कि यज्ञोपवीत पितृ-संस्कार में नहीं बदला। सात व्रर्ष का निष्कासन पाया है। अब अंतिम तीन माह रह गए हैं। फिर विवाह भी कर सकूँगा। योग्य कन्या की खोज पूरी हो गई है।" श्री काली स्वामी बोले।

विजया उठकर भीतर आ चुकी थी। उसे श्री काली स्वामी रहस्यात्मक व्यक्तित्व वाला पुरुष दिखने लगा। उसे लगा कि जो है नहीं, उसके बारे में चर्चा करना कितना सार्थक है ?

माँ बड़े इत्मीनान से बातें कर रही थीं। "बेटा, विवाह संस्कारों का सेतु है। हमारे सभी संस्कार विवाह से जुड़े हुए हैं। विजया से बातें करो, तब तक मैं अपने काम कर लूँ।" विजया कॉफी भी बना कर ले आई। साँझ का झुटपुटा होने आ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रहा था। पूस की सर्दी। बाहर के बड़े वृक्षों पर चिड़ियों का चहचहाड़। मानो सभा संसद की चर्चा हो रही हो। और कमरे के अंदर काली कॉफी पीते हुए श्री काली स्वामी ने इच्छा जाहिर की। एक मूक भाषा।

"जो चित्र महालक्ष्मी माँ ने आपको दिया है, देख सकता हूँ।"

"जी!" ऊपर जाकर वह पेंटिंग ले आई। श्री काली स्वामी ने उसे देखा। लेदर-बैग से स्केच पैन निकाला और लिख दिया—'जिसे अँधेरों से डर नहीं लगता उस विजया को स्वामी की ओर से!' चलते हुए श्री काली स्वामी ने उसे एक कार्ड दिया— 'पत्र आने पर समझूंगा कि चित्रकारी के प्रति आपमें अनुराग है। और विजया जी, कभी फिर मुलाकात हुई तो..., एक प्रश्न कह लें या मेरा मन, हर युवती, विवाह होगा, विवाह हो जाना चाहिए की भावना लेकर ही क्यों हर क्षेत्र में उतरती है? आप कहेंगी तो समझ सकूँगा। मुझे न जाने क्यों लड़कियों के प्रति इस दृष्टि से बड़ी जिज्ञासाएँ रही हैं।"

"लक्ष्य की सीमाएँ, एक खूबसूरती पैदा करती है, काली जी। औरों के बारे में तो नहीं कह सकूँगी, परंतु सत्य यह है कि रीति-रिवाज, संस्कृति, धर्म, मर्यादाएँ लड़की के बूते ही फूलती-फलती हैं। शायद इसीलिए एक उमंग और स्नेह परिवार में लड़कियों के व्यवहार से आँका जाता है। तभी सोचना भी शुरू होता है।" विजया ने सहज शांतभाव से कह दिया।

श्री काली-स्वामी जी ने उसकी पूरी बात ध्यान से सुनी। ब्लैक कॉफी पी। चलते-चलते बस यह कह गए.... 'विजया जी, व्यक्तिपरक काव्य और व्यावहारिक कला के धरातल एक नहीं हो सकते। मूल्यांकन करते समय इस ओर भी सोच देखिएगा। क्यों नहीं होता कि अनुभूतियों को व्यक्त करने की स्वतंत्रता हमारे यहाँ नारी, युवती और बालिका को नहीं दी जाती? होनी चाहिए। मैंने आज तक अपनी किसी भी अभिव्यक्ति में नारी का पलायन नहीं देखा। ना ही मैं सोचता हूँ। लेकिन जितनी भी जगह गया हूँ, महिलाओं से मिला हूँ, उनकी बातें आपसे कतई भिन्न नहीं हैं। चकित हूँ कि युवतियाँ, नारियाँ, बहिनें एक-सी ही बातें क्यों करती हैं? नदी, धरती, ऋतुएँ सब इन्हीं में ही तो समाई हुई है।'

विजया का मन हुआ कि कह दे...'हम अतिथियों का निरादर नहीं कर सकतीं।' पर नहीं कह सकी। फिर भी, बात दूसरे ढंग से कह ही दी... 'आप का सोचना सही है। हम नारियाँ आज भी मनोभावों के रागात्मक पक्ष के लिए संघर्षरत हैं। लेकिन पुरुष....। खैर छोड़िए! आप कला की दृष्टि से हर पहलू देखते हैं, जबकि असलियत दूसरी है। हम महज तूलिकाओं से खिंची रेखाओं को चित्रकारी नहीं कह सकतीं। हमें विभिन्न रंग भरने से पूर्ति की शक्ति मिलती है।'

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

विजया ने बात पूरी करते हुए श्री काली स्वामी के चेहरे के बदलते भावों को पढ़ लिया था।

"अच्छा, मैं चलूँगा। विचार करूँगा। खत भेजूँगा। उत्तर देंगी?"

वह दरवाजे के पास तक आ गई, "जी।"

श्री काली स्वामी के बारे में उसे अपनी सखी महालक्ष्मी से पता चला कि इन दिनों वह हिंदी भाषा को मग्न होकर पढ़ रहे हैं। भीतर से वे दो-तीन खत उठा लाईं। विजया को देती हुई बोली, 'पढ़ लेना, फिर मुझे अर्थ समझा देना। स्वामी आप्पा को उत्तर दूँगी तो लिख भेजूँगी।'

विजया ने खत पढ़े। महालक्ष्मी सखी ने लंबी-लंबी चर्चाएँ इस विषय में कीं। वही विजया ने बताने की पहल की। हाँ, पत्राचार द्वारा वह रंगों की प्रकृति को संजोने लगी।

वक्त गुजरता रहा। पल-पल जीना और समझना विजया को आ गया, पर आज भी वह भूल नहीं सकी। बसंत ऋतु में श्री काली स्वामी आ रहे हैं। माँ इसी समाचार से खुश हैं। और कहीं-न-कहीं वह स्वयं भी। वह उसी राह चलेगी जो माँ ने दिखाई है। अनुगामिनी ही गृहस्वामिनी बनती है। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं अब नहीं आऊँगा...तनु...

● सैली बलजीत

बस से उतरते ही, दिल में ढेरों उत्सुकता फैल आई थी, बस अड्डे से बाहर आते हुए कुछ क्षणों में ही मेरी उत्सुकता फड़फड़ाने लगी थी।

रिक्शा में बैठे हुए, मन में तनु का बतलाया नक्शा अभी आँखों में उतरना शुरू नहीं हुआ था। तनु के नक्शे के अनुसार गली के बाहर सबसे पहले पनवाड़ी की दुकान आनी थी, फिर गली के अंदर पहुँचते ही बड़े से दरवाजे वाली भुतहा प्लास्टर उखड़ी खण्डहर युक्त इमारत, फिर बेतरतीब मकानों की पंक्ति में विभिन्नताओं से सजी नाम पट्टिकाएं आनी थीं, फिर दाहिनी ओर घूमते हुए शिवजी का पुराना मंदिर, मंदिर के पास बूँद-बूँद टपकाती म्यूनिस्पैल्टी की टोंटी, फिर पाँच कदम पश्चिम की ओर स्थित नीले कांच और हरे रंग से पुते दरवाजों-खिड़कियों वाला मकान, जिस पर 'केशव काँत मेहरा' के नाम की पट्टिका लगी होनी थी। एक साथ लंबे चौड़े स्थलों वाला नक्शा मेरी आँखों में उतर आया था।

यों तो इस शहर में पहले भी न जाने कितनी बार आया होऊंगा, याद नहीं, लेकिन इस बार, इस शहर में प्रविष्ट होते ही, जाने क्यों लगा कि जैसे मैं इस शहर में अजनबी हूँ, 'तनु मेहरा'....तुतलाती हुई आवाज में फूटा नाम मुझे अन्तस तक हिला गया, मेरे अंदर करुणा का एक समुद्र फूट निकला ! सड़कों की चौड़ी छाती को रौंदता हुआ, रिक्शा इस शहर के लगभग दूसरे छोर तक आ गया था।

कृष्णा नगर तक पहुँचते ही तनु द्वारा निर्देशित नक्शा मेरी आँखों के आगे यों का यों सरक आया....नुक्कड़ में पनवाड़ी की दुकान, फिर गली के अंदर घुसते ही बड़े दरवाजे वाली भुतहा खण्डहरनुमा इमारत, फिर बेतरतीब मकानों की पंक्तियाँ, फिर शिवजी का पुराना मंदिर, मंदिर के पास म्यूनिस्पैल्टी की टोंटी, फिर चार-पाँच कदम पश्चिम की ओर बढ़ते हुए, नीले काँच और हरे रंग से पुते खिड़कियों-दरवाजों वाला मकान 'केशव कांत मेहरा' नाम पढ़ते हुए जैसे राहत महसूस हुई ! साँझ ढलने के साथ-साथ हवा में भी ठण्डापन समाने लगा था। गली की बत्तियाँ एक साथ दमक उठी थीं।

कुछ ही क्षणों में मैं उस अजनबी घर के अंदर था। मुझे देख आँटी विस्मित

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुए बौखलाते हुए बुदबुदाई थीं, "देखो तो तनु, कौन आया है भला ?"

वह उछलती-कूदती एकदम ठिठक-सी गई थी। उसके चेहरे पर रंगत चढ़ आई थी "ओह, वैष्णो देवी वाले अंकल आए हैं।" उसके साथ तनु ने तालियाँ पीटते हुए घर को सिर पर उठा लिया था।

मैंने बढ़कर उसे गोदी में उठा लिया था। मेरे बैठते-बैठते एक साथ अनगिनत प्रश्नों की बौछार कर दी थी उसने। फ्रॉक में फुदकती हुई उसने घर को सिर पर उठाने का सिलसिला जारी रखा था। घर में जैसे एक तूफान उमड़ आया था।

"मैंने तो सोचा था कि आप भूल चुके होंगे हम लोगों को।" आँटी ने कहा था।

"भूल जाना होता आँटी तो आपका 'एड्रेस' ही क्यों लेता भला ?"

"वैष्णो देवी में आपके साथ अच्छा वक्त कटा था। सच ! तनु तो कई दिनों तक बराबर याद करती रही थी आपको..."

मैं कह देना चाहता था आँटी कि जम्मू के बस अड्डे पर अंतिम बार बस में बैठी तनु बिटिया से बिछुड़ते हुए, उसके दिल पर क्या गुजरी थी। आँखों में धूल साफ करने के बहाने रूमाल से गीली हुई आँखों को किस सलीके से पोंछ लिया था। और किस तरह भारी मन से बस-अड्डे के बाहर बुत बना खड़ा रहा था। लेकिन....फिलहाल मैं चुपा गया था। तनु सीढ़ियाँ उतरती हुई अपना उल्लास बिखेरती हुई आँटी की ठीक बगल में बैठ गई थी।

"अंकल, मेरे लिए अमरूद लाए ?" तनु ने पहला प्रश्न दागा था।

"तनु बेटे, अपने अंकल को चाय को तो पूछी नहीं और अमरूदों की याद नहीं भूली तू...जा...जा...अपने अंकल को खिलाओ न कुछ...." आँटी ने कहा था।

"नहीं मम्मी, अंकल ने अमरूद लाने का वादा कियां था।" तनु ने अपनी जिद को फिर से दोहराया था।

"आँटी, रहने दो न, बच्ची है। क्यों डाँटती हैं ?....इधर आओ तनु। देखो तो तुम्हारे अंकल क्या लाए हैं तुम्हारे लिए...." मैंने ब्रीफ केस में कपड़ों की तहों में से टॉफियों वाला डिब्बा उसे थमा दिया था।

"अमरूद, अंकल ?....चलो फिर सही...." तनु ने टॉफियों वाला डिब्बा फर्राटे से खोल लिया था।

"बेटे, अमरूदों का मौसम थोड़े है अब....अगली बार जब आऊंगा तो तुम्हारे लिए अमरूद ही लाऊँगा।" मैंने कहा था।

"छोड़िए आप, लो चाय पियो। इसके साथ बतियाते रहे तो रात हो जाएगी।" आँटी ने मुझे चाय का कप थमाते हुए कहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाय पीते-पीते तनु ने मेरे आगे रंग-बिरंगे ढेरों खिलौने फैला दिए थे...यह चाबी वाला भालू, यह रेंगता हुआ कछुआ...यह टपटपाता हुआ घोड़ा....यह घूमती हुई गाड़ी...

"अरे अंकल ! यह देखो, मेरे गुड्डा-गुड़िया । इनकी शादी है परसों ।"

"गुड्डे-गुड़िया की शादी में अपने अंकल को बुलाओगी न ?"

"आप जरूर आना, अंकल ! यह देखो, मम्मी ने मेरी गुड़िया के लिए कितनी सुंदर साड़ी दी है और गुड्डे के लिए पैन्ट और बुशर्ट ।" तनु ने एकाएक गुड़िया को अपनी छाती से लगा लिया था !

"कभी पढ़ती भी हो, मुई ! या सारा दिन यह धमाचौकड़ी ही मचाती हो ?"

"क्लास में मेरी टीचर से पूछो तो....अंकल ! कहेंगी, तनु मेहरा इस बार भी फर्स्ट आई है । हाँ, अंकल, सच्ची ! !....मेरे स्कूल चलेंगे न ?"

"कहाँ है तुम्हारा स्कूल ?"

"हमारे घर के पिछली ओर जो पीपल का बड़ा-सा पेड़ है न अंकल । पेड़ के आगे चलकर जो गुरुद्वारा आता है न अंकल ! उसकी ठीक बगल में जो बड़ा-सा मैदान है न, उसके ठीक सामने ही तो है । अरुण रश्मि सैनिक स्कूल ?...."

मेरे सामने तनु ने एक बार फिर मायावी नक्शे का जाल-सा फैला दिया था । उसके खिलौनों....गुड्डे-गुड़ियों के खेल ने मुझे और तरल कर दिया था । मैं तनु को गोदी में उठाए नीचे सीढ़ियाँ उतर आया था ।... गली के बाहर आते ही तनु ने मुझसे जबर्दस्ती गर्मागर्म जलेबियाँ खरीदवाई थीं, "अंकल, अगली बार जब आएँ, अमरूदों को लाना मत भूलना ।" इसके साथ ही कितने ही आदेश, कितनी ही हिदायतें मेरी हथेली पर थमाते हुए तनु फुदकती हुई, रस्सी फाँदती हुई गली के छोर तक पहुँचते-पहुँचते आँखों से ओझल हो गई थी ।

मेरे शहर से तनु का शहर ज्यादा दूर नहीं । मैं उसके बाद भी यदा-कदा वहाँ जाता रहा हूँ । हर बार तनु मुझे मेरी बिटिया का ही प्रारूप ओढ़े दिखी है । जाने क्यों, वैष्णों देवी वाली यात्रा मेरे लिए अविस्मरणीय हो गई है । इसी यात्रा के दौरान तो तनु एक बिटिया के रूप में, अपना सारा दुलार लिए हुये, मुझे मिली थी । हाथों में छड़ी टेकते हुए आगे पर्वत-मालाओं पर सवेग चढ़ते हाँफते हुए हम लोग एक परिवार हो गए थे ।

मुझे याद है, हमने पहाड़ों पर चढ़ते हुए कितने पड़ाव लिये थे । मुझे भी विवशतावश उसके साथ नन्हें-नन्हें कदमों से चलना पड़ा था । अंकल और आँटी हमसे बराबर आगे निकलते रहे थे । पूरे सफर में तनु मेरे अंग-संग मेरी ही बिटिया की तरह फैली रही थी । जाने कैसे मैं एकाएक बाप होता चला गया था और तनु

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मेरी 'बिटिया'। एकाएक मेरे अंदर ढेरों हिलोरता हुआ स्नेह जाने कैसे पनप आया था... ?

पहाड़ों पर चढ़ते-हाँफते हुए आंटी ने कहा था, "यूँ लगता है जैसे तनु बरसों से तुम्हारी वाकिफ हो। देखो तुमसे कैसे घुल रच गई है मुई ?"

तनु मेरे कंधों पर उकड़ूँ बैठी चिल्लाई, थी, "अंकल और तेजी से, पापा-मम्मी सभी को पीछे छोड़ दो। अरे-अरे-देखो...मम्मी-पापा पीछे छूट गए हैं..." इसके साथ ठेंगा सा दिखाती हुई तालियाँ पीटने लगी थी। हम फिर आगे निकल आए थे। रास्ते में तनु की ढेरों फरमाइशें—कभी टॉफियाँ, कभी कचौड़ियाँ, कभी गर्मागर्म पकौड़े, कभी जलेबियाँ, कभी छोले भटूरे, कभी चाय, कभी...कभी...

मुझे स्मरण हो आया था कि उन दो-तीन दिनों के अंतराल के बीच हमने एक परिवार की शक्ल में एक ही टेबिल पर होटलों में खाना खाया था। एक ही कमरे में रहे थे। यहाँ तक कि रात को भी तनु मेरे बिस्तर में जबर्दस्ती घुस आई थी। मेरे कान खा लिये थे बोल-बोल कर...कहानियाँ सुनाओ, कभी पहेलियाँ बुझाओ, कभी गणित के टेबल्स, कभी हिंदी के शब्दों की रटाई, कभी अंग्रेजी की फर्राटेदार कविताओं का सस्वर अलाप, कभी परियों-राक्षसों की कहानियों की फरमाइशें, कभी चिड़िया कौवे की कहानी, कभी शेर-बकरी की कहानी, कभी...

मेरी बचपन वाली भावुकता मुझे एक नए रिश्ते में पिरो गई थी। अलबम पर चिपकी तस्वीरों में से कुछ एक तस्वीरें मेरे लिए जैसे एक निधि हो गई थीं, जिनमें तनु किसी तस्वीर में मेरे कंधों पर चढ़ी बैठी है, किसी में मैंने उसे गोदी में उठाया हुआ है, किसी में मेरी अँगुली थामे खड़ी है, किसी में ठहाके लेती हुई उछल-कूद रही है, किसी में उदास-सी गुमसुम बैठी है....

गुमसुम तो आज भी जाने कहीं बैठी होगी, बेचारी ! उसे देखे मुझे आठ साल होने को हैं और यह अंतराल जैसे मीलों लंबा फैल आया है। उसकी तस्वीरें ही मात्र देखने भर को रह गई हैं अब। सब कुछ तो विकराल पैने दाँतों वाला जबड़ीला राक्षस निगल गया है।

मेरी अलमारी में अब भी एक सपनीला संसार ज्यों का त्यों जीवित है। मेरी अलबम में उसकी तस्वीरें जीवंतता की सीढ़ियों पर चढ़ी बैठी हैं। उसकी टूटी काँच की चूड़ियों के रंग-बिरंगे टुकड़े, पत्थरों के छोटे-छोटे मुलायम टुकड़े, उसकी खाई टॉफियों के रैपर, रास्ते में इकट्ठे किए फूल, चीड़ के विशालकाय दरख्तों की हरी-भरी शाखाएं, जो अब सूख गई हैं। तनु ने जिन पत्थरों पर जगह-जगह अपना नाम उकेरा था, अब भी कहीं धुँधला-सा अंकित होगा। या समय के गर्त में कहीं विलीन हो चुका होगा....

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

वैष्णो देवी की यात्रा से वापस लौटने पर दफ्तर के अन्य कर्मियों से कई बार गर्मागर्म बहस हुई थी। मुझे उन्होंने भावुक होने से कितनी ही बार आगाह किया था। लेकिन....दिनों तक मेरे अंग-संग एक रिश्ता बराबर चिपटा रहा था। मैं जाने कैसे एक 'बाप' होता चला गया था। हर बार पहले से अधिक सशक्तता के साथ यह रिश्ता स्वयं पर ओढ़ा हुआ पाया था। मैं कई दिनों तक ऑफिस में उखड़ा-उखड़ा सा रहा था। उन्हीं दिनों वैष्णों देवी वाली रंगीन तस्वीरें फोटोग्राफर से तैयार होकर आ गई थीं। एक अतीत जीवित हो उठा था, एक सपनीला संसार और ज्यादा मायावी हो गया था। उन्हीं में से दो-एक तस्वीरें मैंने अंकल के नाम, अपनी तनु बिटिया के लिए एक स्मृति शेष के रूप में डाक से प्रेषित कर दी थीं। मुझे याद है, पिछली भेंट के समय आँटी ने बतलाया था कि तनु मेरी और अपनी तस्वीरें लेकर सारे गली-मुहल्ले में उछलती हुई दिखलाने ले गई थी। शाम तक तस्वीरों पर मुचड़ जाने से कई सिलवटें पड़ गई थीं। मैं तनु के स्कूल में भी परिचित हो गया था, उसकी नन्हीं-नन्हीं सहेलियों-सखियों के बीच भी....

पिछली बार तनु घर में नहीं मिली थी। मैं उस दिन चला भी बेवक्त आया था। अंकल दफ्तर गए हुए थे, घर में आंटी ही थी। चाय के बाद मेरी आँखों की उत्सुकता आंटी से बच नहीं पाई थी। घर में तनु की फ्राँकें, खिलौने, किताबों की बेतरतीब पंक्तियाँ, दीवारों पर पेंसिल-स्याही से 'तनु मेहरा' नाम की जगह-जगह लिखावट कहाँ, उसके स्कूल के नाम से अंकित दीवारें....सब एक ही नजर से निहार गया था। दीवार घड़ी के साथ बड़े से कॉरनिस पर, तनु और मेरी फ्रेम जड़ी तस्वीर पड़ी थी। फर्श पर गुड्डे-गुड़िया के कपड़े पसरे थे, कहीं-कहीं पर पेंसिल, रबर, चाक के टुकड़े बेतरतीब से इधर-उधर बिखरे पड़े थे। कोने वाली टेबुल पर साँप-सीढ़ी के खेल वाली लुडो, कैरम-बोर्ड की गिट्टियाँ, साथ ही रंग-बिरंगी पत्तियाँ और दीवार के साथ बड़े साइज वाला कैरम खामोश पड़े थे।

सब कुछ होने के बावजूद घर में एक रिक्तता थी। आंटी बतियाते हुए मुझे तनु के स्कूल में मिल आने को कहने लगी थीं, "देखिए तनु को पता चला कि आप आये थे तो घर को सिर पर उठा लेगी, आते ही...."

"तनु घर में नहीं क्या, आँटी ?" मैंने डरते-डरते पूछा था।

"स्कूल गई है तुम्हारी तनु बिटिया...चार बजे आएगी।"

"लेकिन आंटी, मुझे तो अभी वापस जाना है।"

"तनु को मिले बगैर चले जाओगे ?"

"नहीं तो..." मैं किसी भी हालत में तनु बिटिया से मिले बगैर नहीं जाना चाहता था....लेकिन आंटी को 'न' कहते हुए टालता रहा था कि कहीं आंटी मेरी इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भावुकता को पागलपन ही न कह दें ।

"रास्ते में स्कूल पड़ता है । वैसे मिलने नहीं देंगे स्कूल वाले...आप कहेंगे तो मिला देंगे । कहना कि उसका अंकल हूँ । बाहर से आया हूँ ।"

"ठीक आंटी...अच्छा रास्ते में देख लूँगा ।" मैंने अपनी उत्सुकता को झूठ की सलीब पर लाद लिया था...

रास्ते में सैनिक स्कूल की इमारत सामने आते-आते मेरे कदम ठिठक गए थे । फुर्ती से स्कूल के मुख्य द्वार फलाँगने के बाद मेरी भेंट स्कूल के गेटमैन से हुई थी । वो मुझे ऑफिस में ले गया था । हेड मिस्ट्रेस के सामने बैठे हुए भी मेरी उत्सुकता शिथिल नहीं हुई थी । मेरे स्कूल में आने के प्रयोजन को जानते हुए, हेड मिस्ट्रेस ने तनु से मिलने की इजाजत दे दी थी । मैं गेट मैन के पीछे-पीछे धीमी चाल लिये हुए तनु के 'क्लास रूम' तक चला आया था । कुछ क्षणों के बाद गेटमैन के पीछे नन्हें-नन्हें कदमों से ठुमकती हुई तनु मेरे सामने आकर रुक गई थी । पहचान का समुद्र लहलहा उठा था । तनु शायद स्कूल में होने के कारण एक क्षण भी मुझसे न बतिया पाई थी । मुँह में अँगुली दबाए मुस्काती भर रही थी । मैंने लपक कर पलोसते हुए गोदी में उठा लिया था उसे...फिर एकाएक वो गोदी से उतर तेज गति से बिना पीछे देखे अपनी कक्षा की ओर भाग गई थी । मैं दूर से ग्रीन रंग की वर्दियों में सजे इधर-उधर घूमते बच्चे-बच्चियों को अनमने से देखता रहा था...देर तक...

मुझे पूरी तरह स्मरण नहीं कि आज तक मैं आंटी के घर कितनी बार गया होऊंगा । हर बार के सफर का एक ही तो प्रयोजन होता था—तनु बिटिया को एक बार सिर्फ देख भर लेना, बातें कर लेना, उसके साथ जिदबाजी कर लेना, उसे गोदी में उठाकर बाजार में घुमा लेना । उसे शायद ही कभी चिढ़ाया हो मैंने, ऐसा जाने क्यों नहीं कर पाया हूँ ?

पिछली गर्मियों में गया था वहाँ । लंबे अंतराल के बाद तनु को देखने की उत्सुकता को दबाए था । मुझे स्वयं पर भी बेहिसाब गुस्सा आया था । क्या सोचते होंगे मेरे बारे में अंकल-आंटी ? ? तनु ने तो खूब जिद की होगी, अपने इस अंकल मिलने की...आंटी ही मिली थीं घर में । आंटी द्वारा दरवाजा खोलते ही, ढलते सूरज की दम तोड़ती धूप के छोटे-छोटे टुकड़े अंदर तक पसर गए थे । एक क्षण के लिए कमरे में इधर-उधर चितकबरी धूप बिछ आई थी । तनु होम-वर्क में जुटी थी । किताबों-कापियों के पुलिंदों के घेरे में घिरी हुई तनु मेरी आहट से चौकन्ना हो गई थी, "जाओ अंकल, मैं नहीं बोलती आपसे । झूठे हैं आप, अंकल कहाँ रहे इतने दिन ?"

"मेरी बात तो सुनोगी, तनु ?" मैंने उसे फिर पलोसते झुठला दिया था कि इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बार किसी लंबे टूर पर निकल गया था या घर में पिताजी की लंबी बीमारी से फुर्सत नहीं मिली या इधर नए हाउस कंस्ट्रक्शन की त्रासदीयुक्त टूटन में जी रहा था....या...आंटी दरअसल बात यह थी कि मुझे टाइफाइड हो गया था। लंबे समय तक बिस्तर पर पड़ा रहा था।" दरअसल जान-बूझकर ऐसा कहते हुए मेरे अंतस तक दिल की तहें चटख गई थीं। मेरे पास सच ही इस बात का उत्तर नहीं था कि मैं इतने लंबे अंतराल तक किस गर्त में खोया रहा था।

"जाओ, हम नहीं बोलते," तनु ने कुट्टी करने के अंदाज में कहा था।

"आप छोड़िए इसे और सिर पर चढ़ाओगे तो घर को आसमाँ पर उठा लेगी।" आंटी ने मेरी तरफदारी करते हुए तनु को डपट दिया था।

वह देर तक मुँह फुलाए रही थी। आंटी चाय ले आई थी। मैंने अमरूदों वाला लिफाफा टेबुल पर रख दिया था। मुझे याद था कि अमरूद तनु की कमजोरी है। पिछले दिनों से अपने और तनु के परिवार के संबंधों को लेकर गहरे तक व्यथित हुआ हूँ।. तनु को हर भेंट में नए रंग में देखा है। फ्रॉक, मैक्सी, मिड्डी, बॉल-बौटम, स्कर्ट-ब्लाउज के बाद उसको चुस्त सलवार कमीज में और छाती पर कसकर ओढ़ी हुई चुनरिया तक....।

गत दिनों आंटी के घर से लौटते हुए तन बिटिया को सलवार-कमीज और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छाती, शरीर से उठती मर्दाना गंध मेरे विश्वास को सदा बल प्रदान करतीं ।

ऐसी विकट परिस्थितियों की कंटीली झाड़ी में मैं नितांत अकेली थी । न सास, न ननद, क्योंकि राकेश अनाथ था । माँ सिर्फ जन्म देने के दायित्व का निर्वाह कर सकी । पिता ने पितृत्व के साथ मातृत्व के साये तले उसे पाल-पोसकर जिस दुर्दिन के छंटने की आस में राकेश को जवान किया, पढ़ा-लिखाकर योग्यता के शिखर पर बिठाया, उसके छंटने के पूर्व ही सारी उम्मीदों को आँखों में बंद किए-किए पलकें मूँद लीं । मैं राकेश के अकेलेपन को अपने वजूद से दूर करने आई लेकिन खुद सन्नाटे के गड्ढे में धंसकर रह गई । अब जो भी करना था, मुझ अकेली को ही करना था ।

मैं राकेश के भीतर अजगर की तरह कुण्डली मार कर बैठी हीन भावना को इस परिस्थिति की जड़ मानती थी । इसलिए टूटकर बिखरने के बजाय मैंने खुद को संभाला । धैर्य के दामन को कसकर पकड़ा । मुझे किसी भी शर्त पर राकेश के कॉम्पलेक्स को दूर भगाना था । सफलता की मंजिल तक सफर करने में पता नहीं, कितना वक्त लगना था । मंजिल को पा भी सकती थी या नहीं । सब कुछ अंधेरे की गर्त में था । साथ थी तो सिर्फ विश्वास की चमक जिसे साथ लेकर मैं एक-एक डग भरती आगे बढ़ती गई ।

मैं कुशल मनोचिकित्सक की तरह राकेश की बदसूरती के ऊपर उसके भीतर की खूबसूरती का मुलम्मा चढ़ाती गई । मैंने उसे एहसास दिलाया कि मैंने उससे शादी कर उस पर कोई एहसान नहीं किया था, बल्कि उसमें छिपे निश्छल प्रेम विश्वास के सागर में खुद को अंग-अंग डुबोने के लिए उसका दामन थामा था, क्योंकि एक यही वह चींज है जो आज के इन्सान से दूर होती जा रही है । धन, दौलत, प्रतिभा, शक्ति प्रभाव तो आज आम है । मैंने भारी गहनों और भड़कीली साड़ियों में कैद आलीशान कोठी और भव्य गाड़ी में उच्छवासें लेती अपनी माँ को अकेले में छटपटाते हुए देखा था । मैंने तभी निश्चय कर लिया था कि मुझे वैभव की चिता पर तिल-तिल कर नहीं जलना है । जिस प्यार की एक बूँद के लिए मेरी माँ सारा जीवन तड़पती रही, मैं उसकी सरिता में भरपूर डूबना चाहती थी और वह कल-कल, छल-छल बहती सरिता मैंने तुम्हारे भीतर महसूस की । तभी तो मैं उसे पाने को बेताब हो उठी ।

मैंने बड़ी मुश्किल से राकेश के व्यक्तित्व का हिस्सा बनी भक्ति की परछाई को दूर भगाया । उसमें पति के सुषुप्त एहसास को जीवित किया । दयाभाव एवं बेचारगी के लिजलिजे कीड़े का सफाया कर अधिकार एवं स्वामित्व के प्रति सजग किया । उसमें आत्मविश्वास जगाने में सफलता हासिल की ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं उस दिन अपनी मंजिल को पाकर धन्य हो उठी, जिस दिन सोची-समझी योजना के तहत मैंने एक सुदर्शन युवक का छायाचित्र राकेश को दिखाकर उसे अपना पुरुष मित्र बताया। उसे घर बुलाने की पेशकश की, इस अंदाज में कि उसे महसूस हो कि मैं उसमें रुचि ले रही हूँ।

अगर पहले मैं ऐसा प्रस्ताव रखती तो राकेश तुरंत राजी हो जाता। मेरी इस इच्छा की पूर्ति के लिए वह उतावला हो उठता। दफ्तर से छुट्टी लेकर मेरे उस तथाकथित पुरुष मित्र के स्वागत की तैयारियों में लग जाता लेकिन उस दिन पहली बार मैंने उसके चेहरे पर नाराजगी का हल्का-सा भाव देखा। मैं अपनी सफलता पर झूम उठी। वह ईर्ष्या एवं नाराजगी का भाव लिये दफ्तर जाने लगा। मैं मुस्कुरा उठी। लोहा गर्म देख चोट करती हुई बोली—"मैं आज ही उसे होटल से घर ले आती हूँ। कुछ दिन तो साथ रहेगा। वैसे भी दिन भर अकेले रहकर बोर हो जाती हूँ। क्या कहते हो ? ले आऊँ ?"

"...." वह चुप रहा लेकिन उसके चेहरे की नाराजगी कठोरता में परिवर्तित हो गई।

"मैं ले आती हूँ।"

"नहीं !" राकेश के मुँह से अचानक निकल गया। उसकी आवाज में अधिकार का कंपन था—" तुम अकेली नहीं जाओगी। शाम को हम दोनों उसे लेने चलेंगे।"

वह शाम हमारे गृहस्थ जीवन में स्वर्ग बनकर आई। राकेश के अंदर सुषुप्त बैठे पति ने अँगड़ाई ली और पूरे अधिकार के साथ उसने जेहन पर छाई देवी की छवि को झटककर मुझे पत्नीत्व से भर दिया। अब तो राकेश ने मुझे मातृत्व के उस अमृत बूँद से भिगो दिया है जिसकी एक बूँद पिये बिना नारी जीवन बंजर बनकर रह जाता है।

सारा कुछ अब व्यवस्थित हो गया है, लेकिन आज भी कभी-कभी हमारी शांत गृहस्थी में हलचल मच उठती है। वाह्य आकृति की सुंदरता की चकाचौंध से चमत्कृत समाज द्वारा जाने-अनजाने राकेश जब खुद को अपमानित महसूस करता है, तब वह उदास हो जाता है। जब भी ऐसा होता है, मैं उसे संभाल लेती हूँ।

अक्सर हम चिकने खूबसूरत चेहरे को देखकर धोखा खा जाते हैं। हम वाह्य आकृति के आधार पर व्यक्तित्व का आकलन कर बैठते हैं। किसी दूसरे को क्यों दोष दूँ ? उस दिन खुद मैं भी तो धोखा खा गई थी। चिकनी चमड़ी देख गलत शिनाख्त कर बैठी थी और एक बेकसूर को जलील होना पड़ा था। उस दिन की रोमांचकारी घटना याद कर मैं आज भी सहम जाती हूँ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तब मैं अपने पिता के साथ शेरघाटी में रहती थी। वह एक कस्बा था, शहर बनता हुआ कस्बा। चारों तरफ खड़े हरे-भरे लंबे वृक्षों के बीच बसा, जिसके दोनों ओर नदी बहती थी। जैसे दो लंबी बांहें पूरे कस्बे को अपने आगोश में लेकर बैठी हो। बीच से ग्रैंडट्रंक रोड गुजरती थी मानो कमर में करधनी बाँधी हो। अब तो शेरघाटी शहर बन गया है। पक्के मकानों से पट गया है। आबादी घनी हो गई है। मुहल्ले आपस में गुंथ गए-से लगते हैं। लेकिन पहले ऐसा नहीं था। दो मुहल्लों के बीच काफी फासला था जो शाम गहराते ही सन्नाटे में घिर जाता था। किसी अकेली लड़की को तब एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले में जाना खतरनाक समझा जाता था। किसी बड़े शहर के मुकाबले छोटे शहर या कस्बे में किसी लड़की का अकेला घूमना काफी खतरनाक होता है। गाँव और शहर की संस्कृति के बीच लटके आवारा लड़के काफी खतरनाक होते हैं। खासकर अकेली लड़की पर फब्तियाँ कसना, छेड़छाड़ करना, अवसर देखकर उठा लेना जैसी घटनाएं तो आम होती हैं।

मैं उन दिनों ऐसी अधकचरी कस्बाई संस्कृति के बीच अपने पिता और भाई की कड़ी सुरक्षा व्यवस्था के बीच कॉलेज की पढ़ाई कर रही थी। कभी पिता, कभी भाई साये की तरह मेरे साथ रहते।

उन दिनों मेरा भाई एक हफ्ते के लिए दिल्ली गया हुआ था। ठेके के काम से पिताजी को भी पटना जाना पड़ गया। नौकर पहले से ही छुट्टी पर था। कार अचानक खराब हो गई। एक दिन बाद फाइनल परीक्षा शुरू हो रही थी। गोला बाजार जाकर अपनी सहेली से नोट्स माँगकर लाना नितांत आवश्यक था। इसलिए माँ से इजाजत लेकर चली गई। सोचा था—दो घंटे में रिक्शे से वापस आ जाऊँगी। लेकिन वहाँ जाने के बाद सविता ने सिनेमा देखने की योजना बना ली। तब कलकत्ता के किसी बंगाली बाबू ने वहाँ नया-नया हॉल लगाया था। हॉल क्या, एक पुराने टूटे-फूटे मकान को तिरपाल और बांस के सहारे सिनेमा हाल-सा बनाकर पिक्चरें दिखानी शुरू की थीं। सब उसे तिरपाल टाकीज के नाम से जानते थे। कुछ फिल्म देखने की ललक और कुछ सविता के दबाव में आकर मैं राजी हो गई।

पिक्चर समाप्त होने के पश्चात् जब मैं बाहर आई, तो चारों ओर अँधेरा देख चकरा उठी। सड़क सुनसान हो चली थी। सिर्फ दुकानों के आगे रोशनी थी। वे भी एक-एक कर बंद हो रही थीं। जब बाजार में ऐसी स्थिति है तो बाजार से निकलने पर कैसी होगी? अनुमान लगाते ही मैं कांप उठी, क्योंकि नया बाजार जहाँ मैं रहती थी और गोला बाजार के मध्य काफी फासला था। दोनों मुहल्ले को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जोड़ने वाली सड़क प्रायः सुनसान ही रहा करती थी। रोशनी का उचित प्रबंध नहीं था। नया बाजार से सटे जहाँ नेशनल हाइवे गुजरती थी, वहाँ एक पान की गुमटी थी जो देर रात तक खुली रहती थी। कस्बे के आवारा लड़के मजमा जमाए रहते थे।

मैं सोच-सोचकर घबरा रही थी कि तब तक एक रिक्शेवाले को बुलाकर सविता ने पूछा—"तुम चली जाओगी न ?" मैं उसके सामने भीरू नहीं बनना चाहती थी। इसलिए उचककर रिक्शे पर बैठती हुई बोली— 'हाँ-हाँ, चली जाऊँगी, तू जा।" कहने को तो मैं कह गई, लेकिन रिक्शा ज्यों ही आगे बढ़ा, मैं भीतर ही भीतर कांप उठी। मन ही मन भगवान से प्रार्थना करने लगी। अंधेरे में डूबी टूटी-फूटी सड़क पर हिचकोले लेते रिक्शा चर्र...चूं...झड़झड़ की आवाज करता आगे बढ़ता रहा। मैं भय से सहमी गठरी बनी सन्नाटा खिंचे अंधेरे में देखने की कोशिश करती रही।

नेशनल हाइवे नजदीक आते ही गुमटी में लगे ट्यूब लाइट की रोशनी से सड़क कुछ दूर तक रौशन हो रही थी। रोशनी में आकर एक ओर जहाँ मुझे थोड़ी राहत मिली, वहीं आवारा लड़कों के उच्छंखल अट्टहास सुन मैं सिहर गई।

मैंने इधर-उधर नजरें फिराई। सड़क बिलकुल सूनी थी। रिक्शेवाले को देखा। वह जीर्ण-शीर्ण-सा पचास को पार करता कमजोर बूढ़ा था। मेरी स्थिति उस भयभीत हिरणी-सी हो गई जिसने जंगल में होते शिकारी के हल्ले को सुन लिया हो, लेकिन निकल भागने का रास्ता जिसे दिखाई नहीं पड़ रहा हो। मैं काँपती हुई भगवान का नाम लेती आँखें मूँदकर बैठी रही। मुझे खुद पर झुंझलाहट हो रही थी कि मैं इतनी डरपोक क्यों हूँ ? क्यों मुझमें साहस का एक कतरा भी नहीं। आखिर इतनी असहाय मैं स्वयं को क्यों महसूस कर रही हूँ। आज तक क्यों अपने भाई और पिता के साये में सुरक्षित रहने का भ्रम पालती रही ? सविता के साहस पर मैं रश्क करने लगी।

इन्हीं मनःस्थितियों में उलझी मैं गुमटी की बगल से गुजरने लगी, मुझे पता नहीं चला।

"ऐ रिक्शावाला, रुकना।" अचानक नशे में डूबे किसी लड़के की भारी आवाज सुनकर मैं कांप उठी। मेरी आँखें, जो पहले से ही मुंदी हुई थीं, और भी मुंद गई। मुझ पर बेहोशी सी छा गई। मुझे बस इतना आभास हुआ कि उसके आवाज देने पर जब रिक्शावाले ने रिक्शा नहीं रोका, तब उस लड़के के दो साथियों ने रिक्शेवाले को खींचकर ढकेल दिया और वह लड़का शराब की बची घूंट पीकर बोतल फेंकते हुए मुझ पर बाज की तरह झपट पड़ा। चीखकर मैं चेतनाशून्य हो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गई । फिर क्या हुआ, कुछ पता नहीं चला ।

मेरी चेतना तो तब जागृत हुई जब जानी-पहचानी आवाज मेरे कानों में दूर से आती हुई जान पड़ी— "बेटी, आँखें खोलो ।" मैंने डरते-डरते आँखें खोलकर देखा— सामने मोटर साइकिल खड़ी थी । दरोगा अंकल बिलकुल मेरे पास खड़े मेरी ओर देख रहे थे । मैं उनसे लिपटकर हिचकियाँ लेने लगी । वे मेरे पिताजी के मित्र थे । मुझे बेटी-सा प्यार करते थे ।

"चुप हो जा बेटी । यह तो अच्छा हुआ, ठीक वक्त पर मैं आ गया, वरना ये गुण्डे पता नहीं क्या कर डालते ?"

मैंने डरते-डरते उधर देखा, जिधर दरोगा अंकल ने इशारा किया था । उधर दो सिपाही दो लड़कों को कसकर पकड़े खड़े थे । दोनों को देखने से ऐसा लगता था, जैसे उनमें खूब उठा-पटक हुआ हो । दोनों घायल थे । उनके चेहरे धूल और खून से अंटे पड़े थे । उनमें से एक गोराचिट्टा और शक्ल से खाते-पीते घर का दिख रहा था और दूसरा उतना ही काला-कलूटा, बदसूरत था । उस बदसूरत लड़के पर नजर पड़ते ही मैं अंदर तक कांप उठी । पिछले दो-चार दिनों से वह मेरे पीछे पड़ा था । पिक्चर देखकर जब बाहर निकली थी, तब भी मैंने उसे देखा था ।

"बेटी, यही दोनों गुण्डे हैं । मैं जब यहाँ पहुँचा तो ये आपस में गुत्थमगुत्था हो रहे थे । इनमें से एक का कहना है कि वह निर्दोष है । उसने तुम्हें बचाने के लिए दूसरे से झगड़ा मोल लिया था । तुम शिनाख्त करो बेटी, इन दोनों में कौन है जिसने तुमसे छेड़खानी करने की गुस्ताखी की है । मैं साले को भीतर कर दूँगा ।"

मैं बेहिचक उस काले-कलूटे और भयानक शक्लवाले लड़के की ओर उंगली उठाकर बोल उठी— "यही वो लड़का है अंकल, यही वो लड़का है ।" मेरा इतना कहना था कि अजीब नजरों से लड़के ने मुझे देखा, फिर सिर झुका लिया ।

उसी रात मेरा भाई दिल्ली से वापस आ गया । सुबह होते ही जब मैंने रात की घटना को विस्तार से बताते हुए दरोगा अंकल के आने और उस लड़के को पकड़कर ले जाने की बात कही तो वह उस लड़के का हुलिया पूछने लगा । हुलिया जानते ही मेरा भाई सिर थामकर बैठ गया ।

"उफ्फ नीलू, तुमने यह क्या किया ? अनर्थ कर दिया ।"

मैं घबराकर उठ गई— "क्या अनर्थ कर दिया भाई ?"

"अरे, वह तो राकेश है । मेरा दोस्त । निहायत शरीफ, इण्टेलिजेण्ट । दिल्ली जाने के पहले मैंने ही उसे तुम पर नजर रखने को कहा था । बेचारा बी.पी.एस.-सी. की तैयारी कर रहा था, फिर भी मेरी बात मान गया ।"

भाई की बात सुन मैं बिलकुल सन्न रह गई । सचमुच अनजाने में मुझसे भारी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गलती हो गयी थी।

"अब क्या होगा भाई ?"

"होगा क्या ? दरोगा अंकल से असलियत बताकर उसे छुड़ाना होगा। माफी माँगनी होगी।"

ज्यों ही मेरा भाई जाने को हुआ, मैं उसे रोकती हुई बोली— "ठहरो भाई, मैं भी चलती हूँ। उससे क्षमा माँग लूँगी।"

"नीलू की बच्ची, पहले तो उसकी हड्डी-पसली तुड़वाकर हवालात में बंद करवा दी, अब क्षमा माँगने चली है। चुप बैठ। थाने में तमाशा दिखाएगी क्या ? मैं छुड़ा कर यहीं ला रहा हूँ। जितना चाहो, माफी माँग लेना।"

मैं भाई के वापस आने तक चहलकदमी करती रही। रात में उसका अजीब नजरों से देखना और सिर झुका लेना रह-रहकर कील की तरह मेरे हृदय में चुभ रहा था। एक-एक पल भारी हो रहा था। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था कि जब तक उससे माफी नहीं माँग लूँगी, मैं खुलकर साँस नहीं ले सकूँगी।

दूर से ही भाई के साथ उसे आते देख मैं बरामदे से आगे बढ़ गई। संकोच से मैं दोहरी हुई जा रही थी। कैसे आँखें मिलाऊँगी उस लड़के से जिसने मेरे कारण मार खाई और रात भर थाने में बंद रहा। घृणा भरी नजरों से जब वह मुझे देखेगा तो मैं मर ही जाऊँगी।

भाई के साथ सिर नीचा किये वह लड़का, जिसे भाई ने राकेश नाम से संबोधित किया था, मेरे सामने आकर खड़ा हो गया। उसकी नजर जमीन की ओर झुकी थी। इसलिए चेहरे का भाव मैं पढ़ नहीं पाई।

"बैठ यार, मैं तेरे लिए कपड़े लाता हूँ। चाय बनाने के लिए भी माँ को बोल दूँ।"

भाई के जाते ही मैंने आहिस्ते से आहट की, ताकि राकेश सिर उठाकर मेरी ओर देखे, तब मैं क्षमा माँगूं। लेकिन भाई के जाने के बाद भी वह सिर नीचा किए बैठा रहा बिलकुल अचल...शांत। उसकी कमीज जगह-जगह से फट गई थी। शरीर की खरोचों पर पपड़ी जम गई थी। सिर के काले घने केश धूल से अंटे पड़े थे। अस्त-व्यस्त हुलिया था। उसके ऐसे हुलिया का जिम्मेदार मैं खुद को मानकर अपराध-बोध से दबी जा रही थी। मैं और खुद को जब्त नहीं कर सकी। रूँआसी-सी बोल पड़ी— "मुझे क्षमा कर दीजिए। मेरी वजह से आप की ऐसी हालत हुई।" एक क्षण के लिए राकेश ने चेहरा उठाकर मुझे देखा। उफ्फ, उसकी भोली, निष्कलुष आँखों ने जैसे मुझे बींधकर रख दिया। उस समय भी कुछ ऐसा ही लगा था मुझे, जब दरोगा अंकल के सामने उस पर उंगली उठाते हुए मैंने गलत

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शिनाख्त की थी। शिकायत न उस समय उसकी आँखों में थी और न इस समय।

नजर नीची करते हुए उसने कहा— "कोई बात नहीं, आपने जान-बूझकर तो यह सब नहीं किया। आपकी जगह कोई दूसरा होता, वह भी यही करता।"

राकेश की आवाज मैंने पहली बार सुनी थी। इतनी मीठी आवाज किसी पुरुष की भी हो सकती है। पता नहीं क्यों उसके चेहरे का भोलापन, निश्छल आँखों का जादू और मीठी आवाज की कशिश मेरे जेहन पर छाते जा रहे थे। मैं उस समय चाहती रह गई कि एक बार राकेश फिर बोले लेकिन उसने चुप्पी साध ली थी। दोबारा नजर उठाकर भी नहीं देखा। मैं इंतजार में खड़ी रही। भाई के आते ही मैं चली गई।

इसके बाद मैं राकेश में खोती चली गई। आये दिन हमारी मुलाकात होने लगी। ज्यों-ज्यों मैं राकेश के करीब आती गई, उसके भीतर छुपी खूबसूरती की दीवानी होती गई। अब चेचक के दागों से भरा उसका काला चेहरा मुझे सलोना लगने लगा। सोते-जागते मेरी आँखों में राकेश के व्यक्तित्व का जादू छाया रहता। कानों में उसकी आवाज की मिश्री घुली रहती। आखिर में मैं उस मुकाम पर पहुँच ही गई जहाँ प्रेमी दो जिस्म एक जान बनने के लिए सारी बंदिशें तोड़ने पर आमादा हो जाते हैं। हमने शादी के बंधन में बंधने का फैसला कर लिया। ओह, गलत कह गई। हमने नहीं, सिर्फ मैंने। राकेश ने अपनी गरीबी और लाचारी का वास्ता देकर मुझे समझाने की हर संभव कोशिश की थी। लेकिन मेरी जिद के आगे उसकी एक नहीं चली।

आप सहज अनुमान लगा सकते हैं, मेरे इस निर्णय पर रूढ़ विचारों एवं सामंती मिजाज के मेरे पिता की क्या प्रतिक्रिया रही होगी। पर्दाफाश होते ही भूचाल आ गया था। मेरे निर्णय को वे आज भी आत्मसात नहीं कर पाए हैं और मुझसे विमुख हो गए हैं। आज भी नाराज हैं। पतिपरायण माँ की अपनी इच्छा कहाँ रह गई है। वह वही सोचती है जो उसका पति सोचता है, वही देखती है जो उसका पति देखता है। सिर्फ मेरा भाई है जो तब भी मेरी भावनाओं की कद्र करता था, आज भी करता है।

हमारी शादी होने तक मेरा भाई चट्टान की तरह हमारी रक्षा करता रहा। पिता की हर चाल नाकाम होती गई। अंततः हम एक हो गए। शायद राकेश के प्रति हुई भूल का यही प्रायश्चित्त था। शुरू के दो वर्ष मैंने राकेश के साथ अभाव में बिताए, लेकिन राकेश के सरकारी अधिकारी बनते ही हमारी दुनिया स्वर्ग बन गई।

उई माँ, आप से अपनी कहानी सुनाने में मुझे समय का पता नहीं चला। मेरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जानूँ के लंच पर आने का समय हो गया। आप चौंक क्यों गए? मेरा जानूँ यानी वही ....मेरा पति राकेश। वह आते ही शुरू हो जाएगा— 'जानी, तुमने अभी तक विटामिन की गोली नहीं खाई। फल भी ज्यों के त्यों पड़े हैं। ऐसी हालत में स्वास्थ्य के प्रति लापरवाही नहीं करनी चाहिए, डॉक्टर कहते हैं।" ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कहाँ हो तुम ?

• नीलप्रभा भारद्वाज

'कौन ?'

'मैं ।'

'क्यों ?'

'यूं ही चली आई ।'

'इतनी सर्दी और अंधकार में ?'

'आप भी तो खडी हैं ।'

'मैं....अं......अं...... ?'

'क्यों, आप नहीं खड़ी क्या ?'

'मेरी बात और है । तुम नहीं समझ सकोगी ।'

'समझ..... ? समझ नहीं, जानती भी हूँ ।'

'जानती हो ?' आवाज में सकपकाहट थी ।

'बता दूँ ?'

'सुनूँ तो.... ।'

'आप प्रकाश खोज रही हैं ।'

'प्रकाश ? और वह भी अंधकार में...... ?'

'हाँ ? अंधकार में भी प्रकाश । आप पिछले पच्चीस वर्षों से खोजती आ रही हैं । आपके अंतस्तल में छाए हुए अंधकार में प्रकाश की हल्की-सी भी तो कोई किरण नहीं है, जो आपके लिए संबल बन सके ।'

'आखिर तुम कहना क्या चाहती हो ?' दीदी की आवाज में झल्लाहट थी ।

'वही, जो आप चाहकर भी कहना नहीं चाहतीं । समझकर भी समझना नहीं चाहतीं । जानकर भी अनजान बनना चाहती हैं ।'

'साफ-साफ कहो, जो भी कहना चाहती हो । तुम्हारी यह फिलासफी, ये पहेलियाँ मेरी समझ के बाहर हैं ।' स्वर में झुँझलाहट थी ।

'मैं कहना चाहती थी, दीदी कि अंधकार को देखने के लिए भी आँखों में एकअज्ञात से प्रकाश की आवश्यकता होती है । आपके पास वह प्रकाश तो है,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मगर आप उस प्रकाश को स्वीकार नहीं करना चाहतीं । सुख-सुविधाओं की जिस भूल-भुलैया को आपने अपने इर्द-गिर्द इकट्ठा कर लिया है, उसके नीचे वास्तविकता दबकर रह गई है । आप स्वयं को बहला रही हैं ।'

'नीलू...ऊ....ऊ...सहानुभूति के माध्यम से तुम मुझसे कोई प्रतिशोध तो नहीं ले रही हो ?' दीदी ने चीखकर पूछा ।

'प्रतिशोध ? कैसा प्रतिशोध ? भला किस बात का प्रतिशोध लूँगी ? मैं तो केवल आपका साक्षात्कार आपसे ही करवाना चाहती हूँ ।'

'तुम्हारा मतलब, मैं स्वयं को पहचानती नहीं रही हूँ ?'

'पहचानना नहीं चाहतीं । और एकांत के निढाल क्षणों में जब भी आपका सामना स्वयं से हुआ है, आप आँखें चुराने लगती हैं । वही क्षण तो आपके अपने हैं । इन रिक्त पलों में वही आपका संबल हैं जिन्हें आप झुठला रही हैं ।'

'साफ-साफ कहो ।'

'भीतर की कुंठाओं के पाल को खोल दें और खुले समुद्र में मन रूपी जहाज को बहने दें, ताकि आपकी यह कुंठा, जो कछुए जैसी खोल के भीतर छटपटा रही है, आँसू बनकर आपकी ग्रंन्थियाँ खोल दें ।'

'नीलू ! तुम मुझे जलील कर रही हो ।'

'शांत हो जाइए, दीदी ! अधर में इधर-उधर भटकते रहने वाले तिनके की अपेक्षा एक धुरी पर स्थिर हो जाना अधिक उपयुक्त है ।'

'तुम परोक्ष रूप से कीचड़ उछाल रही हो, नीलू !'

'नहीं दीदी ! कीचड़ नहीं, आप ही नहीं ! बल्कि हर मनुष्य के दो चरित्र होते हैं । एक प्रत्यक्ष, दूसरा अप्रत्यक्ष । वास्तव में अप्रत्यक्ष रूप ही हमारा वास्तविक रूप होता है, मगर हम हैं कि वास्तविकता के ऊपर अवास्तविकता का आवरण चढ़ाकर संसार को तो धोखा देते ही हैं, स्वयं को भी छलते हैं । मैं चाहती हूँ, अपने रूप को पहचान कर आप कुंठा-मुक्त हो जाएं । जो पल जीये हैं, उसके सहारे ग्रंन्थियाँ तो खोलें । फिर भी आपको कुछ बुरा लगा हो तो क्षमाप्रार्थी हूँ ।'

और मैं चली आई थी, उनके अन्दर मचलते तूफान को रास्ता दिखाकर । उनकी हृदय-रूपिणी वीणा के तारों को झंकृत करके । एक अंतर्द्वन्द्व पैदा करके ।

कम्मो के वाह्य व्यक्तित्व से मैं तब से परिचित हूँ जब से स्वयं को भी नहीं पहचान पाई थीं । साधारण रंग-रूप और शिक्षा के साथ-साथ सभ्यता-शालीनता और गंभीरता से लिपटा हुआ सादा व्यक्तित्व । दीदी की सखी होने के नाते वे मेरे लिए उतनी ही सम्माननीय थीं, जितनी दीदी ।

एक दिन आया, जब सारी गली में हिरमिल बिछाया गया । रंगे हुए बुरादे से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फूल-पत्तियाँ बनाई गईं । रंग-बिरंगे फूलों के गमलों और केलों के स्तंभों से पण्डाल और मण्डप को सजाया गया था । रंग-बिरंगी बिजलियों, इत्र-फुलेल़, चंपा-चमेली की महक में सारा वातावरण अत्यंत ही गमक उठा था । और जब कम्मो की बरात आई तो पाँच तरह के बैण्ड-बाजों के साथ-साथ आकाश में छूटने वाली आतिशबाजियों ने दीपावली का समा बांध दिया था । देखने-सुनने वाले सब हैरान थे । कम्मो की शादी इतनी धूमधाम से होगी ? इसकी कल्पना तक शायद किसी ने नहीं की होगी ।

ढुकाव का समय आया तो दूल्हे को देखने के लिए धक्कम-पेली मची थी । उस भीड़ में एक नन्हा-सा उत्सुक दिल मेरा भी था । प्रेमा ने मेरा हाथ खींचकर कहा था, 'आ नीलू ! तुझे अपने जीजाजी दिखा दूँ ।'

जयमाला के लिए वर का सेहरा उठते ही मैं चिल्लाई थी, 'चकचुंदर ।'

दूल्हा झेंप गया । अम्मा ने मेरी पीठ पर धौल जमाई और भैया ने 'बेवकूफ' की उपाधि दे दी, पर तभी पीछे से आवाज आई थी, 'अरे ! ये तो बूढ़ा है ।' किसी ने कहा, 'बहुत पैसा है.....पहली बीवी से चार-चार बेटे हैं ।' कोई बोला था, 'तेल का कोल्हू.....जीनिंग फैक्ट्री, जाने कितने-कितने कारखाने हैं ।'

'कहते हैं, विवाह का सारा खर्चा उन्होंने ही उठाया है ?'

'और नहीं तो क्या ? बनवारी लाल की इतनी सामर्थ्य थी क्या ?'

'बाकी चार बेटियों की भी शादी अब तो अच्छी हो जाएगी ।' किसी और ने हँसकर कहा था ।

'इस बेचारी को बलिवेदी पर चढ़ाकर ?' कोई दयालु स्त्री बोली थी ।

मैं सबकी बातें सुन रही थी और कभी-कभी दुल्हन बनी कम्मो के चेहरे को देखती थी । वहाँ कुछ ऐसे भाव थे जिन्हें मैं तब तो नहीं पहचान सकी, मगर आज पहचानती हूँ । उनका चेहरा ऐसा था, जैसे अभी-अभी कोई काँच का बर्तन टूटकर बिखर गया हो ।

जयमाला के समय सजी-धजी मूर्ति-सी कम्मो यन्त्रचालित-सी चलती हुई आई और किसी निर्लिप्त-निर्विकार संन्यासिनी की भाँति जयमाला डालकर मंथर गति से लौट गई ।

वहाँ न किसी वार्तालाप की प्रतिक्रिया थी, न वातावरण का प्रभाव । वहाँ था केवल निष्काम भाव कर्म ।

विदाई के समय उसकी आँखों में एक बूंद भी आँसू नहीं था । अम्मा-बापू ने आँसू बहाए । भाई-बहन रोए । चाची-मासी चीखीं । मगर न जाने कम्मो किस मिट्टी की बनी थी ? डोली में बैठते हुए ऐसा लगा, मानो कोई शव स्वयं अर्थी पर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चढ़ बैठा हो।

औरतों में तरह-तरह की चर्चाएँ हुई थीं।

'क्या जमाना आ गया है ?'

'आँख में जरा भी आँसू नहीं है ?'

'आँसू किस बात का ?....आज की लड़कियों को मायका छोड़ने का क्या दुख होगा, जो वे रोएँगी ?'

'और तो और, डोली पर भी अपने आप ही बैठ गई।'

कम्मो इतनी जड़ क्यों हो गई थी। वह रोई क्यों नहीं थी ? इन सब बातों को समझना उस समय मेरे लिए भी असंभव था मगर आज सब समझती हूँ। चित्रपट-सी हर घटना आँखों के सामने से गुजर रही है। उस दिन कम्मो की माँ ने पूछा था— 'अरे मदन ! गिरधारनी क्यों नहीं आया ?'

'गिरधारी बीमार है, चाची !'

दुल्हन कम्मो की प्रश्नसूचक आँखें मदन के चेहरे पर स्थिर हो गईं।'

'ऐसी भी क्या बीमारी है जो आज काम पड़ने पर दिल चुरा गया।'

'बस....यूँ ही हल्का-सा बुखार है।' मदन ने संबोधित चाची को किया था मगर जैसे वह बतलाना कम्मो को चाहता था।

आश्वस्त होकर कम्मो ने अपनी नजरें झुका लीं थीं।

'आठ वर्ष का था जब शरणार्थी कैम्प ने उठाकर सीने से लगाया था। अपना और अपने बच्चों का पेट काटकर खिलाया-पाला और अब जब कमाने-खाने लायक हो गया तो किनारा ही काटने लगा। और जब से कम्मो के ब्याह की तारीख पक्की की है, सिर्फ एक बार आया है। सच, पराये पूत को कितना भी अपना क्यों न बनाओ, पराया ही रहेगा।' कम्मो की अम्मा ने गुस्से से कहा था।

'नहीं चाची ऐसी बात तो नहीं।' मदन दबी आवाज में कहकर चुप रह गया था।

बात आई-गई हो गई थी। मगर कहाँ ? कहानी जहाँ समाप्त होती लगती है, वहीं से जिन्दगी का सफर शुरू होता है।

गिरधारी को न आना था, न आया। उस दिन ही क्यों ? उस दिन के बाद गिरधारी को उस घर में किसी ने नहीं देखा था।

सचमुच, समय का अजगर सब कुछ निगल जाता है। कम्मो को अपनी गृहस्थी बसाए लगभग 25 वर्ष हो चुके थे। उसकी धन-संपत्ति, ऐश्वर्य-सुख के विषय में बहुत-सी कहानियाँ समय-समय पर सुनने को मिला करती थीं। मगर एक दिन अचानक उसकी गृहस्थी को देखने का मौका मिल गया। किसी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अधिवेशन के सिलसिले में जब उसके शहर जाना पड़ा तो मुझे उसी के घर ठहरना भी पड़ा था ।

चकित रह गई थी कम्मो दीदी और उसकी गृहस्थी को देखकर । पैसे के सुख के नीचे सब दुःख दब गया था । उसने अपने पति के चारों बेटों की शादियाँ कर ली थीं । उसकी स्वयं की कोई अपनी संतान नहीं थी । फिर भी, लंबी-चौड़ी गृहस्थी से घिरी कम्मो की कर्तव्यपरायणता देखते ही बनती थी । कीमती साड़ी के लंबे-चौड़े पल्लू में चाबियों का भारी गुच्छा बाँधे हुए किसी बंगालिन की भाँति, कम्मो जब चक्करघिन्नी की तरह इधर-उधर घूमती, नौकर-नौकरानियों को निर्देश देती तो लगता कि वह जिधर अंगुली उठा देगी उधर ही हवा भी खामोश होकर रूक जाएगी । वह चारों बेटे-बहुओं पर स्नेह बरसाती तो वे भी अपनी अम्मा रानी पर प्राण न्यौच्छावर करते थे । फुर्सत के समय अपने नाती-पोतियों से घिरी वह खिलखिलाती तो लगता, जैसे वह भी कोई अबोध बालिका हो ।

जीजाजी को देखा तो लगा कि संसार का कोई पहला आश्चर्य है तो यही है । लगता था उनकी आयु 25 वर्ष बढ़ी नहीं, अपितु घट गई है । उस पर खिजाब के रंगे बाल, लकदक करता सफेद धोती-कुर्ता । क्या यह वही दूल्हा है जिसे कभी मैंने बूढ़ा कहा था ?

मैंने जीजाजी के स्वास्थ्य पर बधाई दी तो वे बोले, 'यह सब तुम्हारी दीदी का ही प्रताप है ।'

सचमुच, इस घर में सब कुछ दीदी का ही प्रताप था । चमकता हुआ व्यापार, आज्ञाकारी पुत्र और पुत्रवधुएँ, व्यवस्थित गृहस्थी और दुलार-प्यार बिखेरती दीदी । ऊपर की सतह पर कहीं कुछ भी तो शून्य नजर नहीं आया था । फिर भी, एक चोर दरवाजा तलाश लिया था मेरी आँखों ने । कम्मो का अतीत मेरे जहन में उभर आया था । उसकी मुस्कराहट के नीचे एक छुपा-छुपा-सा दर्द दिखाई दिया । तभी तो रात के गहरे सन्नाटे में बगीचे की कुंडेर के साथ खड़ी कम्मो को मैंने छेड़ दिया था । भ्रम को सत्य में बदलने के लिए मैंने उसके दिल को टटोला था ।

'दीदी ! तुम्हें गिरधारी याद है ?' मैंने अचानक पूछ लिया था ।

उन्होंने चौंककर मुझे देखा । फिर उनकी आँखों में घूरने का भाव तैर गया । फिर उनका चेहरा कठोर-दर-कठोर होता गया और आँखों में घृणा के भाव तैर गए । सख्ती से अपने होंठों को भींचकर उन्होंने सपाट उत्तर दिया, 'नहीं..... ।' मैं सहम कर चुप हो गई । वे चली गईं ।

मगर दिन ढलते-ढलते दीदी के व्यवहार में जो असामान्य परिवर्तन देखने को मिले, उससे सारा परिवार चकित था । रसोई में बरतनों की उठा-पटक....नौकरों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फटकार....चेहरे पर तनाव....सभी कुछ तो ज्वार की पूर्व सूचना थी ।

शाम के समय वे बगीचे में खड़ी होकर कह रही थीं, 'इस कैक्टस को कभी पानी भी दिया है, मंगू ?'

माली चौंका, 'कैक्टस मा पानी ?'

'क्यों ? क्या कैक्टस को पानी की जरूरत नहीं होती ?'

'कैक्टस जल्दी नाही सुखवत, मालकिन ! आस-पास की नमी ते ही हरित रही रहो ।'

'नहीं, आज इसे पानी दो ।'

मंगू चकित था । जो कैक्टस वर्षों से किसी जंगली झाड़ी की तरह अपने आप फैलता रहा था, आज उसे पानी की जरूरत कैसे आ पड़ी ?

और आज रात जब दीदी को सर्दी और अंधेरे में अपने आप से जूझते हुए पाया तो मेरा उक्त वार्तालाप हुआ था । मुझे लगा था, उस पुराने कैक्टस का कांटा अभी तक उनके सीने में चुभ रहा है । दर्द दे रहा है ।

मैं चली तो आई थी मगर मेरे अंदर एक पश्चात्ताप-सा घर कर गया था । आखिर उन्हें छेड़कर मुझे क्या मिला ? मैं स्वयं को अपराधिन-सी अनुभव करती रही । सुबह उनकी आँखों का सामना कैसे कर सकूँगी ? यही बड़ा भय था । मगर सुबह उन्होंने मेरे कमरे में आकर देर से उठने का कारण हँसकर पूछा तो मेरा सारा भय जाता रहा । रात की बात का न उन्होंने जिक्र किया, न मैंने ही ।

आज इस शहर में मेरी तीसरी और अंतिम रात है । दीदी के अंतर्द्वन्द्व को कागज पर उकेरने का प्रयास करने लगी हूँ कि अकस्मात् वे दरवाजा खोलकर भीतर आ गई हैं । मैं डर गई । अगर उन्होंने अपनी कहानी पढ़ ली तो.... ?

"अरे ! तुम अभी तक सोई नहीं ?" वे बोलीं ।

'बस, कुछ लिखने का काम था.... ।' मैंने जल्दी-जल्दी कागजों को समेटते हुए कहा ।

'क्या लिख रही हो ?' उन्होंने एक कागज उठाते हुए पूछा ।

"मुझे काटो तो खून नहीं । अगर उन्हें अपनी कहानी पर ऐतराज हुआ तो.... ? कागज को उलटते-पलटते वे फिर बोली, 'तौबा....लिखे मूसा, पढ़े खुदा.... ।'

'रात और दिन लिखते-लिखते लिखाई तो बिगड़ ही जाती है, दीदी !' मैंने अपने बाकी कागजों को समेटने का बहाना भी तलाश लिया ।

'सोचा, तुम सुबह चली जाओगी । क्या सोचोगी कि दीदी दो घड़ी पास बैठने का समय भी नहीं निकाल सकी ।' कहकर उन्होंने पास पड़े रफ कागजों पर आड़ी-तिरछी लकीरें-सी खींचनी शुरू कर दीं ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

'नहीं । ऐसी तो कोई बात नहीं....फिर भी, आपने समय निकाला, यह अच्छा ही किया ।' मैंने कहा ।

उसके बाद वे इधर-उधर की कुछ बातों में उलझी रहीं । मुझे लगा कि वे कुछ और पूछना और कहना चाहती हैं, पर जैसे किसी उलझे हुए धागे का सिरा नहीं मिलता, उसी तरह बात का सिरा पकड़ने में वे विफल रही हैं । अचानक उन्होंने पूछा, 'तुम्हें आज तक याद हैं वे बातें ?'

'कौन-सी बातें ?' मैंने आश्चर्य से पूछा ।

'मेरे ब्याह की ।' उन्होंने आँखें झुकाए हुए कहा, फिर कुछ रुककर पूछा, 'मेरा मतलब है उस समय तुम तो बहुत छोटी थी न ?' उन्होंने किसी अपराधी की तरह धीरे-से पूछा ।

"हाँ, छोटी तो थी । पर आप कौन-सी बात के लिए कह रही हैं ?' मैंने मन-ही-मन मुस्कुराते हुए पूछा ।

'मे...रा....मतलब....तुम्हें गिरधारी वाली बात कैसे याद रही ?'

'ओह... ।' मेरे मुँह से निकला, तो दीदी ने बात का सिरा पकड़ ही लिया था ।

'हाँ, दीदी ! आज तक याद है । लाख संदेश भेजने पर भी गिरधारी नहीं आया था । और शायद आपकी शादी के बाद तो उसे किसी ने भी आज तक नहीं देखा । पर उस समय जो नहीं समझ सकी थी, उसे आज समझने लगी हूँ । पर आप दीदी ?....आप उसे आज तक याद रखे हुई हैं ?

'याद ?' उन्होंने उदास नजरों से मेरी ओर देखा । वे खामोश थीं । मगर उनकी आँखें बहुत कुछ कह रही थीं । वे मेरी चारपाई से उठकर खड़ी हो गई । फिर बोलीं— 'याद तो उसे किया जाता है जिसे कभी भुलाया जा सके ।' और वे दरवाजा उढकाकर चली गईं । मेरी आँखें बंद कपाटों पर कुछ पलों के लिए स्थिर हो गई । तो मेरा अनुमान सही निकला ।

वाल क्लॉक ने रात के ग्यारह बजा दिए । मैंने अपने कागज समेटे और सोने का उपक्रम करने लगी । अचानक मेरा ध्यान धरती पर पड़े उस रफ कागज पर केंद्रित हो गया, जिस पर कुछ समय पहले ही दीदी आड़ी-तिरछी लाइनें खींच-खींचकर सिक्का घिसती रही थीं ।

अस्पष्ट और धुंधली-सी लिखावट में जगह-जगह कुछ लिखकर काटा गया था । मैंने बड़े ध्यान से कागज को देखा । बड़े यत्न से मैं एक वाक्य पढ़ सकी । लिखा था, 'कहाँ हो तुम ?' धीरे-धीरे कागज पर लिखे सभी शब्द दैत्याकार हो उठे । कागज के हर कोने पर और हर तरफ लिखा था । 'कहाँ हो तुम ?' .....कहाँ हो तुम ?.....कहाँ हो तुम ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मुझे लगा, कम्मो वर्षों से यही एक प्रश्न अपने-आप से पूछती रही है। मगर इस प्रश्न को उसने सदैव हवा में चिंदी-चिंदी होकर उड़ते देखा है और कभी भी कहीं से भी इस प्रश्न का उत्तर उसे नहीं मिला। कभी भी......मिलेगा भी नहीं। कौन जानता है, अब वह इस दुनिया में है भी या नहीं। अगर है तो कहाँ है?

वर्षों से इसी निरुत्तर प्रश्न के उत्तर की तलाश दीदी को है। वे स्वयं जानती हैं कि इस बात का उत्तर उन्हें नहीं मिलेगा, फिर भी, एक अनजानी-सी आस में वे अपने प्रश्न का उत्तर निरंतर खोज रही हैं। कहाँ हो तुम? कहाँ हो तुम?....कहाँ हो तुम? ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्यार का पुल

● निर्मला सिंह

शुचि और सौरभ सगे भाई-बहन थे। शुचि के साथ वह नेहा के भाई की शादी में लखनऊ जा रहा था। मुगलसराय अपनी गति के साथ हवा का सीना चीरती हुई खरड़-खरड़ के साथ आगे बेधड़क बढ़ती जा रही थी। शाहजहाँपुर से आगे जब गाड़ी सरकी, शुचि ने सौरभ से पूछा, "भैया, लखनऊ पहुँचने में अभी कितनी देरी है?"

"अरे, अभी तो यह आधी दूर भी नहीं आई है। यह तो नौ बजे के बाद ही पहुँचती है।" सौरभ ने अपनी दृष्टि इधर-उधर घुमाकर मुस्कराते हुए कहा।

"अच्छा! तब तो अच्छी-खासी रात ही हो जाएगी।" नए शहर के अनजाने, अनबुझे भय से ग्रस्त शुचि बोली।

"कोई डर की बात नहीं है, शुचि। पहले भी तो हम लोग अकेले आ चुके हैं। हाँ, रात के समय थोड़ी परेशानी तो होगी ही। लेकिन फिर भी हम दो हैं। कोई चिंता की बात नहीं है।" कहकर अपनी छोटी बहन शुचि के बालों पर सौरभ हाथ फेरने लगा और उसे सांत्वना देने लगा।

उधर, खरड़-खरड़ करती हुई मुगलसराय तेज गति से पटरी का आलिंगन करती हुई चल रही थी। इधर, सौरभ के मन-मस्तिष्क में न जाने कितनी खुशियों के, उम्मीदों के दीप जल रहे थे। उस उजास में वह एक ही प्रतिमा देख रहा था। वही संगमरमरी देहवाली दुबली-पतली स्मार्ट, आकर्षक व्यक्तित्व बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें, पंखुरी से नाजुक होंठ, घन-घटाओं से केश वाली अनजान लड़की की।

बात दो वर्ष पूर्व की थी। वह पुरानी हो चुकी थी। लेकिन स्मृतियाँ कच्ची मिट्टी की सुगंध-सी उसके अंतस में महक रही थीं। उसका दिल नहीं लग रहा था। वह बिना पंख लगाए पहुँच गया दो वर्ष पूर्व की स्थिति में।

"लीजिए, चाय लीजिए गरम-गरम!" कोयल-सी वाणी ने कहा था।

"लाइए-लाइए!" सौरभ ने प्याला पकड़ा और देखता ही रहा अनभिज्ञ दृष्टि से चाय देने वाली को ऊपर से नीचे की ओर। आँखों की पलकों ने झपकना ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नहीं चाहा था। कौन ऐसा है जिसे रूप लावण्य देखना अच्छा नहीं लगता? बाग का खिला हुआ फूल रोते को हँसा देता है और अपनी सुगंध से सबको अपनी ओर खींच लेता है। अनजान लड़की कैमरे में फिट हो गई तसवीर की भाँति उतर गई थी सौरभ के दिल में, कैद ही हो गई थी उसकी पलकों के अंदर।

"चीनी ठीक है चाय में?" एक निश्छल झरना झरा था।

'जी, बहुत ही स्वादिष्ट है चाय। आपकी ही तरह।" बाद का वाक्य लगभग उसके मुँह में ही रह गया था।

"क्या कहा आपने? मैंने सुना नहीं।"

"अच्छा हुआ जो आपने सुना नहीं, वरना क्रोध करतीं।"

"अरे! अरे! प्याला पकड़ें। मेरा हाथ छोड़िए न!" उसने कहा था, "मैंने आपको चाय दी है, हाथ नहीं।"

"काश! यह हाथ भी इन हाथों में आ जाए।" सौरभ बुदबुदाया था।

लाज की चादर से लिपटी, मुस्करा कर चली गई थी वह। जैसे घने अंधेरे में जुगनू चमक कर विलुप्त हो जाता है।

सौरभ उसे खोजता रहा था भीड़ में, गहरे सागर में मोती की भाँति। उसकी खोज साँझ तक जारी रही थी। आकाश की सीढ़ियों से साँझ उतर रही थी। फिर उसकी भेंट हुई थी सौरभ से।

हँसती-मुस्कराती क्लियोपेट्रा-सी सौरभ के समक्ष आकर खड़ी हो गई थी। उस समय भी ऐसा ही वक्त था, जैसा आज है। साँझ गहराने लगी थी। आकाश पर छुटपुट तारे निकलने वाले थे। पूरा आकाश दिग्दाह की चांद से आवृत्त था। तभी प्यार की एक लाली सौरभ की देह में बाहर से अंदर तक फैल गई थी। अनजाने में ही उसके मुँह से निकल पड़ा था, "सुनिए, एक मिनट।"

जाती हुई पलट पड़ी थी वह। वह मुस्कराई थी, जैसे हंसों की कतार मचली हो।

"जी, सुनाइए।"

"अपना नाम बताएँगी आप?"

"जी, मेरा नाम उर्मि है। क्या करेंगे आप जान कर?" एक तीखा प्रश्न दागा था उसने। फिर वह जाने लगी थी।

"बैठिए एक पल।" सौरभ बोला था, "मन करता है, आपसे कुछ बातें करूँ। आप मुझे बहुत अच्छी लगीं।"

"अच्छा तो बहुत कुछ लगता है। वो सब अपना तो नहीं हो जाता है न! मैं आपके लिए अजनबी हूँ।" उसने कहा था।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अजनबी से भी संबंध जुड़ जाता है। अगर दिल में प्यार हो, चाहत हो।"

"लेकिन मेरे मन में तो कोई चाहत नहीं आपसे जुड़ने की।" वह हँस दी थी।

"हैं! और आप मुझसे बातें भी करना चाहती हैं। तभी तो परिक्रमा की तरह से घूम रही हैं मेरे चारों ओर।" स्पष्ट शब्दों में कह दिया था सौरभ ने और वह अपने कहे की प्रतिक्रिया देखने लगा था।

उसके गुलाबी चेहरे पर प्यार की एक गहरी लाली फैल गई थी। आँखों में अछूते प्यार का सागर लहराने लगा था उसके। अस्वीकार करने के बाद भी सौरभ के सान्निध्य में कुर्सी खींच कर बैठ गई थी वह।

कुछ पल के लिए उस स्थान पर एक मंदिर का दीप जलने लगा था। हजारों बेला के फूल खिल कर महकने लगे थे और सौरभ एकटक उसे ही निहारता रहा था।

"अरे, आप यों ही देखते रहेंगे या कुछ कहेंगे भी!" चुप्पी उसी ने तोड़ी थी।

"उर्मि जी, मेरा नाम सौरभ है। बरेली शहर में रहता हूँ। कॉलेज में हिंदी पढ़ाता हूँ। एक छोटा-सा साहित्यकार हूँ। मेरे पिताजी दुकानदार थे। मेरी एक बहन और माँ है। अपनी बहन शुचि की सहेली के भाई की शादी में आया हूँ मैं। यदि संभव हो सके तो आप अपना भी कुछ परिचय दें।"

हँस पड़ी थी वह जैसे चाँदनी छिटक गई हो। फिर गहरे काले बादल मुख पर छा गए थे।

"अरे, कुछ परिचय दीजिए। आप तो गंभीर ही हो गई।"

आकाश के झिलमिल तारे बादलों से ढंक गए थे। एक उदासी, एक गंभीरता, एक निःशब्दता उसके चेहरे पर पसर गई थी।

"यह--यह आप निर्वाक क्यों हो गईं?" सौरभ ने उसके रेशमी कोमल हाथ छुए थे। एक मीठा स्पर्श! सारे शरीर में झुरझुरी-सी फैल गई थी। कितनी ऊष्मा थी उस स्पर्श में! कितना रोमांच था। वह सब सौरभ अभी तक महसूस कर रहा है। अब भी उसकी देह की चंदनीय सुगंध सौरभ के नथुनों में बहती है।

कुछ ही पलों में वह सौरभ के अंतर्मन में रच-बस गई थी। फूल में खुशबू की तरह। किया था केवल एक ही आलिंगन। कुछ भी नहीं बताया था उसने। केवल नाम और अपने घर का पता दिया था। तब से अब तक सौरभ ने कई पत्र डाले थे। किसी का भी उत्तर नहीं आया था। जैसे अशोक वाटिका में राम, सीता के दर्शनोपरांत मंत्रमुग्ध हो गए थे—वही हाल सौरभ का हो रहा था उस दिन। वह चंदनीय देह की सुवास, वह निश्छल झरने-सी हँसी, वह गहरी गंभीर आँखों की कहानी कहती दृष्टि सौरभ को दो वर्षों से सुख-शांति से जीने नहीं दे रही है। न

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जाने कितने पत्र डाले । एक का भी उत्तर नहीं आया । वैसे पत्र लेखन को मना कर दिया था उसने ।

"भैया ! भैया ! यह क्या हो गया है आपको ? किताब खुली है, पन्ना वही का वही है, अंगद के पांव की तरह ।" शुचि ने सौरभ की तंद्रा भंग की ।

"शुचि, मैं कविता सोच रहा हूँ । वही उद्वेलित कर रही है मन-मस्तिष्क को ।"

"भैया, कविता या कविता की प्रेरणा कोई सुंदरी— ।"

नत निगाहों से सौरभ बोला, "कुछ भी समझ लो !"

"अच्छा ! तो यह बात है ! मैं भी तो सुनूँ ! वह स्वर्ण-किरण-सी सुंदरी कौन है जो आकाश की सीढ़ियों से मेरे भैया के मन-प्रांगण में उतरी है ।" शुचि ने पूछा ।

"पता नहीं कौन है, किस जाति, किस धर्म की है । एक लड़की है उर्मि । यहीं लखनऊ की ही । जब पिछली बार आया था तो— । अनजान होकर भी वह युगों-युगों की पहचान बन गई । जैसे नदी के दो किनारे पुल से जुड़ जाते हैं, उसकी और मेरी दृष्टि ने भी एक अदृश्य पुल बना लिया था ।"

"ओह ! उर्मि थी एक खूबसूरत-सी लड़की । मैंने भी देखी थी वहीं, उसी शादी की भीड़-भाड़ में । वह दृष्टि और चर्चा का केंद्र बन गई थी । भैया, आप स्वयं को विस्मृत कर बैठे हैं उस सुंदरी के कारण । वैसे, वह थी भी ऐसी ही ।"

"शुचि, उसने पता दिया था । मैंने खत भी डाले थे । लेकिन एक भी उत्तर नहीं मिला । कहीं उसे कुछ हो तो नहीं गया ?" सौरभ ने चिंता जताई ।

"नहीं, भैया । आप बेवजह ही परेशान हो रहे हैं । वह अजनबी इस बार भी शादी में आएगी । तभी आप अपना दिल खोल दीजिएगा उसके सामने ।"

"वह तो ठीक है । मैं सब कुछ कह दूँगा । लेकिन मौन, नि:शब्दता, निस्तब्धता में जितनी शक्ति है, शब्दों में नहीं । उसने मेरे प्यार को मौन स्वीकृति दे दी थी ।"

"आप ठीक कह रहे हैं, भैया । परंतु सच्चाई को, प्यार की मृदुल वाणी जरूरी है । मौन भ्रमात्मक है ।"

"हाँ, तुम्हारी बात में दम है, शुचि । अब मैं ऐसा ही करूँगा । वैसे शुचि, तुम हो बहुत समझदार ।" सौरभ उसकी बुद्धि की दाद देने लगा ।

"थैंक्यू, भैया !"

'थैंक्यू' शब्द को सुन कर सौरभ के कानों में स्मृति का एक झोंका गीत-सा गुनगुनाया ।

"थैंक्यू, चाय के लिए ।"

"सौरभ जी, यह तो मेरा फर्ज था । चाय सबको दे रही थी । आपको भी दी ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कह कर वह चली गई थी। वह मुस्करा पड़ी थी। ऐसे ही जैसे वीराने में कोई फूल खिल आया हो या मैदानी नदी गीत गुनगुनाती हुई आगे बढ़ गई हो ! उस रात सब लोग सोने चले गए थे। लेकिन सौरभ नहीं सो पाया था। कुछ ही पलों के एहसास से उसके दिल में अव्यक्त स्निग्धता, अनोखा प्यार, चंचल कामना अंकुरित हो गए थे। वह महसूस करने लगा था कि उसे जिस जीवन-साथी की तलाश थी, वह उसे मिल गया। उसी एहसास की खुशबू आज उसके जीवन में एक नया उत्साह, नई उमंग, नई चाहत भर रही थी।

"शुचि, निराला नगर में ही हमें जाना है तो उसके पास ही कपूरथला में उर्मि का निवास है।" सौरभ ने कहा, "क्यों न उसके घर होते हुए चलें !"

"अगर मिलन की इच्छा इतनी तीव्र है तो अवश्य चलिए, भैया।" शुचि ने कहा।

द्वार की घंटी बजते ही हल्के आसमानी रंग की साड़ी पहनी हुई उर्मि दरवाजे पर आई। अभिवादन हुआ। दोनों बहन-भाई बैठे ड्राइंग रूम में चल दिए जहाँ उर्मि के पापा पहले से ही बैठे हुए टी.वी. देख रहे थे। उर्मि ने अपने पापा को सौरभ और शुचि का परिचय दिया।

"हाँ तो बेटे ! आप उर्मि को प्यार करते हैं ? यह सब मुझे उसी ने बताया है। आपने उसे कई पत्र भी डाले हैं। लेकिन वह मर्यादा की सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकती। बात ही कुछ ऐसी है। तुम दोनों का प्यार शादी का रूप ले ले, इससे पहले मैं बहुत कुछ कहना चाहूँगा। तुमसे कुछ सवाल भी पूछना चाहूँगा।" गंभीरता की चादर में लिपटे हुए उर्मि के पापा ने छूटते ही कहा।

वे दोनों कुछ नहीं बोले।

"तुम उर्मि को प्यार करते हो न ? प्यार किसे कहते हैं ? रूप का आकर्षण या आत्मा का मिलन ?" उर्मि के पापा ने प्रश्न दागा।

"जी, डैडी। मैं उर्मि से प्रेम करता हूँ। मेरे विचार से प्रेम में पुरुष और नारी एक शरीर ही नहीं, एक आत्मा भी हैं।" सौरभ बोला।

"बस ! बस भी करो, बेटे। लगता है, तुमने प्रेम पर थीसिस ही लिखी है।" उर्मि के पापा ने संतोष की साँस ली।

"जी नहीं। ये मेरे अपने ही उद्‌गार हैं। ये मेरे भाव हैं जो मैंने आपको बताए हैं।

उर्मि के पापा ने चाय की प्याली को मेज पर रखते हुए कहा, "बेटे ! यह दर्पण का सामने वाला रूप नहीं है। यह पीछे की तस्वीर है। तुम शायद जान कर इससे शादी करने से मना कर दोगे।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नहीं, डैडी । मैं कभी भी उर्मि से शादी करने से इन्कार नहीं करूँगा । चाहे वह किसी भी जाति, धर्म की क्यों न हो या गरीब परिवार से जुड़ी हो ।" सौरभ ने अपने मन की बात कह दी ।

"हाँ, बेटे ! बात ऐसी ही है । यह उर्मि नहीं है । इसका असली नाम उमराव है ।" उर्मि के पापा ने रहस्योद्‌घाटन किया ।

"क्या कहा ? उमराव ?" सुनते ही आकाश से दामिनी कौंध कर धरती पर आ गिरी । खड़-खड़ करती तेज हवाओं में, आँधी में पत्ते उड़ने लगे । सौरभ को महसूस हुआ कि वह समुद्र के किनारे पर खड़ी वह चट्टान है जो किसी भी वक्त गहरे सागर में आकंठ डूब सकती है ।

सौरभ किंकर्तव्यविमूढ़-सा हो गया । विचारों की नदी को सेतुबद्ध करता हुआ बोला, "डैडी, मैं किसी भी धर्म, जाति से अपने प्रेम को नहीं जोड़ता हूँ । मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता है, अगर उर्मि मुसलमान है तो । वह तो प्रथम साक्षात्कार में ही मेरे मन-मंदिर की देवी बन चुकी है ।" सौरभ ने अपने मन की बात पूछ ही ली, "लेकिन यह कैसे हुआ कि आप हिंदू और वह मुसलमान ?"

"देखो बेटे ! कमरे में नृत्य करती चाँदनी की कोई भी जाति नहीं होती । उसका कोई धर्म नहीं है । वह जहाँ जाती है, वहीं उजाला करती है । ऐसे ही यदि गहराई से सोचो तो इन्सान भी अपने कर्मों से संसार में पहचाना जाता है । यह बिटिया हमारे दादा जी की पोती है ।" उर्मि के पापा जी ने बताया ।

"लेकिन वह तो आपको डैडी कहा करती है ।"

"वो तो बेटे, मेरे बच्चे जो कहेंगे, वही वह भी कहेगी । मैंने इसे जन्म नहीं दिया है, लेकिन यह मेरी बच्ची है । मेरे बेटे को वह राखी बाँधा करती है । दुनिया वाले तंग न करें, इसलिए इसके बाबा ने ही इसका नाम बदल दिया था । इतनी बड़ी दुनिया में मैं ही इसका पालक, संरक्षक सभी कुछ हूँ ।" यह कहते हुए शर्मा जी ने उर्मि को छाती से चिपका लिया । जैसे कि सृष्टि का सारा प्यार वे उसी पर उड़ेलना चाहते हों । उनकी आँखों से दो बूंद आँसू लुढ़क गए ।

सौरभ कुर्सी से उठ कर उर्मि के पास चल दिया । उसने उसका सुकोमल हाथ अपने हाथों में ले लिया । वाणी में दृढ़ता, स्थिरता लेकर उसने कहा, "डैडी जी, मुझे इन हाथों को अब कभी भी नहीं छोड़ना है । यह मेरा दृढ़ निश्चय है ।"

शर्मा जी गंभीर हो गए, "बेटे, यह शादी-ब्याह गुड्डे-गुड़ियों का खेल नहीं है । जीवन भर का रिश्ता है । यह मुसलमान है और तुम हिंदू । क्या तुम्हारे पापा राजी हो पाएंगे ? सोच लो । बाद में पछताना न पड़े ।"

"डैडी, मैं केवल एक ही धर्म को मानता हूँ और वह है मानवता ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"बेटी, आपको तो भैया की शादी से कोई एतराज नहीं है ?" शर्मा जी ने शुचि के कंधे पर हाथ रख कर पूछा ।

"जी नहीं, डैडी । मेरे भैया एक आदर्श, स्थितप्रज्ञ व्यक्ति हैं । वे जो कुछ भी कार्य करते हैं, उनके परिणामों को सोच कर ही करते हैं । भैया की शादी की तिथि बरेली जाकर, माँ से पूछकर ही हम लोग तय करेंगे ।" शुचि मुस्करा दी ।

दोनों बहन-भाई संतुष्ट हो गए थे । प्यार के पुल का निर्माण हो चला था । उधर से वे नेहा के घर चल दिए । ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तपस्या

• सरला अग्रवाल

थके कदमों से आकर भावना ने द्वार पर लगे ताले को खोला और पर्स एक ओर फेंक, बिस्तर पर पड़ गई। न जाने कितनी देर तक वह इसी प्रकार निश्चेष्ट पड़ी रही। चाय की इच्छा प्रबल हो रही थी किंतु शरीर में इतनी शक्ति ही कहाँ थी कि उठकर अपने लिए स्टोव जलाकर चाय बनाए। अभी वह जीवन की सारी सुख-सुविधाओं को जुटा ही कहाँ पाई थी जो गैस का चूल्हा जलाकर झट चाय बना लेती। कभी सोचा भी कहाँ था उसने कि उसका जीवन भी कभी इतना एकाकी, इतना नीरस, इतना त्यक्त हो जाएगा।

मन उड़ चला था—ममतामयी माँ का स्नेह एवं मनुहार स्मृति-पटल पर छाने लगे थे। कॉलेज के वापस लौटते ही माँ झटपट गर्म-गर्म चाय-नाश्ता बनाकर कितने प्यार से गुहार लगाती थी—"ओ मेरी भाव ! आ जा, अपन दोनों माँ-बेटी चाय पिएं। कब से बाट देख रही हूँ तेरी मैं ! अनिला-सुनिला तो सो रही हैं। उन्हें सोने से फुर्सत कहाँ है ?" और शाम को पिताजी दफ्तर से आते ही पहले उसी को आवाज लगाते, "भावना रानी, कहाँ चली गई ? सुना तो सही, आज कॉलेज में क्या हुआ ?" छोटी बहन नीरा और सुनील भी दीदी-दीदी करते रहते थे हर समय। वैसे, बहनों में वह तीसरे नंबर पर थी। उससे बड़ी दो बहनें और थीं जो अपनी-अपनी शिक्षा पूर्ण करके वहाँ के स्थानीय स्कूलों में अध्यापिका बन गई थीं, दोनों ही अभी अविवाहिता थीं। बड़ी दोनों बहनें सांवली थीं। सबसे बड़ी बहन के तो दांत भी कुछ ऊँचे थे। नाक-नक्श भी साधारण थे। किंतु वह सबसे मेधावी और सुंदर थी। सभी कुछ प्रभु ने जैसे उसी की झोली में डाल दिया था। घर में पिताजी व माँ के दोस्त-सहेलियाँ आतीं या नाते-रिश्तेदार ! सभी भावना को पूछते हुए आते। वैसे भी भावना सभी लोगों के साथ खूब बातें करती व हिल-मिल जाती थी। वही सबका आदर-सत्कार करती, चाय-नाश्ता आदि देती थी।

भावना ने उठकर स्टोव जला लिया था और उस पर चाय के लिए पानी चढ़ा दिया था। पानी के खौलने के साथ-साथ उसकी भावनाओं में भी उबाल आने लगे थे। उसे याद आने लगे थे कॉलेज के ड्रामे। कितना सराहा था उसके रूप एवं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अभिनय को सभी लोगों ने ! मुकेश ने भी उस नाटिका को देखा था। उन्हें पुलिस विभाग की ओर से वहाँ तैनात किया गया था। ड्यूटी पर थे किंतु सिविल पोशाक में आगे की सीट पर बैठे थे। कार्यक्रम समाप्त हो जाने पर उन्होंने अंदर आकर भावना को बधाई भी दी थी—"बहुत अच्छा अभिनय कर लेती हैं आप ! सुंदर, अतिसुंदर !" प्रसन्नता-भरी सलज्ज मुस्कान आ गई थी भावना के चेहरे पर। वह इसी प्रकार मुस्कराती खड़ी रही थी। कुछ पूछ या कह नहीं पाई थी। एक अपरिचित किंतु भव्य व्यक्तित्व वाले पुरुष की सराहना के बोल सुनकर सकुचा रही थी, पर उनका आकर्षक व्यक्तित्व उसकी आँखों में समा गया था—लंबा कद, दूध-सा गोरा रंग, सुंदर तीखे नक्श, काली चमकीली घूरती हुई-सी मुस्कराती, शरारतभरी आँखें ! सफेर बुर्राक पोशाक ! भावना ने केवल हाथ जोड़ दिए थे, आभार-नमस्कार की मुद्रा में।

नाटिका के विषय में दो-चार दिन की प्रशंसा, आलोचना-समालोचनाओं के पश्चात् कॉलेज जीवन फिर से सामान्य हो गया था और सभी छात्र-छात्राओं ने पढ़ाई पर ध्यान देना आरंभ कर दिया था। एक दिन माँ, पापा, दोनों दीदी, नीरा एवं सुनील तथा भावना—सब लोग नगर के सुदूर स्थित मेनका टॉकीज में फिल्म देखने गए थे। बड़ी अच्छी फिल्म लगी थी उन दिनों। जब फिल्म का इन्टरवल हुआ और रोशनी हुई तो पाया कि बॉक्स में भावना वाली लाइन में वही सज्जन बैठे हैं, अपनी ही आयु के एक और व्यक्ति के साथ, जो भावना को कॉलेज के उत्सव पर उस दिन अभिनय के लिए बधाई देने ग्रीन रूम में आए थे। भावना को देखते ही वह मुस्करा दिए और उठकर आ गए, "हैलो ! कैसी हैं आप मिस..... ?"

"भावना !" उसके मुँह से बेसाख्ता निकल गया था। वे पिताजी की ओर देखकर बोले—"बड़ा अच्छा अभिनय कर लेती हैं भावना जी, आप पिता हैं इनके ?"

"हाँ।" पिताजी खुश होते हुए बोले और परिवार के सब सदस्यों का उनसे परिचय कराते हुए बोले— "अब आप भी तो अपना परिचय दें।"

"मेरा नाम मुकेश है, मैं यहाँ पुलिस विभाग में कार्यरत हूँ।"

"पुलिस में ?" पिताजी ने घबराते हुए पूछा था।

"पर आप क्यों घबराते हैं ? हम आप लोगों का ध्यान रखने वालों में से हैं।" वे खिलखिलाते हुए बोले।

उसके पश्चात् वे अपनी सीट पर जा बैठे और हम अपनी पर, हमारे साथ वे यूं घुल-मिल गए जैसे हमारे परिवार के ही सदस्य हों।

फिल्म समाप्त होने पर पिताजी उनसे कहने लगे— "मुकेश साहब ! आपसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई । आप कभी हमारे गरीबखाने पर दर्शन दें ।"

"अवश्य-अवश्य ।" मुकेश खुश होते हुए बोले—"अपना पता और फोन नंबर तो दीजिए ।"

पिताजी ने अपना पता दे दिया था ।

भावना ने उस वर्ष एम.ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर लिया था । पिछले वर्ष गर्मियों की छुट्टियों में अपनी एक सहेली के साथ जाकर भावना ने टाइप व शॉर्टहैंड भी सीख लिया था । अब उस का मन किसी अच्छी-सी फर्म में स्टैनो या सेक्रेटरी बनने का था । पढ़ाने या व्याख्याता का कार्य उसे कभी पसंद नहीं था । कई स्थानों पर उसने आवेदन-पत्र भेज रखे थे ।

उस दिन शाम को गर्मी काफी थी । दिन भर लू के थपेड़े लगे थे । शरीर चिपचिपा हो आया था । घर के पास ही पार्क था । सोचा, वहाँ जाकर कुछ देर टहला जाए । जैसे ही भावना वहाँ पहुँची, मुकेश को वहाँ खड़े पाया—"अरे, आप यहाँ ! वॉट ए प्लेजेंट सरप्राइज ।" (कितना आनंददायक आश्चर्य है ।)

"भावना ! तुम यहाँ क्या कर रही हो ?" वह भी मुस्कराए ।

"यूँ ही जरा चहलकदमी करने आ गई । आज गर्मी काफी है ।" भावना बोली थी ।

"चलो फिर, आइसक्रीम खाते हैं ।" बाग के बीचो-बीच बने कैंटीन की ओर इशारा करते हुए मुकेश बोले थे । आइसक्रीम कप लेकर दोनों एक एकांत झुरमुट में जाकर बैठ गए थे ।

सूर्यास्त का समय था । दूर नीलाकाश में क्षितिज पर डूबते सूर्य का लाल-लाल बड़े थाल जितना विशाल गोला बड़ा दिलकश लग रहा था । उसकी फैलती लाल किरणों की आभा ने संपूर्ण वातावरण को रंग दिया था, लाल रंग—प्रेम का प्रतीक ! चिड़ियाँ कलरव करती अपने-अपने नीड़ में वापस जा रही थीं । मुकेश का मुख उस आभा में और भी अधिक सुंदर लग रहा था । बाग में घूमने आने वालों की रौनक बढ़ती जा रही थी ।

"क्या कार्य करते हैं आप ?" भावना ने यूँ ही पूछ लिया था, आखिर कुछ तो बात करनी ही चाहिए ।

"जनता की सेवा ।"

"सर्विस में कब आए आप ? कुछ वर्ष तो हो ही गए होंगे ?" भावना ने फिर पूछा था ।

"हाँ, और क्या ?" मुकेश हँस पड़े थे । शायद बात को टाल गए थे बड़ी खूबसूरती से—"तुम आगे क्या करने की सोच रही हो, भावना ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"देखिए, क्या करती हूँ, अभी क्या कह सकती हूँ?" फिर बातें फिल्मों पर चल पड़ी थीं। उसके पश्चात् टी.वी. सीरियलों पर। ये दोनों ही विषय ऐसे हैं जो नवीन परिचित लोगों को बातचीत का अच्छा सिलसिला प्रदान करते हैं हर समय, हर जगह, हर आयु वर्ग के लोगों में। बातें काफी देर तक होती रही थीं। अँधेरा घिर आया था। पार्क की बत्तियाँ जब अचानक जल उठीं तो भावना को होश आया था और वह उठ गई थी। दोनों अपने-अपने घर की ओर चल दिए थे किंतु दोनों का ही हृदय एक-दूसरे के पास रह गया था। तभी तो रात के समय जब भावना बिस्तर पर लेटी मुकेश के ख्यालों में डूबी हुई थी, फोन की घण्टी टनटना उठी थी। फोन भावना ने ही उठाया था। उधर मुकेश ही थे। दिल को दिल से राहत होती है। शायद इस टेलीपैथी से उन्हें भावना का संदेश मिल गया था। वे कह रहे थे—"भावना, तुम्हारी बड़ी याद आ रही है। अब कब मिलोगी?"

"कल शाम को वहीं, जहाँ आज मिले थे?"

"पक्का?"

"हाँ।" कहकर भावना ने फोन बन्द कर दिया था।

मुलाकातें बढ़ती गई थीं। घर में सभी लोग अपने-अपने कार्यों में इतने व्यस्त रहते थे कि किसी ने इस विषय में कभी कुछ सोचने का प्रयत्न ही नहीं किया था कि भावना इतनी-इतनी देर तक कहाँ रहती है, क्या करती है, कहाँ जाती है! वह खुश रहने लगी है, पहले से भी अधिक, यही देखकर माँ और पिताजी संतुष्ट थे। भावना दोनों बड़ी बेटियों की भाँति चिड़चिड़ी एवं बद्मिजाज नहीं थी। अपनी दोनों बड़ी बेटियों के लिए वे समाचार-पत्रों में 'वर-वधू' का कॉलम देखकर पत्र-व्यवहार निरंतर करते रहते थे। अपने समस्त नाते-रिश्तेदारों एवं मित्र-परिचितों को भी लिख रखा था कि वे उन्हें कोई सुशील, सुंदर एवं योग्य लड़के, अच्छे खाते-पीते परिवारों के बताएँ। चारों लड़कियों के विवाह को लेकर वे हमेशा तनावग्रस्त रहते थे। न जाने कितने लड़के अपने-अपने माता-पिता के साथ उनके घर आकर झाँकी लगा गए थे। पर बात अभी तक कहीं बन नहीं पाई थी। लड़कियों की आयु बढ़ती जा रही थी।

तभी एक दिन वहीं की एक सरकारी कंपनी से भावना के पास नौकरी के लिए साक्षात्कार का पत्र आ गया था। भावना का मन हिंडोले पर बैठ कर उड़ने लगा। उसने तन्मयता के साथ पूरी तैयारी कर ली और साक्षात्कार में सफलता भी प्राप्त की। इतने वेतन पर इतनी बड़ी सरकारी कंपनी में अपने ही नगर में बेटी को नौकरी इतनी आसानी से मिल जाएगी, यह तो माँ-पापा ने कभी सोचा भी न था। लोग तो कहते हैं कि आजकल नौकरियों के लिए बड़ी सिफारिशें चलती हैं! भावना है ही

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इतनी मेधावी, सुंदर एवं भाग्यशालिनी ! पूरा परिवार प्रसन्न हुआ था, अत्यंत प्रसन्न !

भावना चाय की चुस्कियाँ लेती जाती थी और सोचती जाती थी—'आह ! कहते हैं न कि विनाश काले विपरीत बुद्धि ।' तब उसे मुकेश के अलावा संसार में कुछ और दीखता ही कब था ? मुकेश ! मुकेश ! मुकेश ! टाइप करते-करते कभी-कभी पूरे कागज पर मुकेश ! मुकेश ! मुकेश ! ही टाइप करती जाती थी वह । जो भी कार्य करती, उसे अपने सम्मुख मुकेश ही दिखाई देता रहता था—स्नेहिल, भावपूर्ण, मादक, उत्तेजनापूर्ण ! उसकी बातें इतनी रसदार होतीं कि उसके जाने के पश्चात् भी बराबर याद रहतीं और वह उन्हें याद कर-करके हँसती रहती, अपने आप मुस्कराती रहती ! कई बार वह मुकेश के साथ दोपहर के शो में फिल्म देखने चली जाती थी, दफ्तर से तीन घण्टे की छुट्टी या आधा दिन की छुट्टी लेकर । कभी-कभी मुकेश उसे लंच के लिए अच्छे पंचसितारा होटलों में ले जाते, कभी शॉपिंग कराने । कितना अच्छा समय था वह ? दुःख की इस घड़ी में भी भावना उस समय को याद करके मुस्करा दी—काश ! वे दिन फिर से वापस मिल पाते !

उन दिनों भावना को महसूस होने लगा था कि मुकेश के बिना उसका कोई अस्तित्व नहीं, वह मुकेश के बिना अधूरी है, वह मुकेश के बिना नहीं जी सकती, अब और उससे अलग नहीं रह सकती । और एक दिन यह बात उसने मुकेश से कह दी थी । सुनकर वे धीमे से मुस्करा दिए थे, "मेरा भी यही हाल है, भावना । आग दोनों तरफ लगी है ।"

"फिर रुकावट क्या है मुकेश ?" भावना अधीर हो उठी थी ।

"समाज ।" कहा था मुकेश ने ।

"कौन-सा समाज ? हमें समाज से क्या लेना-देना मुकेश ? मेरे माँ-पापा बड़े उदार विचारों के हैं । मैं उन्हें मना लूँगी । मैंने तो कभी पूछा ही नहीं तुमसे तुम्हारे विषय में, तुम्हारे माता-पिता के विषय में ।" उस दिन स्वयं भावना को भी यह कहते समय अचरज हुआ था । सचमुच ही क्या प्यार अंधा होता है ? भावना को इन बातों का पहले कभी ध्यान भी क्यों नहीं आया ? बड़ी अजीब-सी बात है न ? 'मैंने यह सोचा ही कब था कि मैं मुकेश से इतना प्रेम करने लगूँगी कि विवाह के विषय में सोचने तक की नौबत आ जाए !" भावना ने अब विचार किया ।

"मुकेश ! आज तुम अपने विषय में सब कुछ बता दो, ताकि बीच की ये दीवारें गिर जाएं ।" भावना तड़प उठी थी । उसका हृदय अशांत हो चला था ।

"भावना, विवाह ही प्रेम का अंत है क्या ?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अंत नहीं मुकेश, सुखी दांपत्य जीवन का आरंभ !"

"तुम गलत सोच रही हो, भावना।" मुकेश ने सोचते हुए आगे कहा था—"आज हम दोनों के मन में एक-दूसरे से मिलने के लिए जो बेचैनी है, जो आतुरता है, वह विवाह के पश्चात् होगी क्या ? तब तो दोनों सदैव साथ ही साथ रहेंगे, घर-गृहस्थी के पचासों झगड़े-टंटे लगे रहेंगे ?"

"क्या मतलब ? क्या तुम पूरी जिंदगी इसी प्रकार व्यतीत करना चाहते हो ?" भावना के स्वर में कटुता, संशय एवं अवसाद भर गया था ।

मुकेश तब झेंप-से गए थे, चुप हो गए थे । और उस दिन कुछ देर के पश्चात् दोनों उठकर अपने-अपने रास्तों पर चल दिए थे ।

क्या उतना ही पर्याप्त नहीं था भावना को समझने के लिए ? पर नहीं, प्यार अंधा होता है । वह ठोकर खाए बिना समझता ही कब है ? मुकेश के बिना भावना यूँ तड़पती, ज्यों पानी से निकली मछली । न घर में मन लगता न दफ्तर में, न किसी से बात करने की इच्छा होती और न ही कुछ करने की । हाय ! यह क्या हो गया था तब भावना को ? आँखें आँसुओं से भरी रहने लगी थीं हरदम ! माँ और पापा उसकी यह दशा देखकर दुखी रहते । सोचते लड़की के विवाह में हम देर कर रहे हैं । मन की बात यह किसी से कह नहीं पाती । आखिर इतनी सयानी हो गई है । कमाती भी अच्छा है, संग-सहेंलियों में चर्चा तो होती ही होगी, तब इसे बुरा भी लगता होगा ! उन्हीं दिनों भावना की दो सखियों, आरती व सुधा के विवाह भी हुए थे, पर भावना से बड़ी दो बहनें अभी अविवाहिता थीं । किया भी क्या जा सकता था । लड़कियों को कुएं में तो ढकेला नहीं जा सकता था । "जब मनपसंद घर-वर मिलेगा, तभी तो विवाह करेंगे ।" "लड़कियों को लड़के पसंद तो आएं ।" वे दोनों आपस में इस प्रकार बातें करते कि तीनों बड़ी लड़कियाँ भी सुन लें उनकी विवशता को ।

भावना रोज-रोज मुकेश पर विवाह कर लेने के लिए जोर डाल रही थी । अब उसे इस प्रकार मिलना अच्छा नहीं लगता था । जब दोनों ही एक-दूसरे से प्रेम करते हैं, वयस्क हैं, कमाऊ हैं तो फिर छिप-छिपकर क्यों मिलें भला ? उसका तर्क होता ।

"तुम ठहरी विशुद्ध ब्राह्मणी निरामिष और मैं हूँ राजपूत क्षत्रिय सामिष ! रोज मुर्ग मुसल्लम खाने वाला । न भई न, मैं तुमसे विवाह नहीं कर सकता ।" मुकेश का उत्तर था ।

"तो प्यार क्यों किया ?" भावना रो पड़ी थी उस दिन ।

"किया कहाँ ? हो गया ! मैं क्या करूँ ?" वे खिलखिला दिए थे भावना के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हाथ पर हाथ रखकर ।

"हर बात को मजाक में न टाला करो, मुकेश । प्लीज ! मेरी जान पर बन आई है ।"

उस दिन भावना ने अपने हृदय को खूब टटोला था, खूब सोचा भी था इस विषय पर । दिल के हर कोने से यही आवाज आई थी कि तू मुकेश की हो जा, उसके बिना तू जी नहीं सकती । प्रेम रोग में वह आकंठ डूब चुकी थी । इससे बाहर निकलना असंभव था । अपने हृदय पर नियंत्रण रखकर किसी तरह वह एक सप्ताह तक मुकेश से नहीं मिली, पर फिर संयम का बांध टूट गया था । जब मुकेश उसे नित्य ही सुबह-शाम दफ्तर में फोन पर बात करने के लिए बुलाते रहे थे ।

उस भावना ने अपने मन में ठान लिया था कि वह मुकेश को विवाह के लिए मनाकर ही रहेगी, यूँ कब तक मिलती रहेगी ? उसके काफी जोर देने पर मुकेश उसे एक मंदिर में ले गए थे और वहाँ उन्होंने फेरे डालकर, माला बदल कर भगवान के समक्ष वचन लेकर विवाह कर लिया था ।

मधुयामिनी की वह रात्रि उन्होंने शहर के एक अच्छे होटल में कमरा बुक कराकर व्यतीत की थी । अपने प्रेमी, पति, स्वप्न पुरुष के साथ व्यतीत किया उस मधुर-मिलन रात्रि का एक-एक क्षण बेहद मधुर था । मानो अप्सरा बनी यह स्वर्गलोक में जा पहुँची हो । अपने देवता के साथ आनंद, आमोद-प्रमोद, नृत्य करती वह ऊपर और ऊपर उड़ी चली जा रही थी । चंद्रमा के लोक में चारों ओर चाँदी-सी चाँदनी छिटकी थी वह थी । उसका प्रियतम था और वे पवित्र प्रेम में रचे-मढ़े वैवाहिक जीवन का आनंद लूट रहे थे । उनकी आत्मा और शरीर एक हो चुके थे ।

सुबह उठने पर दोनों कुछ देर तक यूँ ही आलिंगनरत रहे थे । फिर धीरे-धीरे वास्तविकता के संसार में लौट आए थे और नहा धोकर तैयार होकर अपने-अपने घरों की ओर चल दिए थे । मुकेश ने वादा किया था कि वे शीघ्र ही उसे अपने साथ अपने घर ले जाएँगे, पूरा बंदोबस्त करके । भावना को संतोष था कि उसने कोई गलत कार्य नहीं किया । वह रात को अपनी सहेली के यहाँ रात्रि व्यतीत करने की बात कहकर आई थी घर पर...उसने मुकेश से विवाह किया है, यूँ ही उनसे साथ नहीं चल दी है—माँ और पिता को वह मना लेगी । उसे पूर्ण विश्वास था, इतना अच्छा दामाद पाकर क्या वे उसे क्षमा नहीं कर देंगे ?

भावना अब अपने घर में थी अवश्य, किंतु उसकी देह ही केवल वहाँ थी । मन उसका ससुराल में था—अपने प्रियतम, पति, जन्म-जन्मांतरों के साथी, सहचर के पास । अब उसे सामाजिक व्यवस्थाओं पर क्रोध आता— भला यह भी कोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बात हुई कि विवाह के पश्चात् भी कोई ब्याहता अपने पति के पास रह नहीं सकती ? क्यों ?

कई बार उसने मुकेश से उसका पता पूछा था ताकि वह स्वयं ही उनके कमरे में पहुँचकर उन्हें आश्चर्य भरा आनंद प्रदान कर सके। उसे लगता था कि मुकेश के पास केवल एक कमरे का छोटा-सा घर होगा जिसमें वे अपनी नाजों से पली प्रियतमा को ले जाने में हिचकते होंगे। उसने एक तरकीब सोची ! वह मुकेश के दफ्तर पहुँच गई। उस दिन मुकेश दफ्तर में थे भी नहीं। भावना ने मुकेश के सहकर्मी से बातों-बातों में उनके घर का पता ले ही लिया। उसी दिन शाम को वह खूब सज-धजकर मुकेश के घर पर पहुँच गई थी। बाहर मुकेश की नेम प्लेट लगी थी।

"साहब घर पर हैं ?" उसने बाहर खड़े नौकर से पूछा।

"हाँ, साहब अंदर हैं। मैं खबर करता हूँ, आपका शुभ नाम ?"

"नहीं, मैं खुद ही अन्दर चली जाऊँगी।" भावना ने बड़ी अदा से कहा था।

उसका हृदय अपनी सफलता पर बल्लियों उछल रहा था। अब पता चलेगा बच्चू को, बड़ा बचते थे, अच्छा-खासा तो घर है ड्राइंग-रूम तक पहुँचते हुए भावना ने सोचा—'अरे ! इतना सुंदर सजा रखा है मुकेश ने। वाह ! तो साहब हमारे आगमन की तैयारियों में लगे हैं। वाह ! पूरा घर ही सुंदर है। छोटा भी नहीं है।' भावना मन-ही-मन खुश हो रही थी। चेहरे पर हजारों गुलाबों की चमक व लावण्य आ चला था। मुकेश ! मुकेश ! वह आवाज लगाती कमरा-दर-कमरा लाँघती चली जा रही थी कि सामने बेड-रूम-आ गया। मुकेश एक औरत के साथ पलंग पर लेटे थे।

"ओफ !" भावना वहीं गिर पड़ी थी। मुकेश ने तत्परता के साथ भावना को अपनी बांहों में उठाकर बिस्तर पर लिटा दिया था और पास रखी मेज पर से पानी की बोतल उठाकर पानी के छींटे देने लगा था। "पानी लाना शालू।" शालू दौड़कर पानी का गिलास से आई थी और मुकेश ने भावना को स्वयं बिस्तर पर बिठाकर अपनी बांहों के सहारे उठाकर पानी का गिलास उसके होंठों से लगा दिया था—"भावना, पानी पियो।" वे पुचकारते हुए बोले थे।

"कौन है यह ?" तब शालू ने बड़ी उत्सुकतापूर्वक पूछा था।

"तुम्हारी सौत !" मुकेश इतनी गंभीर स्थिति में भी हँसते हुए बोले थे।

"ओफ ! मजाक मत करो !" शालू चिढ़ गई थी।

"सच बात भी तुम्हें सच नहीं लगती तो मैं क्या करूँ ?" मुकेश फिर बेहयाई से हँस पड़े थे। और कर भी क्या सकते थे ! परिस्थिति ही ऐसी आन पड़ी थी, वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी इतने अप्रत्याशित रूप में ।

कमरे की चौखट के पास जमीन पर केसर-पिस्ता आइसक्रीम की पूरी ब्रिक, साथ ही रेमण्ड की रेडीमेड कमीज का डिब्बा शुभकामनाओं के कार्ड के साथ गिरे पड़े थे, जिन्हें भावना बड़े प्यार के साथ पैक कराकर मुकेश के लिए विवाह के पश्चात् बतौर प्रथम उपहार, लेकर आई थी । मुकेश को आइसक्रीम खाने और खिलाने का बहुत शौक था ।

शालू ने उड़ती निगाहों से पति की बांहों में बेसुध पड़ी सुंदर युवती की ओर देखा और कमरे से बाहर चली गई । सोचा, दफ्तर की कोई सहकर्मी होगी । यह पुलिस विभाग है ही ऐसा । या फिर कोई अपरिचिता इनसे अपने बलात्कार की कोई व्यथा-कथा कहने-बताने आई होगी और अपनी घटना को याद करके चेतना खो बैठी होगी ।

मुकेश ने भावना को उठाकर बिठा दिया था, "वह औरत कौन है मुकेश, जो तुम्हारे साथ अभी यहाँ बैठी थी, सच-सच बताओ ?"

"सच बताऊँ भावना ! वह मेरी पत्नी शालिनी है ।"

"पत्नी ?"

"हाँ ।" आँखें नीचे किए मुकेश धीरे-से बोले थे ।

"पर तुमने तो पहले कभी मुझे यह नहीं बतलाया कि तुम पहले से ही विवाहित हो ।" भावना ने बड़े अचरज भरे स्वर में रोते हुए पूछा था ।

"तुमने पूछा ही कब ? जब भी मैं कुछ बताना चाहता, तुम कह देती थी, मुझे तुम्हारे विषय में कुछ नहीं जानना, मैं केवल यही जानना चाहती हँ कि तुम मुझे हृदय से प्रेम करते हो और वह मैं करता हूँ । करता रहूँगा ।"

"पर मुकेश, मैं तो कभी इस बात की कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि तुम विवाहित भी हो सकते हो ! तुमने मेरे साथ ये खिलवाड़ क्यों किया ? बताओ ! मैं तो अब कहीं की भी न रही । तुमने मुझे चालू लड़की समझा था क्या ? मेरा क्या होगा अब ?"

"होगा क्या ? अब तुम भी यहीं रहोगी, यही तो तुम चाहती हो न ?"

"पर ऐसा तो मैंने कभी सोचा भी न था, तुम्हारी प्रथम पत्नी के साथ... ?"

"तो क्या हुआ ? वह भी तो अब अपने पति की दूसरी पत्नी के साथ रहेगी ।"

भावना फूट-फूटकर रोने लगी थी । वह माँ बनने वाली थी । अब वह माँ-बाप को क्या बताएगी ? भाई-बहनों को कैसे मुँह दिखाएगी ? उसने सोचा था कि इतना अच्छा लड़का देखकर माँ-बाप उसे क्षमा कर देंगे अंतर्जातीय विवाह करने के लिए । तभी कमरे में शालू के साथ-साथ एक पंद्रह-सोलह वर्ष का लड़का तथा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एक तेरह-चौदह वर्षीया लड़की आ गए। शालू ने सब बातें सुन ली थीं। वह गरजी—"तू यह मत समझना कि खाली सौत ही सौत है यहाँ पर। यह देख, ये हमारे बेटा-बेटी भी हैं। इतने बड़े ! इस आदमी का तो सिर फिर गया था जो तुझसे प्यार का नाटक किया। चल भाग, ऐसे किस्से तो होते रहते हैं।"

"हमने शादी की है !" भावना रोते हुए बोली थी।

"चल हट, कैसी शादी ? क्या प्रमाण है तेरे पास ? कहीं मंदिर-वंदिर में माला-वाला बदल ली होगी। इसे ही विवाह कहते हैं क्या ?"

शालू क्रोध से पागल हो उठी थी और अनाप-शनाप बकने लगी थी। मुकेश चुप बैठे थे। उस लड़के व लड़की ने भावना को हाथ से पकड़कर घर से बाहर खदेड़ दिया। रोती-पीटती रिक्शे पर बैठकर वह अपने घर वापस आ गई थी। भावी जीवन के लिए संजोए हुए उसके समस्त स्वप्न खंडित हो गए थे। अब सोचने के लिए शेष ही क्या रहा था ?

उस दिन घर पहुँचने पर भावना बेतहाशा रोती ही जा रही थी। माँ, पिता जी, नीरा, सुनील तथा दोनों बड़ी बहनें, सभी हैरान-परेशान थे।

"बात तो बता भावना बेटे, क्या हुआ जो आज तू इतना रो रही है ?" पर भावना निःशब्द थी। कहती भी क्या ? अब कहने को रह ही क्या गया था ? उसके हृदय में हाहाकार मचा था। वह छली गई थी। बड़ी बुरी तरह चोट खाई थी उसने। ऐसी चोट कि हृदय काँच की तरह टुकड़े-टुकड़े हो गया था, जिसकी किरचें अब उसके समूचे परिवार को चुभेंगी। इस चुभन से अब न वह स्वयं बच सकती है और न ही अपने परिवार को बचा सकती है !

तभी बाहर एक स्कूटर आकर रुका था। मुकेश अंदर आए। पिताजी को एक ओर अलग ले जाकर उन्होंने संभवतः पूरी बात विस्तार से बताई होगी, क्योंकि बात सुनते ही वह माथा पकड़कर वहीं पर बैठ गए थे। माँ बार-बार पूछ रही थी—"बात तो बताओ, क्या हुआ आखिर ? तुम सब यह क्या कर रहे हो ?" भावना ने अपने जीवन में प्रथम बार पापा को इस प्रकार फूट-फूटकर रोते देखा था। मुकेश ड्राइंग-रूम में सोफे पर एक तरफ चुपचाप बैठ गए थे। धीरे-धीरे उठकर वे भावना के पास आए थे—"भावना, चलो घर चलो।"

"घर ! मुकेश, तुमने मेरे साथ यह खिलवाड़ क्यों किया ? मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था आखिर ?"

"भावना, जो होना होता है, वही होता है। मुझे देखो, मैं तो अब भी तुम्हारे साथ हूँ और तुम्हें अपने साथ घर ले जाने को तैयार हूँ जबकि....."

"मतलब ? तुम घर ले जाकर मुझ पर एहसान कर रहे हो ?" भावना गुस्से में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तमक उठी थी।

"भावना, तुम यदि नहीं चलना चाहती तो न सही। मैं तुम पर कोई दबाव नहीं डालना चाहता।" मुकेश व्यथित स्वर में धीरे से बोले थे।

तब तक माँ ने पापा से पूरी बात सुन, समझ ली थी। वह भी बेहद दुःखी हुई थी। किंतु अपने को किसी प्रकार संयमित रखते हुए अत्यंत धैर्यपूर्वक भावना का हाथ अपने हाथों में लेकर उसे गले से लगाते हुए बोली, "भावना बेटा, जो हुआ उसे एक दुःस्वप्न की भाँति भूल जाओ। समय देखकर तुम्हारा कहीं अच्छी जगह विवाह कर देंगे हम। मुकेश के साथ जाने की गलती कभी न करना।"

"पर माँ, मैं मुकेश से प्रेम करती हूँ। चाहे वह कैसे भी हों—और चाहे स्थितियाँ कुछ भी हों।"

"बेटा, भूल जाओ इस प्रेम को। यह प्रेम नहीं केवल यौवन का आकर्षण था। नहीं तो जीवन भर पछताना पड़ेगा तुम्हें।" माँ ऊँच-नीच समझाने लगी थी।

"माँ, मैं मुकेश के बिना जीवित नहीं रह सकती अब।" भावना यही रट लगाती रही। कुछ देर बाद प्रकृतिस्थ होने पर भावना ने अपना सूटकेस तैयार कर लिया था और चुपचाप मुकेश के साथ चल दी थी। घर के सब लोग अपने-अपने कमरों में जा चुके थे। पूरे घर में सन्नाटा-सा छा गया था।

मुकेश के घर आने पर भावना को कैसी-कैसी नारकीय यातनाएँ सहनी पड़ी थीं! याद करके आज भी उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं। वहाँ जाते ही उसकी तबीयत खराब रहने लगी थी। ऊपर से हर समय शालू, रीना और रंजन उसे भाँति-भाँति से व्यंग्य-बाणों से छेदते रहते थे। उस पर हर समय उन तीनों के नए-नए करिश्मों का आतंक छाया रहता—मानो चौबीसों घण्टे सिर के ऊपर कच्चे धागे में बंधी नंगी तलवार टंगी रहती हो! हाँ, सुबह-शाम जब मुकेश घर में होते तो किसी का साहस उसे कुछ कहने का नहीं होता था। तब मुकेश उसे अपने बेड-रूम से बाहर निकलने की कह देते थे ? वहीं पर चाय-नाश्ता, खाना इत्यादि सब सुख-सुविधाएँ जुट जाती थीं। उसे प्रसन्न रखने का भी वह पूर्ण जतन करते, पर भावना हर समय घायल हिरणी-सी आशंकित और भयभीत ही रहती। भावना की ऐसी स्थिति देखकर मुकेश ने शालू को उसके भाई के पास बिहार भेज दिया था, ताकि भावना कुछ स्वतन्त्रता महसूस कर सके। भावना ने भी कुछ दिनों के पश्चात् फिर से दफ्तर जाना आरंभ कर दिया था, क्योंकि मुकेश की अनुपस्थिति में घर पर रहकर रीना-रंजन के ताने सुनने से वह कहीं बेहतर था। अब सुबह-शाम वह घर के कार्यों में व्यस्त रहती थी।

इसी प्रकार प्रसव-पूर्व के आठ-नौ महीने निकल गए थे। बड़े साहस एवं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आत्मविश्वास के साथ उसने अपना यह समय व्यतीत किया था ताकि उसके होने वाले शिशु पर इन स्थितियों की प्रतिक्रियाओं की छाया भी न पड़ सके। उसने हरदम अपने मन को शांत रखने की पूर्ण चेष्टा की थी। रंजन और रीना के साथ अपना व्यवहार सदैव शालीन एवं संयमित रखा था, किंतु लगता था कि उन दोनों ने उसे बात-बात पर अपमानित करने की ठान ही रखी थी। वे दोनों भावना के प्रत्येक कार्य में खूब नुक्ताचीनी करते। उन्हें भावना के नाम, उसके हर काम से ही घृणा थी। उनका हृदय भावना को किसी प्रकार भी स्वीकार करने को तैयार नहीं था।

फिर लवली हो गई थी। सच ही बड़ी प्यारी बच्ची। माँ और पिता दोनों का देदीप्यमान सौंदर्य तो उसमें आया ही था, साथ ही कुशाग्रता भी ! चार-पाँच दिन की थी, तभी गर्दन घुमा-घुमाकर चारों ओर देखने लगी थी। हाथ-पैर चला-चलाकर गोदी में आने को मचलती। पाँच दिन अस्पताल में रहने के पश्चात् जब भावना घर वापस आई तो देखा कि द्वार पर शालू खड़ी है ! भावना उसकी ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाने की सोच ही रही थी कि वह अपने स्वर में ढेर-सी घृणा और व्यंग्य भरकर बोली—"सौत की जचकी कराने आई हूँ। सुना है, यहाँ काम के बड़े रौले पड़ रहे हैं !"

भावना क्या उत्तर देती ? जब वह घर में थी ही नहीं इन दिनों, प्रसव में लेटी है तो काम कैसे करती ? वह चुपचाप, बिना कुछ उत्तर दिए मुकेश के साथ अपने कमरे में आकर लेट गई। मुकेश ने बच्ची को चूमकर बिस्तर पर उसके पास ही लिटा दिया था। अब दफ्तर जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था। वैसे भी उसे प्रसव-काल की छुट्टी मिल गई थी। भावना आँखें मींचकर लेट गई।

रात-दिन के ताने-उलाहनों, कलह-क्लेश, रोने-पीटने, अपशब्दों से भावना बेहद दुःखी रहने लगी थी। ऐसे कटु जीवन की तो उसने कभी कल्पना तक नहीं की थी। फिर माँ-पिताजी, बहनों एवं भाई ने तो उसके घर से आने के पश्चात् नाता भी तोड़ लिया था, मानो उनका उससे कभी कोई संबंध रहा ही न हो ! कोई अपनों को भी यूँ ही बेगाना कर सकता था ! एक नगर में रहते हुए भी वह अपने माँ-बाप, भाई-बहनों का मुख तक देखने को तरस रही थी ! किससे अपने हृदय की व्यथा बताए ? भावना का जीवन मझधार में घिरी बिन चप्पू की नौका के समान पानी की उत्ताल लहरों के बीच थपेड़े खा रहा था, जहाँ से बाहर निकलने का कोई ओर-छोर नहीं था। बीच भँवर में मुकेश तिनके के सहारे जैसे थे। किंतु वे भी उससे चिपककर, उसके पास कितनी देर रह सकते थे ? अब तो वे भी तंग आने लगे थे इस गृह-कलह से। भावना चाय-नाश्ता तैयार करती तो कोई नाश्ता नहीं करता,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चाय भी नहीं पीता—"क्या चाय है ! वाह ! सीधी दार्जिलिंग से बनकर आई है !" वे तीनों उसे सुना-सुनाकर मखौल उड़ाते और जब वह नहीं बनाती, स्वयं ही बनाकर पी लेती तो कहा जाता— "वाह ! क्या संस्कार है ! रानी जी को हर समय बस अपने पेट-पूजा की चिंता रहती है !" दफ्तर जब जाती थी, उसे अपना खाना स्वयं बनाकर ले जाना होता था । वह सबका ही बना लेती थी पर शाम को वापस आकर देखती कि उसका बनाया खाना किसी ने छुआ तक नहीं । सब वैसे का वैसा ही पड़ा है । उसके लिए तीनों में से कोई भी, चाय-नाश्ता, खाना एवं जीवन की अन्य आवश्यकताओं-सुविधाओं को कोई नहीं जुटाता, ऊपर से हर समय उल्टी-सीधी बातें !

पर भावना बड़ी दृढ़प्रतिज्ञ लड़की थी । मुकेश और लवली के प्रेम की खातिर उसे सब दुःख सहने स्वीकार थे । वह लवली को खूब स्नेह, ममता और दुलार देती । दफ्तर जाना अभी आरंभ नहीं किया था उसने । उसे उन दिनों मुकेश हर समय उदास दिखाई देते थे, जो हर समय गंभीर से गंभीर बातों, समस्याओं का समाधान भी हँसी-मजाक में कर डालते थे । उन्हीं मुकेश को वह हरदम गुमसुम पाती थी । वे घर में आते तो बस अपने काम से काम रखते । थोड़ी देर उसके पास बैठते, फिर आराम कुर्सी पर बैठे समाचार पत्रों या पत्रिकाओं में खोए रहते । दोनों बच्चे भी उदास, खामोश रहते थे और शालू की आँखें तो सदा भरी रहती थीं । भावना सोचने लगी, उससे कितना गलत काम अनजाने में ही हो गया ! एक हँसते-खेलते प्रसन्न परिवार को उसने दुःखों की अग्नि में सदा के लिए झोंक दिया है । उसे क्या अधिकार है औरों की खुशियाँ छीन लेने का ? भावना हर समय इसी अपराध-बोध से घिरी रहने लगी कि वह अपने सुख के लिए एक दूसरी नारी का जीवन बर्बाद कर रही है, जबकि पहले से ही यह घर उसी का है, पति उसी का है ! वह तो एक प्रकार से घुसपैठिया ही हुई न ? वह सोचने लगी । भावना ने निश्चय कर लिया कि अब वह शालू और मुकेश के बीच दीवार नहीं बनेगी ।

और सुबह उठकर भावना अपना सूटकेस लिये अपनी अभिन्न सखी सपना के पास काम-काजी महिलाओं के होस्टल में आ गई थी । शालू और मुकेश के नाम वह एक पत्र छोड़ आई थी जिसमें उसने उन दोनों से फिर से प्रेम के साथ रहने की विनती की थी और अपने हृदय के टुकड़े लवली को उन्हें सौंपा था ।

"और तो सब ठीक है भावना ! पर तू लवली के बिना कैसे रहेगी ? उसे वहाँ क्यों छोड़ आई ? वह तेरी बेटी को स्नेह देगी ?" सपना ने लवली के लिए भावना की तड़प को समझते हुए पूछा था । भावना चुप थी । उसके नेत्रों से झर-झर आँसू बह रहे थे । आज सुबह तो वह बच्ची को पेट भर स्तनपान करा आई थी, पर इस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समय दूध पीने का समय था। लवली कितना रो रही होगी, नन्हीं-सी डेढ़ महीने की जान ! वह अधीर हो रही थी किंतु यह निश्चय उसका अपना निश्चय ही तो था ! वह बिना कुछ कहे बिस्तर पर जा लेटी।

तभी होस्टल की बाई ने आकर बतलाया कि भावना से मिलने कोई सज्जन आए हैं। सपना ने कहा—"भावना उठ, मुकेश आए हैं। कॉमन रूम में बैठे हैं। जा, मिल आ।"

भावना जैसे ही वहाँ पहुँची, मुकेश ने लवली को उसकी गोद में दे दिया। भावना ने बच्ची को चूमते हुए वापस मुकेश को देते हुए कहा—"यह अब आप लोगों के पास ही रहेगी, ताकि इसे आपका नाम मिले।"

"भावना, तुम भी चलो। बचपना मत करो। अकेले रहना इतना आसान नहीं है।"

"मैं जानती हूँ, मुकेश। किंतु मुझसे शालू का, बच्चों का और तुम्हारा दुःख देखा नहीं जाता। जो अपराध अनजाने में मुझसे हुआ है, उसका मैं प्रायश्चित्त करूँगी। इस जन्म में तुम्हें नहीं पा सकी तो क्या हुआ ? अब अपनी तपस्या से अगले जन्म में तो तुम्हें अवश्य ही पा लूँगी। तुम जाओ मुकेश और अब यहाँ कभी मत आना, वरना मेरी तपस्या अधूरी रह जाएगी। शालू व दोनों बच्चों को फिर पहले जैसा ही प्यार देना। हाँ, एक वादा करो !"

"क्या भावना ?" मुकेश ने नेत्र पोंछते हुए पूछा।

"लवली के साथ अपना फोटो खिंचवाकर भेज देना, ताकि मुझे जीने का आधार मिल सके। इसके और हर जन्म-दिन पर अपने साथ एक फोटो खिंचवाकर भेजते रहना। भेजोगे न ?"

"हाँ भावना, अवश्य भेजूँगा। पर मैं कभी-कभी तुम्हें देखने आता रहूँ तो तुम्हें क्या एतराज है ?"

"नहीं मुकेश, ऐसा न करना। नहीं तो शालू सदैव संदिग्ध ही रहेगी और तुम्हारा वैवाहिक जीवन फिर काँटों में उलझा ही रहेगा। अब तुम जाओ, मुकेश। लवली को ले जाओ ! इसे खूब अच्छी शिक्षा देना। मेरे चले आने से मुझे पूर्ण विश्वास है कि इसे बड़े भाई-बहनों एवं माँ का पूर्ण प्यार मिल सकेगा।"

मुकेश ने भावना को लाख-लाख समझाया था। कसमें दी थीं, उसके सान्निध्य के लिए अपनी इतनी बढ़िया सरकारी नौकरी तक छोड़ देने को वे उद्यत थे, पर भावना नहीं मानी थी। मुकेश स्वयं भी अपराध-बोध से ग्रसित थे। उनका ही तो दोष था यह सब ! यदि वे पहले ही भावना को बता पाते कि वे विवाहित हैं और उनके बड़े-बड़े बच्चे भी हैं तो भावना अपने वेग को वहीं रोक लेती ! किंतु वे स्वयं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी तो भावना के प्रेम में आकंठ डूब चुके थे। भावना का साथ छूटने का भय उन्हें उनकी वास्तविकता बताने से रोक रहा था या परिस्थितियाँ ही कुछ ऐसी बनती गई थीं कि वह सब कुछ बताना चाहकर भी उसे बता ही न पाए। अब वे निश्चित रूप से सोच भी नहीं पा रहे थे। यह सच था और है कि वे भावना को छलना नहीं चाहते थे। उनका प्रेम सच्चा प्रेम है। अब भी वे अपने इस प्रेम के लिए सब कुछ करने को तैयार हैं। नौकरी त्यागने को, घर त्यागने को, पूर्व पत्नी एवं बच्चों तक को त्यागने को। भावना को वे इस कदर चाहते हैं—यह तो उन्हें आज ही पता लगा था! पर वे कर ही क्या सकते थे? भावना इस बात के लिए कतई तैयार नहीं थी कि वे अपनी बनी-बनाई गृहस्थी को तोड़ें। वह शालू की भावनाओं का आदर करती थी।

भावना की चाय खत्म हो गई थी। उठकर वह अन्य कार्यों में लग गई। समय मंथर गति से चल रहा था। भावना उसी वर्किंग गर्ल्स होस्टल में कमरा लेकर रहने लगी थी। सुबह का समय तो नहाने-धोने, दफ्तर जाने की तैयारियों में निकल जाता और पूरा दिन दफ्तर में, किन्तु संध्या समय और रातें उसे बिच्छू-सी काटने को दौड़तीं। इतनी बेचैनी और तड़पन होती कभी-कभी कि वह परेशान हो उठती। न कहीं जाने-आने का मन करता और न ही कुछ करने का। किसी से बात करने तक की उसकी इच्छा न होती! यहाँ रहने पर दो-तीन वर्ष के उपरांत एक दिन उसे विदित हुआ कि उसकी सबसे बड़ी दीदी का विवाह तय हो गया है। भावना को इतनी प्रसन्नता हुई कि वह पुरानी सब बातों को भुला, तुरन्त ही घर पहुँच गई थी दीदी एवं माता-पिता को बधाई देने। कितने प्रयत्नों से, कितनी प्रतीक्षा के प्रश्चात यह घड़ी आई थी? वह सीधी जाकर दीदी से चिपट गई।

"ओह! दीदी, बधाई हो। कितनी प्रसन्नता की बात है! मुझे तो आज ही पता लगा अपने होस्टल की एक लड़की से। वह तुम्हारे ही स्कूल में अध्यापिका है!" पर दीदी ने भावना की बांहें अपने गले से छुड़ा ली थीं। भावना को बुरा लगा था, पर फिर भी वह उत्साहपूर्वक बोली थी—"दीदी, बताओ तो सही कि जीजा जी कैसे हैं? क्या करते हैं?" पर दीदी बिना कुछ उत्तर दिए वहाँ से उठकर चली गई थीं। भावना को लगा कि उसको संभवत: गलत खबर मिली है। वह सीधी माँ के पास उनके कमरे में चली गई—"माँ! माँ! दीदी की सगाई हो गई है न? तुम्हें बधाई!" माँ वैसे ही निश्चल बैठी रही थीं—"वह तो ठीक है भावना, पर तू कैसे आ गई आज? बेटे, बात को समझ! बड़ी कठिनाई से यह रिश्ता तय हुआ है। अब तू निर्विघ्न विवाह हो जाने दे। तेरी काली छाया ने पूरे परिवार की खुशियों को राहु-सा ग्रस लिया है। तू बुरा न मानना बेटी, पर..." माँ रो पड़ी थीं। भावना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब समझ गई थी । वह चेतनाशून्य होने से पूर्व ही वहाँ से उठकर चल दी थी और होस्टल में अपने कमरे में आकर पड़ी रही थी ।

दिन-पर-दिन, वर्ष-पर-वर्ष बीतते जा रहे थे । भावना की दोनों बड़ी बहनों, भाई तथा छोटी बहन के विवाह हो चुके थे । उसे किसी भी विवाह में सम्मिलित होने का निमन्त्रण नहीं मिला था और न ही कभी कोई उससे मिलने ही आया था । भावना ने इसे अपनी नियति समझकर स्वीकार कर लिया था, पर उसने ऐसा क्या किया था जिसकी उसे इतनी बड़ी सजा मिल रही थी ? वह तो स्वयं ही अपने किए का प्रायश्चित्त कर रही थी ! उसने किसी औरत का घर तो नहीं उजाड़ा था ! समाज में कोई गंदगी तो नहीं फैलाई थी ! एक शादीशुदा आदमी से प्रेम किया, पर विवाह के पश्चात् ही शारीरिक संबंध बनाए थे ! माँ-पिताजी ने उसे समझने की कोशिश ही कब की थी ? वे तो चाहते थे कि भावना भ्रूण-हत्या करा ले और उनके कहे अनुसार किसी अन्य व्यक्ति से विवाह कर ले । क्या वह किसी को छलना नहीं होता ? अपने हृदय में किसी और मर्द की स्मृतियों एवं प्रेम को संजोए अपनी देह को समर्पित करते रहना क्या पति के प्रति विश्वासघात नहीं होता ? समाज की मर्यादाओं को निभाने के लिए हम आजीवन झूठ और ठगाई के घोड़ों पर सवार रहें, क्या यह समाज में स्वस्थ परंपराएँ डाल सकता है ?

भावना के अनुरोध पर मुकेश प्रतिवर्ष लवली के जन्म-दिन पर लवली और अपना फोटो खिंचवाकर भेजते रहे थे । भावना ने उन सभी चित्रों को फ्रेम में जड़वाकर अपने कमरे की दीवारों पर लगा रखा था । उन्हीं को देखकर, उन्हीं के सहारे वह अपना समय व्यतीत कर रही थी । मुकेश की उत्तरोत्तर तरक्की होती रही थी । अब वे एस.पी. बन गए थे । बड़ी बेटी रीना का विवाह हो गया था और रंजन इंजीनियरिंग करके बहुत अच्छी सर्विस पा गया था । मुकेश ने तभी अपना स्थानांतरण करा लिया था इस नगर से, जब भावना उनसे अलग होकर इस होस्टल में आ गई थी । पूरे वर्ष में एक पत्र जन्म-दिन के चित्रों के साथ मुकेश अवश्य ही लिखते थे जिसमें वह संक्षेप में पूरे वर्ष की लवली की एवं परिवार के अन्य सदस्यों की महत्त्वपूर्ण कही जाने वाली बातों से भावना को अवगत करा देते थे । भावना इससे अधिक चाहती भी कहाँ थी ? उसने इसीलिए तो कभी मुकेश के किसी पत्र का उत्तर नहीं दिया था । वह जानती थी कि मुकेश उसे बेहद चाहते थे । यदि वह तनिक भी ढीली पड़ी, तो मुकेश अपनी घर-गृहस्थी छोड़कर उसी की ओर खिंच आएँगे । उसके लिए जीवन एक कड़ी परीक्षा हो गया था । होस्टल, दफ्तर तथा जानने-पहचानने वालों में भावना का बड़ा मान था, प्रतिष्ठा थी । सभी उसे आदर-सम्मान की दृष्टि से देखते थे । आज से दस वर्ष पूर्व एक दिन वह भी था ,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

जब लोग उसे 'दूसरी औरत' या रखैल तक कहकर कानाफूसी करते थे। उसे पग-पग पर लोगों की घृणित नजरों का सामना करना पड़ता था एवं अपमान के घूँट पीने पड़ते थे। सुबह का सूरज अपनी लाली खोकर पीला पड़ता जाता है किंतु उसकी प्रखरता पहले से उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। वैसे ही भावना देखने में चाहे पहले से दुबली-पतली, पीली पड़ी-सी लगने लगी थी, पर उसके आत्मविश्वास, दृढ़ता और चरित्र की उज्ज्वलता निरंतर विकसित हो रही थी। इस बीच उसके सम्मुख न जाने कितने लोगों के प्रस्ताव आए थे, "रानी बनकर रहोगी! क्यों इतने प्रखर रूप सौंदर्य एवं लावण्य की बलि चढ़ा रही हो?" पर भावना टस-से-मस नहीं हुई थी। अपनी अस्मिता को अक्षुण्ण रखने के लिए उसे ढेरों पापड़ बेलने पड़े थे। कितनी ही लोलुप निगाहों का दृढ़ता के साथ सामना करना पड़ा था।

उस दिन जब भावना दफ्तर से वापस आई तो उसे एक निमन्त्रण-पत्र मिला। उसने लिफाफा खोला। रंजन का विवाह हो रहा था। उसे बुलाने के लिए मुकेश ने कार्ड पर ही दो लाइनें अपने हाथ से लिख दी थीं। पिछली बार जब रीना का विवाह हुआ था आज से दो वर्ष पूर्व, तब भी तो उसके पास निमन्त्रण आया था। मुकेश ने बड़े आग्रह के साथ उसे इसी प्रकार दो लाइनें लिखी थीं अवश्य सम्मिलित होने के लिए। किंतु वह गई नहीं थी। क्यों शालू के जीवन में कटुता घोले वह! यही क्या कम था कि मुकेश के कहने पर वह अपनी सौत की पुत्री को इतनी अच्छी तरह से पाल-पोस रही थी? मुकेश ने शालू को कह दिया था कि यदि वह भावना की बेटी को अपनी कोख से जायी पुत्री समझकर व दूसरों को बताकर पालती रहेगी तो वे कभी भावना से नहीं मिलेंगे, न ही वह कभी हमारे घर आएगी। शालू ने इस वायदे को पूर्ण रूप से निभाया था। भावना ने उठकर लवली का फोटो दीवार से उतार लिया। कितनी प्यारी लग रही है! इस बार बारहवाँ वर्ष पूरा किया है उसने। लहंगे-दुपट्टे में चित्र खिंचवाया है शालू ने उसका। रंगीन चित्र में लवली कितनी लवली लग रही है और ड्रेस भी उसका कितना सुंदर है! लवली के मुख पर छाई भोली, निर्दोष कोमल मुस्कान बता रही है कि वह वहाँ प्रसन्न है। भावना देर तक चित्र को देखती रही थी और साथ ही सोचती रही थी कि यहाँ से रंजन और उसकी बहू के लिए उपहारस्वरूप क्या भेजूँ? जाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता था।

भावना के लिए जीवन ठहर-सा गया था। अपने जीवन, अपनी स्थितियों से उसने सदैव समझौता किया था। हृदय में उठती हिलोरें, अशांत भावनाएँ व बेचैनी अब संयमित होने लगी थीं। उसने इधर-उधर की बातों के विषय में सोचना ही छोड़ दिया था। होस्टल में रहने वाली दीदी की सहेली से उसे अपने घर में माँ-बाप

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तथा भाई-बहनों के विषय में पता लगता रहता था। पहले अपनी कल्पना में वह उनसे मिलने जाया करती थी। जवांब-सवाल भी किया करती थी किंतु उनका रूप देखकर उसने बड़ी कठिनाई से स्वयं को उनसे काटने की कोशिश की थी, पर मन को क्या कोई बाँध सका है! वह तो जब-तब उड़ ही जाता है और पहुँच जाता है अपने आत्मीय जनों के पास। माँ-पापा का पिछले वर्ष जब देहांत हुआ था, तब उसे बड़ा संयम बरतना पड़ा था स्वयं पर। बार-बार घर की ओर बढ़ते पगों को वह सप्रयास रोक लेती थी। कई दिनों तक उससे कुछ भी खाया-पिया तक न गया था। बस यूँ ही बिस्तर पर पड़ी रहती थी। किसी के कह देने मात्र से ही क्या संबंध समाप्त हो जाते हैं? रिश्ते कभी नहीं टूटते। हम केवल उन्हें मानना बंद कर देते हैं। पेड़ से टूटी शाख ज्यों टूटने पर भी कहलाती सदा उसी पेड़ की है।

एक दिन सुबह से ही भावना बड़ी बेचैन-सी थी। दफ्तर की छुट्टी थी। सपना आकर उसके पास बैठ गई थी। सपना ही ऐसी लड़की थी जो पिछले बारह-तेरह वर्षों से उसी होस्टल में रह रही थी। शेष लड़कियाँ तो आती-जाती रहती थीं। कुछ लड़कियों ने अलग कमरा लेकर रहना आरंभ कर दिया था तो कुछेक ने शहर में अपने स्वयं के मकान बना लिये थे। कुछ लड़कियों के कुछ दिनों की सर्विस के पश्चात् विवाह हो गए थे। सपना बाल विधवा थी। पहले उसके माँ और भाई गाँव में थे। कुछ वर्ष पूर्व माँ भी चल बसी थी और भाई बंबई में जा बसा था विवाह करके। कभी-कभार उसके पत्र आते रहते थे। सपना पहले यहाँ अपने मामा के घर रहकर पढ़ती थी, तभी से भावना और सपना की खूब पटती थी। दोनों एक ही कक्षा में थीं। जब कभी कोई त्योहार-वार होता, सपना को भावना की माँ अवश्य अपने घर खाने का न्यौता दिया करती थी। भावना सपना को लवली की चौदहवीं वर्षगाँठ का चित्र दिखा रही थी। सलवार कुर्ते में लवली बहुत प्यारी लग रही थी। सपना ने देखा कि भावना लवली का फोटो बेतहाशा चूमे जा रही है।

"यह क्या हो रहा है तुझे भावना? अपने को संभाल।"

"बड़ा दिल करता है अब मेरा लवली की एक झलक देख लेने का, सपना। लगता है कि पंख लगाकर उड़ जाऊँ उसके पास।" भावना रोने लगी थी। सपना भावना का मुँह अपनी गोद में लेकर साड़ी के पल्लू से उसके आँसू पोंछने लगी, पर भावना की रुलाई रोके नहीं रुक रही थी उस दिन।

"माँ...माँ....माँ!"

"कौन है? कौन आवाज दे रहा है! लवली मुझे बुला रही है।" भावना फट पड़ी।

"तुझे क्या हो रहा है, भावना? शांत हो जा।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"लवली मुझे पुकार रही है सपना ! ! यह उसी का स्वर है । मैं उसकी आवाज को पहचानती हूँ । वह अक्सर मुझे इसी प्रकार पुकारा करती है ।"

"पागल हो गई है क्या भावना तू ? तूने स्वयं ही तो लवली को पिता के पास छोड़ने का निर्णय लिया था न ?"

"पर क्या करती ? बच्चे के स्वस्थ विकास के लिए पिता की छत्रछाया होना भी तो जरूरी है, सपना । मेरे पास उसे बदनामी के सिवा और क्या मिलता ?" भावना फिर रो पड़ी ।

"माँ !"

दोनों ने चौंकर देखा । लवली सचमुच वहीं पर खड़ी थी ।

"माँ !" लवली आकर भावना से ऐसे लिपट गई थी । जैसे सदा-सदा से उसी के पास रहती आई हो ।

"लवली, मेरी बच्ची !" भावना और लवली दोनों ही फूट-फूटकर हिचकियाँ ले-लेकर रो रही थीं ।

"माँ, घर चलो । हम आपको लेने आए हैं ।" लवली ने कुछ देर बाद कहा ।

भावना कुछ देर तक यूँ ही शून्य में देखती रही । लवली को पाकर उसका हृदय इतना प्रसन्न था कि वह कुछ और सोच ही नहीं पा रहा था । भावना ने यह भी नहीं देखा था कि मुकेश कितनी देर से वहाँ पर खड़े माँ-बेटी के इस प्रथम मिलन को आनंदित हो निर्निमेष नेत्रों से ताक रहे थे । दोनों ने बिना पहले से देखे ही एक-दूसरे को किस प्रकार पहचान लिया था, बिना हिचक स्वीकार कर लिया था ।

"माँ, अब माँ नहीं रहीं ।" लवली फिर से रो पड़ी ।

"अरे ! कैसे ? क्या हो गया शालू को ?" भावना विचलित हो उठी थी ।

"कई दिनों से बीमार चल रही थी वह, बुखार दिमाग को चढ़ गया । अचानक ही हार्ट फेल हो गया उसका," मुकेश दुःखी स्वर में बोले, "अब तो सवा महीने से ऊपर हो गया है शालू को गए भी ।"

सपना ने कुर्सी खींच दी थी । मुकेश वहीं पर बैठ गए थे । कुछ देर तक यूँ ही खामोशी बनी रही थी । सपना चाय बनाकर ले आई थी । मुकेश बोले, "भावना, अब तुम घर चलो । तुम्हारी तपस्या पूर्ण हो गई है । चौदह वर्ष का वनवास तुमने अकेले ही भोगा है ! मैंने लवली को तुम्हारे विषय में सब कुछ बता दिया है । तुम्हारी कई तस्वीरें भी दिखा दी थीं इसी से यह तुम्हें तुरंत पहचान पाई ! चलो उठो, तैयारी कर लो ।"

भावना उठकर अपना सामान बाँधने लगी । ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

संपूर्ण समर्पण

● सुषमा चौहान 'किरण'

बस अड्डे पर उस भद्र पुरुष को छोड़ कर आया तो सूना घर काटने लगा। सीधा कमरे में गया और बैठ गया उसी कुर्सी पर जो सिर्फ मेरे लिए ही बनी थी। जिस पर मेरे अलावा कभी कोई नहीं बैठा था। उनकी कुर्सी पर इतने दिन से वही भद्र पुरुष ही बैठते थे। उनकी किताबें उलटते-पुलटते रहते, हमेशा उनकी आँखों में तलाश का भाव रहता।

अचानक हवा के तेज झोंके ने सामने रखे रजिस्टर के पन्ने फड़फड़ा दिए। मेरी नजर उस पर टिक गई। रजिस्टर गत एक माह से बंद था। जहाँ लिखना छूटा था या जहाँ से आगे लिखना था, वहीं उनका पेन पड़ा था, मानो अभी आएँगी और लिखने बैठ जाएँगी। खुले पृष्ठ पर अंकित था—"समर्पण" उनका अंतिम किंतु अधूरा उपन्यास। पृष्ठ के बीचोंबीच लिखा था "अपने कान्हा को"।

इस उम्र में भी उनकी लिखावट मोतियों के समान थी। अपना नाम पढ़कर मेरा मन भर आया। आज उन्हें इस दुनिया से विदा हुए तेरहवाँ दिन था, और आज ही उनके बाद पहली बार अकेला हुआ हूँ मैं। जी चाहता है, चिल्ला-चिल्लाकर उन्हें पुकारूँ। अपने कान्हा की पुकार सुनकर वह अवश्य आएँगी। पर....पर....मैं उन्हें क्या संबोधन दूँ ? मैंने तो गत बाईस वर्ष में उन्हें बुलाया ही नहीं। वही बुलातीं रहीं...कान्हा ! कान्हा।

क्या मैं उन्हें माँ कहूँ ? नहीं....नहीं....माँ कहकर मैं उनकी गरिमा को कम नहीं करना चाहता। मेरी नजर में 'माँ' कोई आदरणीया या महान् संबोधन नहीं था। मैं भी कर्ण की तरह किसी कुंती की पहली संतान रही होऊँगी शायद। जब भी मैं 'माँ' शब्द पर उनसे कुछ बात करता तो वे सदा उस अनजानी माँ का ही पक्ष लेतीं। कभी उसकी विवशता समझातीं तो कभी उसका त्याग। पर मैं....मैं....उन्हें माँ नहीं कहना चाहता था। इसलिए मैंने कभी नहीं कहा। मालकिन ! यह शब्द मुझे तो क्या, उन्हें भी नहीं सुहाता था। कहतीं....यह सामंती शब्द है। अत: उनकी हर आवाज पर जी....जी....करता। मैंने उनका नाम भी जी रख दिया था। मेरे लिए वह देवी थीं, उनके लिए मेरे मन में अपार श्रद्धा थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उन दिनों पूरा पहाड़ी इलाका भीषण सर्दी की चपेट में था। हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था, रगों में खून मानो जमा ही रहा था। सुबह पहली बस के आने का समय हो रहा था। सेठ ने सिगड़ी सुलगा कर चाय का पानी रखा और बस आकर रुकी। मैं जल्दी-जल्दी चाय के गिलासों को धो रहा था, अचानक मेरे हाथ से गिलास छूटी और छन्न ... की आवाज के साथ पत्थर पर बिखर गई। कुछ सरदी के कारण, कुछ बस से उतरी एकमात्र सवारी के कारण सेठ का मिजाज बिगड़ ही रहा था। उस पर गिलास के टूटने ने आग में घी डालने का काम किया। पलक झपकते ही सेठ का चाँटा मेरे गाल पर पड़ा। फिर तो ताबड़तोड़ उसके हाथ-पैर चलने लगे। अंत में धक्का देते हुए सेठ ने कहा था—"खबरदार ! अब अगर इधर आया तो तेरी टाँगें तोड़ दूँगा।"

सेठ को पता था कि मैं फिर आऊँगा। मेरा कोई ठिकाना भी तो नहीं था। बस से उतरने वाली एकमात्र सवारी यही थीं। यह अंदर चाय पी रहीं थीं और मैं बाहर सर्दी में ठिठुर रहा था। रो नहीं रहा था। पता नहीं, इन्हें क्या सूझा कि ये मुझे अपने साथ ले आईं। रास्ते भर हम दोनों चुप थे। यहाँ पहुँच कर उन्होंने पहला वाक्य कहा था— "मैंने तेरा नाम कान्हा रख दिया है। नया नाम इसलिए रख रही हूं कि तू अपने पिछले नाम के साथ जुड़ा बचपन भूल सके।" तब...तब...मैं बारह-तेरह साल का ही रहा होऊँगा। इस घटना को बाईस साल हो गए। कितना लंबा समय। मैं कान्हा था...कान्हा हूँ... बाकी सब भूल गया।

वह नौकरी से सेवामुक्त होकर आई थीं, उनकी कई स्मृतियाँ यहाँ इस पहाड़ी से जुड़ी हुई थीं, वह अपनी स्मृतियों के साथ एकाकी जीवन जीना चाहती थीं। दो कमरों का मकान छोटा-सा। सभी सुविधाओं से युक्त एक कमरा उनका, एक मेरा। तब...तब मैं छोटा ही तो था। रात में मुझे जब डर लगता या सर्दी लगती तो वे अपने पास बुला लेतीं। अपने अंक में समाकर मौन सुरक्षा देतीं और मैं...मैं सोचता ... शायद यही कुछ माँ भी देती होगी। ऐसी ही बदन की गर्माहट पाकर या अपनत्व पाकर ही तो बच्चा निश्चिंत हो गहरी नींद में सो जाता है। उस समय, उस बचपन में उनके शरीर की गंध मेरी नाक में समा गई, जो आज तक मेरे साथ है, मुझमें रची-बसी है।

शुरू-शुरू में ज्यादा काम वही करतीं, मैं तो बस बातें करता। कभी चाय वाले सेठ की, कभी गाँव की। उन्होंने मुझे कभी चुप नहीं किया, सुनती रहतीं। धीरे-धीरे पता नहीं कब सारा काम मैंने संभाल लिया। वे मुझे नियमित हिंदी और अंग्रेजी पढ़ातीं। कहतीं, जितनी ज्यादा भाषाएँ सीखेगा, उतना ज्यादा साहित्य पढ़ सकेगा। मुझे किताबें देतीं कहानियों की, कविताओं की। फिर उस पर मुझसे बातें करतीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सब कुछ होता, पर मैंने उन्हें कभी हँसते हुए नहीं देखा। कभी चुटकुला सुना कर हँसाना चाहता तो कहतीं—"तू ही पढ़ लिया कर और तू ही हँस लिया कर।"

अजीब हमारा जीवन था और अजीब हमारी दिनचर्या थी। न हम कहीं जाते थे, न कोई हमारे यहाँ आता था। पहले वो थीं और उनकी किताबें। बाद में मैं और मेरी किताबें। मैं उनके साथ रहकर बोलना भी भूल गया था। जब वो पढ़तीं तो कई दिनों तक पढ़ती ही जातीं, और जब लिखतीं तो लिखती ही रहतीं। उन्हें कुछ सुध-बुध नहीं रहती। जब मुझे ठंड महसूस होती तो मैं उन्हें शॉल या कंबल ओढ़ा देता, वो एक पल को मेरी ओर बहुत प्यार से देखतीं और मैं....मैं उस दृष्टिमात्र से धन्य हो जाता। कभी-कभी लगता, मैं बड़ा होता जा रहा हूँ और वो छोटी। साल में दो बार हम राजधानी दिल्ली जाते। वहाँ खूब किताबें खरीदते, प्रकाशकों से मिलते और पाण्डुलिपि दे आते। आते समय सेठ की दुकान पर चाय अवश्य पीते। जब सेठ ने पहली बार मुझे देखा तो उसका मुँह खुला का खुला रह गया था। सेठ ने बात करने की कोशिश भी की, पर इन्होंने इशारे से मना कर दिया। कहा—"जिसके पास अच्छी भाषा नहीं, संवेदना नहीं, उसके साथ संबंध बना कर अपने स्तर से नीचे मत गिरो। उनके लिए सब कुछ पैसा है और हमारे लिए मानवता है, प्रेम है। हमारे और उनके रास्ते अलग-अलग हैं।" मैंने उनकी बात गाँठ बाँध ली थी।

कान्हा ! कान्हा ! की पुकार मुझे वर्तमान में खींच लाई। मुड़कर देखा तो पलंग पर उनकी जगह धूप का लंबा, तिरछा साया पैर फैलाए पड़ा था। लगा, जैसे यह साया भी हमेशा की तरह उनकी कमर व पीठ की सिंकाई करने आया है। इसे भी उनसे मोह हो गया है। वह अक्सर इस समय कुछ देर के लिए सो जाती थीं। जब साया उतरता, तब चाय की तलब होती।

उन दिनों मैंने कुछ किताबें पढ़ी थीं। एक-दो ने तो मुझे भीतर तक छू लिया था। उनसे बराबर बात करने की सोचता रहा। परंतु वह कुछ लिखने में व्यस्त थीं। खाना....खाना भी वे भूल जातीं थीं पर जब उन्हें याद आता तो सब छोड़कर मुझे बुलातीं और हम दोनों साथ-साथ खाना खाते। एक ऐसा ही दिन था। धूप साए को समेट कर विदा हो रही थी। मैं चाय लेकर और यह सोचकर उनके पास आया कि आज अवश्य उनसे बात करूँगा। उस किताब पर जिसने मुझे मथ डाला है। वे बैठीं थीं इसी कुर्सी पर, आँखें बंद किए। आकाश की, डूबते सूरज की लालिमां उनके झुर्रियों वाले चेहरे पर भी लालिमा लाने का विफल प्रयास कर रही थी। ट्रे रख कर मैंने अपनी कुर्सी खींची तो उनकी तंद्रा भंग हुई, आँखें खोलीं। मैं चकित था, उन आँखों से अविरल अश्रु धारा बह रही थी। एक लंबे समय से मैं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उनके साथ था, मैंने उन्हें हँसते नहीं देखा तो रोते भी नहीं देखा था । उनकी सूजी, लाल, पनीली आँखें कई बार देखीं थीं । पूछने पर हर बार यही जवाब मिलता रहा— "रात भर पढ़ते-पढ़ते थक गईं हैं ये बूढ़ी आँखें ।" पर...पर... आज वही आँखें रो रहीं थीं और मैं चुप, चकित-सा उन्हें देख रहा था । मेरी जुबान सिल गई, मुझे कुछ डूबता-सा महसूस हुआ । उनका शॉल आँसुओं से भीग रहा था । पहली बार...एकदम पहली बार मैंने उनका हाथ अपने हाथ में लिया और सहलाने लगा । यह मेरी उनके साथ प्रथम मौन सहानुभूति थी या प्रेम, पता नहीं । कहाँ वह सत्तर वर्षीया वृद्धा, कहाँ मैं बाईस वर्षीय नवयुवक । मैंने उनके बालों को बहुत देर तक सहलाया । उनको सहलाते-सहलाते मैं भी रोया । वह दिन मेरे जीवन का मील का पत्थर बन गया । मेरे जीवन को धाराएँ मिल गईं, नदी को सागर का पता पहली बार लगा ।

उसके बाद मैं कभी घंटे भर के लिए भी उनसे अलग नहीं हुआ । सुबह-शाम, दिन-रात मैं एक अंजान बंधन में बंधा उनके चारों ओर घूमा करता । मानो मेरा प्रकाश पुंज वे ही थीं । एक सुबह हम घूम कर लौट रहे थे, वे थक गई थीं । हम बीच राह में एक चट्टान पर बैठ गए । उनकी साँस तेज चल रही थी । जब जरा वो शांत हुईं तो मैंने कहा—'छाया मत छूना मन' की नायिका ने बहुत विचलित कर दिया है मुझे । उसका प्रेम कितना महान था, कितना त्याग था उसके प्रेम में ।"

बहुत देर तक हम दोनों के बीच खामोशी पसरी रही । फिर उन्होंने कहा था, "कान्हा, प्रेम वही है । प्रेम त्याग चाहता है, प्रेम बलिदान चाहता है, उसमें पीड़ा नहीं होनी चाहिए । अब देखो, हम सभी ईश्वर से प्रेम करते हैं, हम चाहते हैं कि ज्यादा से ज्यादा लोग उसी ईश्वर से प्रेम करें उसी ईश्वर की पूजा करें । वहाँ हम ईश्वर पर अपना अधिकार नहीं जताते । हम सब प्रेमी हैं और उसका प्रेम चाहते हैं, पर जब यही प्रेम किसी मनुष्य से करते हैं तो उस पर अपना पूर्ण अधिकार चाहते हैं । बात अधिकार तक ही नहीं रहती कान्हा, इससे भी आगे तक जाती है, जहाँ है शंका, अविश्वास । ये दोनों ही बातें प्रेम को जड़ से चाट जातीं हैं । 'छाया मत छूना मन' की नायिका ने प्रेम में त्याग किया है । इसलिए तुम द्रवित हो । मीरा को कभी कृष्ण पर अविश्वास नहीं हुआ जबकि राधा को होता था । उसी प्रेम की रक्षा हेतु कृष्ण को स्वयं आ कर मीरा को ले जाना पड़ा । प्रेम चाहता है संपूर्ण समर्पण । समर्पण मन का, समर्पण आत्मा का । तन शाश्वत नहीं है । इसलिए तन का प्रेम भी शाश्वत नहीं है । जिस प्रेम में अविश्वास है, वह तन का प्रेम है, जिस प्रेम में शंका है वह अधिकार का प्रेम है ।"

बोलते-बोलते वे अचानक खामोश हो कर पता नहीं किस दुनिया में चली गईं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थीं। मेरे मन से बोझ उतर चुका था। मैं समझ गया था कि प्रेम तन का समर्पण नहीं, यह तो आत्मा का समर्पण है।

इधर चंद महीनों से वे मुझसे उन सभी विषयों पर बातें करने लगीं थीं जिनके नाम भी पहले कभी उनके होंठों पर नहीं आए। अपने बचपन की, माता-पिता, भाई-बहनों की, बच्चों की। बच्चे आज भी महानगर में सुखपूर्वक रह रहे हैं। वही सबसे नाता तोड़ कर चली आईं। उन्हें रिश्तों में छल से नफ़रत थी। घंटों इन सभी की बातें करतीं पर उनकी कभी नहीं करतीं, जो उनकी काली डायरी में सिमटा पड़ा था, जिसे अपनी आँखों से लगाकर अक्सर रात में रोती थीं। वह डायरी पहले गोदरेज के लॉकर में रहती थी, फिर टेबुल की दराज में आई, सिरहाने गद्दे के नीचे और बीमारी के दिनों में तकिये के पास।

एक माह पहले की ही तो बात है। मैं उनका सर दबा रहा था, उनके चेहरे की झुर्रियों में स्वयं को ढूँढ रहा था। बुखार साथ छोड़ने का नाम ही नहीं ले रहा था। उन्हें शायद आभास हो गया था अपनी मृत्यु का। उस दिन उन्होंने मेरा हाथ बहुत धीमे से पकड़कर रोक दिया था। सारा दर्द उनकी आँखों में सिमट आया था। अशक्त हाथों से, डायरी में से एक आइडेंटीटी कार्ड निकाल कर मुझे देते हुए उन्होंने कहा था— "इसमें जो नाम और पता है, उस पर तार कर देना, कान्हा ! जल्दी आने का। आने वाले को इस फोटो से पहचान लेना।" कार्ड में नीचे उनका पता था और ऊपर इन्हीं भद्र पुरुष का चित्र।

एक माह तक ! पूरे एक माह तक उनका सर मेरी गोद में था। मैं उन्हें एक मासूम बच्चे की तरह थपकाता रहा। उनकी आँखें जब भी खुलतीं, दरवाजे से घूम कर मेरी आँखों तक आती, मानों पूछ रहीं हों....तार किया था न ? उस सारी रात उन्हें बेचैनी अधिक रही, अब उनकी स्थिति असहनीय होती जा रही थी। शायद एक आस थी जिसके लिए वे जीवन और मृत्यु से जूझ रही थीं। मैं अपनी क्या कहूँ। बस प्रार्थना कर रहा था, उस अदृश्य शक्ति से कि उनके सारे दर्द, सारी पीड़ा मुझे दे दे। उनके लिए तो मैं मृत्यु का भी सहर्ष वरण करने को तैयार था।

अचानक उनमें हरकत हुई थी। दरवाजे पर लगी आँखें बंद हुईं। हाथ में आइडेंटीटी कार्ड को सर पर लगाया, आँखें खुलीं और दरवाजे पर अटक गईं, मेरी ओर लौट कर नहीं आईं, चेहरे पर एक चमक-सी आई। मैं उन्हें देखने में इतना तल्लीन हो गया कि दरवाजे की ओर मेरी नजर भी नहीं उठी। उनकी पलकें खुलीं थीं, आँखों की पुतलियों में एक आकृति दिखाई दी, मैंने आँखें उठाकर देखा.....अरे....यह तो वही चित्र वाले भद्र पुरुष थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

यही....यही तो उनकी आत्मा थे, उनकी साँस थे, उनकी आँखों की रोशनी थे, उनकी हँसी थे, उनके आँसू थे, उनकी लेखनी थे और थे उनकी लेखनी के दर्द। वह उन्हें अमर कर गई। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फर्ज

• निर्मला सिंह

काश ! कोई स्कूल ऐसा भी होता जहाँ जीवन में सब दुखों से मुक्ति पाने की कला ही सिखाई जाती । वैसे अगर हम सोचें तो सुखी जीवन पर लिखने के लिए होता ही क्या है ! लिखा तो केवल दुखों पर ही जाता है । हमारे समाज के कितने ही लोग इस बात को सही भी मानते हैं ।

सुबा अपने पिता की अकेली संतान थी । सो, उसका बचपन लाड़-प्यार में हँसते-खेलते बीता । स्कूल-कॉलेज की पढ़ाई अपनी बचपन की उन्हीं सखियों के साथ की जिनके साथ उसने क ख ग सीखा था ।

धीरे-धीरे सुबा की सब सखियों की एक के बाद दूसरी, फिर तीसरी की शादी होने लगी । लगभग सभी सखियों के विदा होने के बाद सुबा ने जीवन में भी एक जैसे सुखी जीवन की कामना की थी ।

एक दिन सुबा भी लाल जोड़ा पहन, डोली में बैठ, पिता के घर से विदा हो गई । ससुराल का घर उसके लिए नया जरूर था, मगर बेगाना नहीं । वहाँ उसका खूब मान-सम्मान हुआ । अपने पिता की पसंद का घर-वर पाकर वह अत्यधिक प्रसन्न थी । अपने पति का छोटा परिवार देखकर वह और भी प्रभावित हुई । घर में सास मूर्ति व ससुर गोपीचंद एवं देवर जयदीप, पति विजय सुबा को जोड़कर सिर्फ पाँच ही जीवों का बास था ।

सुबा को पति के रूप में विजय सचमुच ही पूर्ण पुरुष मिला । अपने नाम को उसने सच में ही साकार कर दिखाया था । अपने नगर में सबके दुख-सुख में शामिल होना और गरीबों की मदद करना वह अपना धर्म समझता था । पति के विचारों से वह सहमत थी । पति समाज के जिस काम को अपने हाथ में लेता, वह उनकी मदद के लिए आगे आ जाती । माँ मूर्ति व पिता गोपीचंद बहू-बेटे के प्यार व काम में आपसी तालमेल को देख उन्हें हृदय से आशीर्वाद देते थे । विजय, जयदीप व सुबा की मेहनत से गोपीचंद का घर दिन दुगनी, रात चौगुनी तरक्की कर रहा था । अब गोपीचंद का घर आपसी प्यार व तालमेल का मंदिर बन गया । पास-पड़ोस में इस घर की चर्चा भी होने लगी ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुबा सास-ससुर के प्यार को उपकार समझ उसका बदला उनकी सेवा व आदर से चुकाती। अदब से पहनी साड़ी का पल्लू वह कभी भी सिर से न गिरने देती। छोटे-से घूँघट से चमकती लाल बिंदी उस को दीये की लौ की भाँति उसे रास्ता दिखाती।

अब तक सुबा व विजय की शादी को दो साल हो चले थे। मगर अभी तक सुबा की गोद सूनी थी। जब भी वह पति से अपने बच्चे के विषय में बात करती तो उसका एक ही जवाब होता, "न तो तुम ही बच्चे के पालने के काबिल समझदार हो और न मैं ही। जब हमें समझ आएगी, तब प्रभु बच्चा भी खुद-ब-खुद दे देगा।" यह बात सुनकर सुबा को तसल्ली न हुई। उसने पति को किसी डॉक्टर से सलाह लेने शहर चलने को कहा। विजय ने सुबा की बात हँसी में उड़ा दी और रोजमर्रा की तरह अपने काम में व्यस्त हो गया।

एक दिन विजय जब काम से घर लौटा तो वह अपने आपको कुछ अस्वस्थ महसूस कर रहा था। माँ ने उन्हें घर की कुछ देशी दवाई दी। मगर कुछ फायदा न हुआ। पिता गोपीचंद शहर से डॉक्टर ले आए और बेटे का चेक-अॅप कर दवाई दिलवाई। कई दिनों तक दवाई खाई। मगर विजय की हालत दिन-पर-दिन बिगड़ रही थी। भाई जयदीप व पत्नी सुबा ने विजय की खूब सेवा की, कई डॉक्टर बदले। लेकिन मर्ज तो जैसे-जैसे इलाज हो रहा था, वह वैसे-वैसे ही बढ़ रहा था। माता-पिता की चिंता बढ़ रही थी। सुबा तो पति की सेवा में इस कदर बेहाल थी कि उसे अपना नहाना, खाना कुछ याद नहीं था। जब कभी विजय आँखें खोलता तो उसके चेहरे से उसकी नजर न हटती और अपने कमजोर काँपते हाथों से बिखरी बालों की लट सँवारता। विजय के हाथों का स्पर्श पा वह दिन भर की थकान व चिंता से मुक्त हो, दो घड़ी आराम की नींद सो जाती। कुछ हफ्तों की बीमारी ने विजय को मृत्यु तक पहुँचा दिया। विजय की असमय की मृत्यु ने घर व बाहर सभी को आश्चर्य में डाल, अत्यधिक दुख में पहुँचा दिया। उसके माँ-बाप व भाई तो दहाड़ें मार-मारकर रो रहे थे। लेकिन सुबा तो उसके सिरहाने बैठी जैसे उसकी नींद खुलने का इंतजार कर रही थी। उसका दिमाग ठहर-सा गया। वह रो ही नहीं पा रही थी। घर भीड़ से भर गया। लोगों को जितना विजय की मृत्यु पर अफसोस था, उससे ज्यादा बहू सुबा के न रोने पर आश्चर्य भी था। तभी भीड़ में से किसी ने कहा, "बहू के मायके से किसी नजदीकी रिश्तेदार को बुलाओ जो कि सुबा से विजय की बीमारी व स्वभाव पर बतियाये, ताकि बहू रो-धो कर अपने मन की वेदना प्रकट कर सके। वरना यह चुप्पी बहू की जीवन-यात्रा में और भी कष्ट पैदा कर देगी।" गोपीचंद ने तो पुत्र के प्राण छूटते ही समधी के घर संदेशा भिजवा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया था। विजय के माँ-बाप व भाई विजय के जीवन की यादों में खोकर कभी रो देते तो कभी चुप हो उसी के बारे में सोचने लगते।

सुबा के मायके-परिवार के पहुँचते ही एक बार फिर से घर में हा हाकार मच गया। सुबा ने अपनी माँ व चाची को रोते देख पूछा—"माँ, रोती क्यों हो? विजय ने अभी-अभी दवाई पी है। वह सो रहा है। शोर न करो।" माँ ने उसके ऊपर अपने दोनों हाथों की दुत्कार मारी और बोली, "पगली! तेरा तो घर उजड़ गया। करमजली! हमीं से पूछ रही है कि रोती क्यों हो?"

लेकिन इसमें बेचारी सुबा का क्या कसूर? ऐसे हादसों में अक्सर दिमाग ठहर जाता है। सुबा की आँखें खुली थीं, मगर उसका दिमाग सो गया था। वह कुछ भी सोचने-समझने की स्थिति में नहीं रही। उसकी सास मूर्ति बहू की गहरी चोट से वाकिफ थी। सो रोते-रोते भी उसकी तारीफ के शब्द उसके मुँह से फिसल रहे थे "सुबा रोज ही मेरी गोदी में सिर रखकर पूछती थी कि माँ, विजय कब तक ठीक हो जाएगा? वह कौन-सा दिन होगा, जब मैं और विजय घर और बाहर के काम मिलकर करेंगे?"

सुबा ने अपने सास-ससुर के दिल व दिमाग में कितनी गहरी पैठ बना रखी है! अपने मृदुल स्वभाव से मात्र दो-तीन वर्ष में घर के सभी लोगों पर उसने जीत पा ली थी।

दुःखद घटना का दुःखद अंत हो गया। सब मिलने वाले एक-एक करके अपने घर लौटने लगे। सुबा का मायका-परिवार भी अपने घर लौटने की तैयारी करने लगा। तभी उस की सासु माँ ने सुबा की माँ से बहू को अपने साथ ले जाने की बात कही। सुबा की माँ मन-ही-मन घबराई और सोचने लगी कि क्या मेरी बेटी एक ही दिन में इन्हें भारी लगने लगी! तभी सास मूर्ति ने सुबा की माँ को समझाते हुए कहा—"समधिन जी! सुबा मेरे घर की लक्ष्मी है। मैं नहीं चाहती कि कोई मेरी बहू को मनहूस या अन्य किसी नाम से पुकारे। आप तो जानती ही होंगी कि औरत जात के लिए यह घड़ी कितनी कष्टदायी होती है। मैं इस हायतौबा की घड़ी में सुबा का ख्याल न रख सकूँगी। और जब विजय की तेरहवीं पर आप आएंगी तो मेरी अमानत सुबा को लेती आना।" सास-बहू का प्यार देख सुबा की माँ के नयन एक बार फिर छलक आए।

सुबा मायके में आकर चुपचाप बैठी रहती। जैसे उसे कहा जाता, वैसे ही करती। फिर चुप हो बैठ जाती। आँखें जैसे पत्थर की हो गईं। कोई आँसू ही नहीं गिरता। कई दिन इसी तरह बीत गए। मायका-परिवार आश्चर्य में पड़ गया कि क्या करें, ऐसी अवस्था के लिए कोई दवाई भी तो नहीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस दिन घर के सामने से बरात निकल रही थी। सुबा के छोटे बहन-भाई सब दरवाजे की तरफ लपके। सुबा की चाची भी बच्चों के पीछे-पीछे दौड़ी। चाची बरात की रौनक देख वापस आ सुबा का हाथ पकड़ उसे छज्जे पर ले गई, जहाँ से सजी बरात का नजारा स्पष्ट दिख रहा था। नाचते-गाते बराती, रंग-बिरंगी रोशनी से जगमगाते झाड़-फानूस, बीच-बीच में छूटती आतिशबाजी से गली का दृश्य अत्यधिक मनमोहक लग रहा था। यह सब सुबा भी अपनी ठहरी हुई नजरों से देख रही थी।

देखते-देखते दूल्हे की घोड़ी का पैर किसी गड्ढे में आ गया और रेशमी दुशाले पर बैठा दुल्हा फिसल कर घोड़ी से नीचे गिर गया। दूल्हे को गिरता देख सब बच्चे ताली बजा कर हँसने लगे। बच्चों के साथ सुबा भी ठहाका मार कर जोरों से हँस दी। और काफी देर तक वह हँसती ही रही। तभी तुरंत ही गंभीर होकर वह बोली—"माँ, मैं यहाँ कैसे पहुँची ? मुझे तो विजय के पास होना चाहिए था। वह तो बीमार है। माँ, जल्दी से मेरे जाने का प्रबंध करो।"

माँ व चाची ने सुबा को सारी घटना सुनाई। लेकिन सुबा को विजय के न रहने पर यकीन ही नहीं हो रहा था। वह आश्चर्यचकित हो बोली, "ऐसी कैसी नींद मुझे आ गई जो विजय जैसे पति के देहांत पर न टूटी ?"

मासूम सुबा ने पूरी रात खूब दहाड़ें मारीं और वह तब तक रोई, जब तक कि उसका गला बैठ न गया। और जब तक उसकी आँखों के आँसू न खत्म हो गए। उसके विलाप ने पूरे मुहल्ले को पूरे परिवार को पूरी रात रह-रह कर रुलाया।

विजय की तेरहवीं के दिन परिवार के बड़े-बूढ़े सुबा को ले कर गोपीचंद के घर अफसोस के लिए पहुँचे। वहाँ गोपीचंद के अन्य रिश्तेदार भी मौजूद थे। कुछ देर बैठने के बाद सुबा के माता-पिता एवं परिवार के अन्य लोगों ने अपने नगर वापसी की आज्ञा माँगी। गोपीचन्द ने हाथ जोड़कर कहा—"समधी साहब, बैठिए ! अभी आप से जरूरी विषय पर बात करनी बाकी है।" यह सुन सुबा का परिवार सकते में आ गया। सुबा के पिता ने हाथ जोड़कर कहा—"कहिए साहब !"

गोपीचंद ने अपने सभी रिश्तेदारों को गवाह बना कर कहा, "हम सब जयदीप से सुबा बेटी का पुन: विवाह करना चाहते हैं। कृपया नि:संकोच अपनी राय हमें बताएं।"

सुबा के पिता की आवाज काँपने लगी और आँखें भर आईं। अभी उनके हाथ जुड़ भी नहीं पाए थे कि गोपीचंद ने समधी को कसके गले लगा लिया। सुबा की माँ एवं परिवार के सभी लोगों ने मिलकर गोपीचंद व उनके सब रिश्तेदारों को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुबा को पुन: अपनाने पर तहेदिल से उनको धन्यवाद दिया और कहा— "आपने हम लोगों की बहुत बड़ी समस्या को मिटा दिया।"

कुछ ही महीनों के भीतर गोपीचंद ने जयदीप का विवाह सुबा के साथ संपन्न करा कर सुबा की डोली एक बार फिर से गोपीचंद के आँगन में उतारी। सासु माँ मूर्ति ने चाँदी की थाली में दीपक जलाकर सुबा बहू की आरती उतारी और सम्मानपूर्वक घर के खजाने की चाबी उसे सौंप कर एक बार फिर घर के झमेले से आजाद हो गई।

विजय की आत्मा ने दूसरा जन्म ले लिया था। वह अपनी नई माँ के सौहार्द के तले पलने लगा। उसकी माँ एक नागिन थी जो अपने संपोले को बड़ी लगन से पाल कर बड़ा कर रही थी। संपोला एक साल का होते-होते पूरा नाग ही बन गया। वयस्क होने पर नाग को अपनी पूर्व पत्नी सुबा की याद सताने लगी। एक दिन वह माँ नागिन की बांबी छोड़ सुबा की खोज में निकल पड़ा। घर ढूँढ कर नाग अदृश्य हो, सुबा के आसपास रहने लगा। लेकिन जयदीप व सुबा का पति-पत्नी का रिश्ता नाग को नहीं भाया। पति-पत्नी जब कभी भी भावनात्मक रूप में साथ होते तो नाग फन उठाकर दोनों के बीच प्रकट हो जाता। नाग से भयभीत दंपति फिर साथ-साथ बैठने तक की भी हिम्मत न जुटा पाते। इसी तरह महीनों बीत गए। लेकिन वे दोनों यह तो समझ ही गए थे कि इस नाग के अंदर विजय की आत्मा का वास है जो पूर्वजन्म का रिश्ता अब भी याद रखे हुए है। अब सासु माँ भी सुबा से बच्चे की उम्मीद लगा बैठी। जब-तब वह सुबा से एक नन्हें शिशु के आगमन पर बात करती। वह कहती, "जब तक इस घर में बच्चा पैदा नहीं होगा, तब तक मेरी आत्मा विजय को नहीं भूलेगी।"

सुबा ने पति जयदीप को अपने मातृत्व-भाव का आभास कराया और एक बार फिर उसी डरावनी रात का सामना करने के लिए पति से अनुरोध किया और विश्वास दिलाया कि आज अगर नाग फिर हमारे बीच आएगा तो आज या तो नाग मरेगा या फिर सुबा मरेगी। इसके लिए हमें एक-न-एक दिन तैयार होना ही होगा, वरना हमारा जीवन व्यर्थ ही बीतता जा रहा है। क्या एक बच्चे के लिए हम जीवन भर यूँ ही तड़प-तड़प कर रह जाएंगे?

'मैं आज नागराज से पूछूँगी, अगर पत्नी-प्रेम इतना ही घनिष्ठ व अटूट होता है तो क्यों नहीं प्राणों को पकड़ कर बैठे? क्यों नहीं मेरी गोद में एक नन्हा शिशु डाल गए? क्यों मुझे हर सुख से वंचित छोड़ गए और अब मेरे फर्ज से मुझे फिर दूर कर रहे हो? मैं इस परिवार की पुत्रवधू हूँ। इसका वंश चलाना मेरा पहला फर्ज है।' सुबा ने नाग पर प्रश्नों की झड़ी लगाने का निश्चय कर लिया।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

फिर वही समय, उसी स्थिति में नाग फिर दोनों के बीच प्रकट हो गया। सुबा ने नाग को पकड़ दूर फेंक दिया और जयदीप के आलिंगन में बँध गई। नागराज पूरे जोश में फन उठाकर फिर उन दोनों के बीच आया और उसने जयदीप (भाई) को अपने में कसके जकड़ लिया। पति का दम घुटता देख सुबा ने नाग को अपनी पूरी ताकत से पकड़ कर कहा—"अगर डंसना ही है तो मुझे डंस ! मेरे पति को मार कर तुझे क्या मिलेगा ? क्या एक बार फिर से विधवा बना कर मुझे समाज में कलंकित करोगे ? एक औरत पर तुम्हें तरस भी नही आती ! मुझे डंस कर इस दुनिया से मुक्ति दिला या फिर मुझे समाज में मान-सम्मान से जीने दो।"

सुबा की मुट्ठी ढीली हो गई। जयदीप भी नाग की जकड़न से मुक्त हो गया। पति व पत्नी के देखते-देखते नागराज जाने कहाँ गायब हो गया। फिर कभी भी नाग ने उन दोनों के संबंध में बाधा न डाली। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

प्रतीक्षा

● डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी

ट्रेन अब तक नहीं आई थी, यह जान कर गोपाल बाबू की घबराहट कुछ कम हो गई। मालूम हुआ कि ट्रेन आधा घंटा लेट है। आरक्षण-सूची देखने पर पता चला कि उन्हें कूपे में जगह मिली है। कूपे में केवल दो ही व्यक्तियों के लिए स्थान होता है। उनके मन में यह बात उठी कि यह भी देख लिया जाए कि उनका सहयात्री कौन है। सूची देखने पर जानकारी मिली कि उनके साथ किसी मिस कामना को भी यात्रा करनी है। यह नाम पढ़ते ही गोपाल बाबू के शरीर में बिजली की एक धारा-सी दौड़ गई। उन्होंने अपने साथ आए कुमुद को देखकर यह ताड़ना चाहा कि उसने इस बात पर ध्यान दिया है या नहीं। कुमुद उनका भतीजा है। वह आरक्षण-सूची को ही देख रहा था। उसने कहा—"चाचाजी, आपको सी में लोअर बर्थ मिली है।" कुमुद के मुँ ह से यह सुन कर गोपाल बाबू को कुछ अच्छा नहीं लगा। अब उनके भीतर एक हलचल-सी मच गई। यह अच्छा नहीं हुआ कि कुमुद को भी यह मालूम हो गया है कि उनके कूपे में किसी लड़की को जगह मिली है। पता नहीं, अपने मन में वह क्या-क्या सोच बैठे! हो सकता है कि यह घर पहुँच कर इस बात की चर्चा सबसे कर बैठे और पुनः मिलने पर लोग गोपाल बाबू का मजाक उड़ाना शुरू कर दें। यह कुछ ठीक नहीं हुआ कि उन्हें कूपे में जगह मिल गई। साठ साल की उम्र में कूपे में बंद होकर किसी युवती के साथ यात्रा करना क्या उन्हें शोभा देगा?

"चाचाजी, मैं जाऊँ? ट्रेन आने में अभी पच्चीस मिनट की देर है। मुझे क्लास तक पहुँचने में देर हो जाएगी।" कुमुद ने पूछा।

"हाँ बेटा, जाओ।" गोपाल बाबू ने कहा।

कुमुद ने झुककर अपने चाचाजी के पैर छूने का स्वांग किया। गोपाल बाबू ने उसे उठाकर अपने सीने से लगा लिया और कहा, "ठीक है, अब तुम जाओ। माया दीदी के ब्याह में जरूर आना।"

कुमुद की ओर गोपाल बाबू ने दस रुपये का एक नोट बढ़ा दिया। नोट को जेब के हवाले करते हुए कुमुद ने उत्तर दिया, "जरूर आऊँगा, चाचाजी।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुमुद के चले जाने से गोपाल बाबू को राहत मिली। यह अच्छा ही हुआ कि कुमुद चला गया। यदि उसके रहते ही ट्रेन आ जाती तो वह उन्हें कूपे तक छोड़ने जरूर जाता और वहाँ वह कूपे में मिस कामना को देखता तो पता नहीं, उसके मन में कैसे-कैसे बेतुके सवाल उठने लगते ! यह भी एक विचित्र संयोग है कि कूपे में उन्हें इस बार जगह भी मिली तो किसी कुमारी के साथ। अब इसमें परिवर्तन भी संभव नहीं। बहुत मुश्किल से यह जगह मिल सकी है—वह भी वी.आई.पी. कोटा से। आजकल प्रथम श्रेणी में अचानक जगह मिलती ही कहाँ है !

गोपाल बाबू अपनी अटैची लेकर जरा एक किनारे खड़े हो गए। वे आरक्षण-सूची देखने वालों को ध्यान से निहारने लग गए। यहाँ खड़ा रहते हुए उन्हें यह जरूर पता चल जाएगा कि मिस कामना कौन हैं। वह अपना नाम देखने के लिए यहाँ जरूर आएंगी। सूची देखनेवाले आ-जा रहे थे। एक युवती भी आई। लगभग पच्चीस-छब्बीस की रही होगी। उसके आते ही आसपास सेन्ट की खुशबू फैल गई। वह प्रथम श्रेणी की सूची देखने लग गई। गोपाल बाबू के भीतर एक सुरसुरी-सी शुरू हो गई। वे सोचने लगे—लगता है कि यही है मिस कामना। कितनी सुंदर हैं। रंग तो साँवला ही है, पर कद-काठी, नाक-नक्श, आँख-कान, पहरावा सब कुछ कितना मोहक है। निश्चित रूप से इस युवती को ही मिस कामना होना चाहिए। जैसा नाम, वैसा ही रूप दिया है विधाता ने इसे।

लेकिन।

गोपाल बाबू के भीतर एक 'लेकिन' कहीं से आकर अटक गया। इस लेकिन ने उन्हें मथना शुरू कर दिया। वे फिर सोच में पड़ गए। यदि वास्तव में यही हैं मिस कामना तो वे यह यात्रा इसके साथ कैसे कूपे में गुजार पाएंगे ? आज की रात ट्रेन में ही गुजरेगी। लगभग अठारह घंटों की इस यात्रा को किसी अनजान युवती के साथ बिताना उनके लिए पहाड़ बन जाएगा। उन्हें बहुत सावधान रहना होगा। दिन तो किसी प्रकार कट ही जाएगा, पर रात कैसे कटेगी ? दिन को तो कूपे का दरवाजा खुला भी रखा जा सकता है, लेकिन रात को दरवाजा बंद करना ही पड़ेगा। सुरक्षा की दृष्टि से ऐसा करना बहुत जरूरी है। परंतु सवाल यह है कि दरवाजा कौन बंद करेगा ? वे तो अपने हाथ से दरवाजा नहीं ही बंद करेंगे। ऐसा करने पर यदि मिस कामना आपत्ति कर बैठी तो ? उन्हें बहुत बुरा लगेगा। ठीक है, उन्हें दरवाजा बंद करने में पहल नहीं ही करनी चाहिए। मिस कामना अगर दरवाजा बंद कर दे तो ठीक रहेगा, लेकिन यदि मिस कामना दरवाजा बंद करने को आगे बढ़ेंगी तो उन्हें कैसा लगेगा ? क्या गोपाल बाबू को यह अच्छा लगेगा ?

गोपाल बाबू असहज हो उठेंगे उस हालत में और लगेगा कि उन्हें कोई बलात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

काजल की कोठरी में ढकेल रहा है। नहीं, वे मिस कामना को कूपे का दरवाजा कभी नहीं बंद करने देंगे। वे साफ-साफ बोल देंगे मिस कामना से कि रात को भी कूपे का दरवाजा खुला छोड़ दिया जाए। परंतु उनकी अटैची में माया बिटिया के लिए जो कीमती कपड़े और गहने हैं, सो। नहीं, नहीं, रात में कूपे का दरवाजा खुला नहीं छोड़ा जा सकता है। इस अटैची में लगभग डेढ़ लाख रुपये का सामान है।

अचानक गोपाल बाबू के सामने एक भिखारी आकर खड़ा हो गया। उसकी नाक कटी हुई थी। देखने में वह बड़ा घिनौना लग रहा था। गोपाल बाबू ने चुपचाप जेब से एक चवन्नी निकाल कर भिखारी की तरफ फेंक दी। उनसे भिखारी की तरफ देखा भी नहीं जा रहा था।

गोपाल बाबू ने मुड़कर देखा। इस बीच युवती जा चुकी थी। मगर सेन्ट की सुगंध अब भी हवा में तैर रही थी।

अब गोपाल बाबू नाक के बारे में सोचने लग गए। यह नाक भी कमाल की चीज है ! इस भिखारी की नाक कटी हुई है तो यह कितना भद्दा लग रहा है ! शायद इसीलिए 'नाक कटना' या 'नाक काटना' मुहावरा चलता है। उन्होंने अपनी नाक छूकर देखी। उन्हें अपनी नाक यथास्थान मौजूद मिली तो उन्हें बड़ा संतोष मिला। इसी बीच गोपाल बाबू के मन में एक विचित्र बात उठ खड़ी हुई। उन्हें यह लगा कि रेल विभाग आज उनकी नाक कटवाने पर तुल गया है। यदि ऐसी बात नहीं होती तो क्यों उनके कूपे में मिस कामना को जगह दे दी गई ? उनके लिए तो यह सफर तलवार की धार पर चलने के समान हो गया है। अगर जरा सी भी उनसे कोई चूक हो गई तो उनकी नाक इस बुढ़ापे में अवश्य कट कर रहेगी।

अब गोपाल बाबू पच्चीस-तीस साल पीछे पहुँच गए और अपने बीते हुए दिनों को याद करने लग गए। उन दिनों वे कितने मनमोहक लगते थे ! तब आँखों पर चश्मा भी नहीं चढ़ा था और उनके सिर के बाल बिलकुल काले थे। उनका रूप-रंग देख कर दोस्त अक्सर कहा करते थे— "गोपाल भाई, आपको तो फिल्मों में हीरो होना चाहिए था। आप कहाँ आकर फँस गए इस नौकरी में !" उन दिनों भी गोपाल बाबू सरकारी काम से प्रथम श्रेणी में यात्रा किया करते थे, किंतु उन्हें कभी भी कूपे में जगह नहीं मिली थी। आज उन्हें पहली बार कूपे में जगह मिली है तब, जब उनकी उम्र साठ से ऊपर हो गई है और उनके कूपे में मिस कामना नामक एक युवती को सहयात्री बना दिया गया है। काश ! यह अवसर उन्हें उन दिनों मिला होता जब वे जवान थे तो कितना सुहाना होता वह सफर !

अचानक स्टेशन का लाउड स्पीकर कुछ बोलने लग गया। प्लैटफार्म में अक्सर इतना हल्ला-गुल्ला होता है कि लाउड स्पीकर की कोई भी बात ठीक से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुनाई ही नहीं पड़ती है । शायद स्टेशन के लाउड स्पीकर भी कुछ विशेष ढंग के ही बने होते हैं, जिनसे निकली आवाज प्रायः अस्पष्ट और फटी-फटी सी प्रतीत होती है ।

प्लैटफार्म पर अचानक आई हलचल से यह स्पष्ट हो गया कि ट्रेन आ रही है । लोग इधर-उधर भागदौड़ करने लग गये । पर गोपाल बाबू अपनी जगह पर पूर्ववत् खड़े रहे । उन्होंने सोचा कि उनके पास तो प्रथम श्रेणी का टिकट है, वह क्यों भीड़ में घुस कर धक्के खाएं ! यहाँ ट्रेन पंद्रह मिनट रुकती है । जल्दी क्या है । वह आराम से ट्रेन पर सवार हो लेंगे ।

गोपाल बाबू अपने कूपे में आ गए । कूपे में घुसते ही उन्हें लगा कि ट्रेन एक छोटी कोठरी होती है । उन्हें बड़ा अच्छा लगा । ऊपर की बर्थ अभी खाली ही पड़ी थी । मिस कामना अब तक नहीं आई थीं । अब गोपाल बाबू बड़ी व्यग्रता के साथ मिस कामना की प्रतीक्षा करने लग गए । किसी के भी आने-जाने से जो पग-ध्वनि सुनाई पड़ती तो उन्हें यही लगता कि मिस कामना ही आ रही हैं ।

गोपाल बाबू ने अपनी घड़ी देखी । इसी समय गार्ड की सीटी सुनाई पड़ी । इंजन का हॉर्न बजा और ट्रेन आगे की ओर सरकने लग गई । गोपाल बाबू बेचैन होकर इधर-उधर ताकने लग गए, जैसे उनका अपना ही कोई ट्रेन पर सवार होने से रह गया हो ।

ट्रेन बढ़ती ही जा रही थी । गोपाल बाबू के कूपे में किसी का भी आगमन नहीं हुआ । अब उन पर एक नई चिंता सवार हो गई । क्या मिस कामना समय पर स्टेशन नहीं पहुँच सकीं ? क्या मिस कामना ने अपनी यात्रा स्थगित कर दी ? नहीं, ऐसी कोई बात नहीं हो सकती । यह कूपे वी.आई.पी. कोटा का है । इसमें आज ही तो उसे जगह मिली होगी, फिर आज ही यात्रा स्थगित करने का क्या औचित्य हो सकता है ? अचानक गोपाल बाबू के दिमाग में एक बात आई और उनके चेहरे पर हरियाली छा गई । उन्होंने सोचा—"हो सकता है कि मिस कामना अगले स्टेशन पर सवार हों । केवल बीस मिनट ही तो लगते हैं अगला स्टेशन पहुँचने में ।"

गोपाल बाबू ने एक बार ऊपर की शायिका की तरफ देखा और फिर कुछ सोचने लग गए । ऊपर चढ़ने-उतरने में युवती को तकलीफ हो सकती है । उन्हें भी ऊपर चढ़ने-उतरने में कष्ट होता है । फिर भी यदि मिस कामना ने एक बार भी कहा तो वह अपनी निचली शायिका छोड़ देंगे । किसी महिला या युवती के लिए इतना तो किया ही जा सकता है । प्रत्येक मर्द को इतना तो करना ही चाहिए ।

इस कूपे में केवल दो ही यात्री होंगे— गोपाल बाबू और मिस कामना । दोनों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आखिर चुप-चुप कब तक बैठे रह सकेंगे ? किसी-न-किसी को तो बातचीत शुरू करनी ही पड़ेगी । यदि उन्हें ही बातचीत शुरू करने के लिए पहल करनी पड़ी तो वह किस विषय पर बात करेंगे ? क्या फिल्म पर ? नहीं, मिस कामना पर इसका प्रतिकूल प्रभाव भी पड़ सकता है । वह गोपाल बाबू के बारे में गलत धारणा भी बना सकती है । फिर किस विषय पर बातचीत शुरू करेंगे वह ?

बातचीत शुरू करने के लिए चाय की सहायता ली जा सकती है । यों भी गोपाल बाबू को चाय पीने की आदत है—चाय चाहे जैसी भी हो । यात्रा में तो वे हर स्टेशन पर चाय लेकर पीते हैं । हाँ, ठीक है, स्टेशन के आते ही वह मिस कामना से चाय के लिए पूछेंगे और इसी बहाने बातचीत का सिलसिला प्रारंभ हो जाएगा । आजकल सभी तो चाय पीते हैं । मिस कामना भी चाय पीती ही होंगी । इतना तो वह भी समझती होगी कि अपने सहयात्री से बातचीत किए बगैर रास्ता काटना बहुत मुश्किल होता है, मगर ऐसा भी तो हो सकता है कि मिस कामना बड़ी नकचढ़ी हो । न तो वह किसी से बातचीत करना पसंद करती हो और न किसी से कोई संपर्क रखना । हो सकता है, वह काफी संकोची स्वभाव की हो । मिस कामना और संकोची ! ऐसा तो हो ही नहीं सकता । यदि वह संकोची होती तो कूपे में बर्थ लेने से वह साफ इंकार कर जाती । वह संकोची कभी नहीं हो सकती । वह साहसी लगती हैं । यह अच्छा ही हुआ कि उसे इस कूपे में जगह मिल गई । यदि इस कूपे में किसी पुरुष को जगह मिलती तो उसके भरोसे अटैची छोड़ कर कहीं जाने में गोपाल बाबू को बराबर आशंका सताती ही रहती ।

गोपाल बाबू ने घड़ी पर नजर डाली । स्टेशन आने में अभी भी दस मिनट की देर थी। वह स्वयं से पूछने लगे— "मैं मिस कामना के प्रति क्यों इतना संवेदनशील हो उठा हूँ ? मैंने तो मिस कामना को आज के पहले कभी देखा भी नहीं है । देखा तो अभी भी नहीं है । वह कौन हैं ? वह कैसी हैं ? उसकी उम्र कितनी है ? उसके बारे में मैं कुछ भी तो नहीं जानता । मिस कामना मेरे लिए तो अभी भी केवल एक नाम है । इस नाम ने क्यों मुझे इतना विचलित कर दिया है ? क्यों मैं बेसब्री से मिस कामना के आगमन की प्रतीक्षा कर रहा हूँ ?"

अकस्मात् गोपाल बाबू को एक पढ़ी हुई कहानी याद आ गई । कहानी की याद आते ही वे अनायास ही भीतर से एक बार काँप उठे । उस कहानी में सेना का एक अधिकारी इसी प्रकार एक कूपे में यात्रा कर रहा था। कूपे में एक अनजान युवती भी यात्रा कर रही थी। एक स्टेशन आने वाला था। युवती सेना के अधिकारी के सामने आकर अचानक खड़ी हो गई । उसने सेना के अधिकारी से एक भारी रकम की माँग की । उसने यह धमकी भी दी कि यदि उसे रुपये नहीं दिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गए तो वह चीख-चिल्ला कर लोगों को जमा कर लेगी और कहेगी कि सेना के इस अधिकारी ने उसके साथ बलात्कार किया है । रुपये नहीं मिलने पर वह सचमुच चीखने-चिल्लाने लगी । उसने खुद अपने ब्लाउज को फाड़ दिया और साड़ी को जहाँ-तहाँ चीर दिया ताकि लगे कि उसके साथ जबर्दस्ती की गई है । बगल के यात्री कूपे के सामने जमा हो गए । इसी बीच स्टेशन भी आ गया । मामला पुलिस तक पहुँचा । पुलिस ने युवती को पहले नीचे उतार लिया । अब सेना के अधिकारी को नीचे उतरने को कहा गया । वह दरवाजे तक आकर रुक गया । उसने एक व्यक्ति से कहा— "कृपया मेरा ओवर कोट उतार दीजिए ताकि मैं नीचे उतरने की कोशिश कर सकूँ ।" उस अधिकारी का ओवरकोट उतार दिया गया । लोग यह देखकर स्तब्ध रह गए कि उस अधिकारी के दोनों हाथ कटे हुए थे । लोगों के सामने यह स्पष्ट हो गया कि सेना का वह अधिकारी निर्दोष था । पूछताछ करने पर पता चला कि वह युवती इसी प्रकार यात्रियों को लूटने का काम करती थी ।

गोपाल बाबू अब चिंता में पड़ गए । कहीं यह मिस कामना इसी प्रकार की कोई युवती तो नहीं ? हो सकता है कोई व्यक्ति बाजार से ही बराबर उनका पीछा करता रहा हो । उसने यह जान लिया हो कि इस अटैची में सोने के गहने और कीमती बनारसी साड़ियाँ हैं । संभव है उसी ने मिस कामना को इस कूपे में भेजा हो ताकि....

यह सोचते ही गोपाल बाबू एक बार नीचे से ऊपर तक काँप उठे । उनका शरीर पसीने से तर हो गया । उन्होंने हथेली से अपने ललाट को छुआ तो हथेली पूरी तरह गीली हो गई । वे घबराहट में बुदबुदा उठे— "नहीं, मैं इस कूपे में अब यात्रा नहीं कर सकता ।" इतना बोल कर वे गलियारे में आ गए । वे कंडक्टर को खोजने लग गए । कंडक्टर अपनी जगह पर नहीं था । वह कहीं दिखाई नहीं पड़ा । ट्रेन की गति धीमी होने लग गई । कुछ ही मिनटों के बाद गाड़ी स्टेशन पर आ पहुँची ।

गोपाल बाबू अपने कूपे में आ गए । स्टेशन पर जब गाड़ी खड़ी हो जाती है, तब वे सामान छोड़कर कहीं जाते नहीं । यह उनकी पुरानी आदत है ।

गोपाल बाबू के भीतर अभी भी चिंतन चल रहा था । उन्होंने मन-ही-मन यह तय कर लिया कि अब वे भविष्य में कभी भी प्रथम श्रेणी में यात्रा नहीं करेंगे । वे तो द्वितीय श्रेणी का ही टिकट ले रहे थे । परंतु छोटे भाई ने कहा— "भैया, आपके पास कीमती सामान हैं । द्वितीय श्रेणी में जाना ठीक नहीं है ।" उसी ने जगह का भी प्रबंध कर दिया । यहाँ के सांसद से उसकी अच्छी पटती है, इसलिए वी.आई.पी. कोटा से कूपे में बर्थ मिल भी गई ।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गोपाल बाबू का भयभीत मन उन्हें और कमजोर बनाने लगा । उसने उनसे कहा— "जब से तुम इस कूपे में आए हो, अकेले हो । मान लो चलती ट्रेन में कोई डाकू तुम्हारे इस कूपे में घुस आए और दरवाजा बंद कर तुम्हारा गला दबा दे तो ? वह तो तुम्हें मार कर तुम्हारी अटैची मजे में ले जाएगा । तुम चीख भी नहीं पाओगे । अगर चिल्लाओगे भी तो तुम्हारी आवाज ट्रेन की घड़घड़ाहट में दब जाएगी ।"

गोपाल बाबू अपनी जगह से उठ कर बेचैनी के साथ कूपे में इधर-उधर होने लगे । पता नहीं, उनके मन में क्या आया कि उन्होंने कूपे का दरवाजा भीतर से बंद कर लिया । अब वे धीरे-धीरे बोलने लगे—"मैं कहाँ आकर फँस गया ! इससे तो अच्छा था कि मुझे बगल के कंपार्टमेंट में जगह मिल जाती । वहाँ कम-से-कम चार आदमी तो हैं न । यहाँ तो मैं बात तक करने को तरस गया हूँ । सबसे अच्छी यात्रा द्वितीय श्रेणी की होती है । वहाँ तरह-तरह के लोग मिलते हैं—जवान, बूढ़े, बच्चे, अमीर, गरीब, औरत, मर्द सभी तरह के लोग होते हैं वहाँ । वहाँ तरह-तरह की बातचीत सुनने को मिलती है । लोग आपस में तकरार भी करते हैं, लड़ते भी हैं और फिर मिल कर आपस में एक-दूसरे का दिया खाना भी खाते हैं । उतनी अच्छी जगह छोड़कर मैं कहाँ आ गया इस काल कोठरी में !"

सामने से एक चाय वाला जा रहा था । उसे रोक कर गोपाल बाबू ने एक चाय ले ली । अब वह चाय सुड़कने लगे । उनके जेहन में मिस कामना फिर नाचने लगी । उन्हें आरक्षण-सूची जरा ठीक से देख लेना चाहिए था । यदि उन्होंने इस बात पर ध्यान दिया होता तो उन्हें उसी समय यह मालूम हो गया होता कि मिस कामना की उम्र कितनी है और वह किस स्टेशन से ट्रेन पर सवार होने वाली हैं ।

खिड़की के सामने आकर एक जवान खड़ा हो गया । बड़ी-बड़ी डरावनी आँखें । कड़ियल मूँछें । देखने में ही वह भयंकर लग रहा था । उसने एक बार कूपे के भीतर फर्श की ओर देखा । जब उसे वहाँ कुछ दिखाई नहीं पड़ा तो उसने ऊपरी शायिका की तरफ देखा । अटैची देखते ही उसने अपना माथा जरा हिला दिया । गोपाल बाबू यह सब देख कर काठ होते जा रहे थे । उन्हें पूरा-पूरा यह विश्वास हो गया कि अब वह अपने घर नहीं पहुँच पाएंगे ।

इसी समय गार्ड की सीटी सुनाई पड़ी । इसके बाद इंजन की गुर्रुहट भी सुनायी पड़ी और इसके साथ ही ट्रेन रेंगने लगी । गोपाल बाबू ने झाँक कर देखा, वह डरावना जवान अभी भी प्लैटफार्म पर ही खड़ा था । उसे खड़ा देखकर गोपाल बाबू को लगा कि अब खतरा टल गया है ।

गोपाल बाबू ने तय कर लिया कि अब वह इस कूपे में नहीं रहेंगे । वे कंडक्टर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

से मिलने के लिए उठे। वे कूपे से निकल ही रहे थे कि कंडक्टर स्वयं उनके कूपे के सामने नजर आ गया। उसने गोपाल बाबू को देखते ही कहा— "सर, क्या आप इस बर्थ को छोड़ कर अपर बर्थ पर जाना चाहेंगे? यहाँ मैं मिस कामना को ऐडजस्ट करना चाहता हूँ।"

मिस कामना का नाम सुनते ही गोपाल बाबू अचानक खिल उठे। वे पिछली सभी बातों को भूल-से गए। उन्हें देख कर कोई यह अनुमान भी नहीं लगा पाता कि गोपाल बाबू कुछ देर पहले किस कदर परेशान थे! उन्होंने हँसते हुए कंडक्टर को जवाब दिया— "इसमें पूछने की क्या बात है? लोअर बर्थ तो महिलाओं को मिलनी ही चाहिए। कहाँ हैं मिस कामना?"

"मिस कामना दरवाजे के पास खड़ी हैं। मैं उन्हें बुला लेता हूँ।" यह बोल कर कंडक्टर ने अपनी गर्दन कूपे के बाहर निकाली। मिस कामना स्वयं कूपे की ओर चली आ रही थीं।

"आइए मिस कामना, मिस्टर गोपाल ने आपके लिए अपनी बर्थ छोड़ दी है। अब आपको कोई कष्ट नहीं होना चाहिए।"

मिस कामना ने कंडक्टर को कोई जवाब नहीं दिया। केवल उसकी आँखों को देखकर ही यह जाना जा सकता था कि वह कृतज्ञता के बोझ से अपने को दबा हुआ अनुभव कर रही थीं।

मिस कामना को चलने में असुविधा हो रही थी, क्योंकि उसके दोनों हाथ बैसाखी पर थे। कंडक्टर ने सहारा देकर मिस कामना को बर्थ पर बिठा दिया।

मिस कामना को देखते ही गोपाल बाबू के हृदय पर एक वज्रपात-सा हुआ। गोपाल बाबू को ऐसा प्रतीत हुआ कि कल्पना के जिस बिगड़ैल घोड़े पर वे सवार थे, उसने उन्हें अपनी पीठ से अचानक एक पथरीली ढलान पर पटक दिया है और अब उनका लहूलुहान शरीर तेजी से नीचे की ओर लुढ़कता चला जा रहा है। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्रतभंग

● कांतिलाल ठाकरे

उस महाविद्यालय में सबसे होनकार छात्र के रूप में मनोज की बड़ी ख्याति थी। वह कविताएँ लिखता था— अच्छा वक्ता था और वे सब गुण उसमें थे जो किसी को भी आकर्षित करने की क्षमता रखते थे। वह एकांतप्रिय था। किसी से भी अधिक मेलजोल नहीं रखता था। वह लड़कियों से तो कोसों दूर रहता था। एक से बढ़कर एक सुंदर लड़कियाँ उसकी कक्षा में थीं पर वह किसी की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता था। पता नहीं किस संस्कार या प्रेरणावश उसने यह प्रतिज्ञा ही कर रखी थी कि वह आजन्म अविवाहित रहेगा। उसका यह व्रत-संकल्प सबको विदित था। सब उसे सनकी समझते थे पर उसके गुणों के समक्ष नतमस्तक थे।

हिंदी साहित्य की स्नातकोत्तर कक्षा के अंतिम वर्ष में मनोज अध्ययन के साथ ही अध्यापन भी करता था। वह प्राइवेट ट्यूशन भी करता था। परिवार की माली हालत अच्छी नहीं थी। वृद्ध माता-पिता और छोटे भाई-बहनों का दायित्व उस पर ही था। पिताजी सेवा-निवृत्त हो चुके थे, उनकी पेंशन से घर खर्च चलना मुश्किल था। किसी नई नौकरी की तलाश में थे वे पर स्वास्थ्य भी बराबर साथ नहीं दे रहा था। लिहाजा मनोज ही उनकी आशा का केंद्र था। पर अभी वह कर ही क्या सकता था! उसने कहीं यह पढ़ लिया था—

"नारी की झाईं परत अंधा होत भुजंग।
तिनकी का गति होई है जे नित नारी के संग॥"

वह नारी की छाया मात्र से दूर ही रहना चाहता था। पर क्या यह संभव था?

संध्या-समय मनोज एक शिक्षण संस्था में हिंदी पढ़ाने जाता था। वहाँ सह शिक्षा की स्थिति थी। उसकी कक्षा में कामिनी चंचला मुग्धा नायिका के समान थी जिसे अपने सौंदर्य पर बड़ा अभिमान था। कक्षा में सभी छात्र उसे अपनी प्रेयसी बनाना चाहते थे। पर वह किसी से भी नहीं बोलती थी। वह सही अर्थ में रूप गर्विता थी। मनोज को वह बेहद चाहती थी। उसके संकल्प से वह परिचित थी। अपनी पक्की सहेली मधु से वह कहा करती थी— "एक और विश्वामित्र पैदा हो गया है इस युग में। मैं उसका व्रतभंग करके ही रहूँगी।" उसकी यह गर्वोक्ति एक

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चुनौती बनकर रह-रहकर उसे सालती। पर मनोज इन सबसे बेखबर अपना कर्तव्यपालन कर रहा था। वह लोकप्रिय छात्र होने के साथ ही लोकप्रिय अध्यापक भी हो गया था।

एक दिन कामिनी ने मनोज से कहा— "सर, आप मुझे बढ़ाने घर आ सकते हैं क्या? हम लोग अहिंदी भाषी हैं ना। डैडी नहीं चाहते कि हिंदी के कारण मेरा डिविजन खराब हो जाए। आप पढ़ा देंगे तो मेरा भला हो जाएगा। फीस आप जो चाहेंगे मिल जाएगी।"

मनोज सोच में पड़ गया। वह प्रस्ताव अप्रत्याशित तो न था, पर वह लड़कियों की ट्यूशन नहीं लेता था। पैसों की जरूरत भी थी। वह जानता था कि कामिनी के पिता अच्छी पोस्ट पर हैं। बंगला-कार-नौकर-चाकर सब कुछ है। इसलिए वह यही कह पाया—

"समय मेरे पास नहीं है। इसलिए रोज तो नहीं आ पाऊँगा। हाँ, सप्ताह में एक दिन रविवार को आ सकता हूँ। फीस का क्या है! आप जो देंगी, मंजूर है।"

कामिनी ने इसे ही अपनी आरंभिक विजय मानी।

पहला रविवार, प्रातः का समय। शीत ऋतु! मनोज तब कामिनी के यहाँ पहुँचा तो वह प्रतीक्षारत ही थी। परिवार के सभी सदस्यों से मनोज का परिचय करवाया गया। चाय-नाश्ते से उसका स्वागत हुआ। कामिनी के कमरे में बाकायदा जब मनोज ने पढ़ाना शुरू किया तो कामिनी ने पहले प्रश्न किया—"सर, आपको ठंड नहीं लगती? गर्म कपड़े तो पहना कीजिए।"

मनोज ने जवाब दिया— "ठंड का क्या है! माना तो है! नहीं माना तो नहीं है। जितने ज्यादा कपड़े पहनो, उतनी ज्यादा ठंड लगती है। आप लोगों को यहाँ इतने साधन होने पर भी ठंड लगती है। उधर गरीब लोग झोपड़ी में या खुले आसमान के नीचे रहते हैं! क्या उन्हें ठंड नहीं लगती? क्या वे इन्सान नहीं हैं? यह तो शरीर है, जैसा साधो, वैसा सध जाता है।"

कामिनी मुग्ध भाव से सुनती रही, फिर वह पढ़ाई में व्यस्त हो गई।

हिंदी साहित्य का इतिहास पढ़ाते हुए मनोज ने कहा— "रीतिकाल यानी शृंगार काल! यह बहुत महत्वपूर्ण काल है। इस काल में कई कवि हुए जिन्होंने शृंगार के दोनों पक्ष संयोग और वियोग का सुंदर चित्रण किया है। नायिकाओं के अनेक भेद भी बताए गए हैं। कवि बिहारी के नायक-नायिका तो भरे भुवन में आँखों-ही-आँखों में एक-दूसरे से बात करते हैं।

कामिनी ने एक अर्थपूर्ण मुस्कान के साथ कहा—"अच्छा, भला वह कैसे?"

मनोज ने उसी गुरु गंभीर मुद्रा में कहा—"देखिए, इस दोहे में यह बात है—

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"कहत नटत रीझत खिजत, मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन में करत हैं नैनहिं सो बात ॥"

अर्थात्—बहुत बड़ा भवन है । एक ओर पुरुषों के समूह में नायक है, दूसरी ओर महिलाओं के समूह में नायिका है । नायक इशारा करता है तो नायिका मना कर देती है—कभी वह रीझती है तो कभी खीजती है । दोनों के नयन फिर मिलते हैं तो वह खिल उठती है, पर लजा जाती है। इस प्रकार भरे भवन में दोनों आँखों-ही-आँखों में बातें कर लेते हैं ।"

कामिनी ने फिर प्रश्न किया—"सर, यह कैसी भाषा है ?"

मनोज ने कहा—"यह सनातन भाषा है ! आदिकाल से चली आ रही है । इस भाषा का न कोई व्याकरण है, न कोई नियम है । अच्छा, आज इतना ही ।"

कहकर मनोज उठ खड़ा हुआ । कामिनी ने एक मादक अंगड़ाई ली तो मनोज उसे देखता ही रह गया । कामिनी ने मन-ही-मन कहा—

"देखते क्या हो ! अभी तो ली अंगड़ाई है ! आगे और लड़ाई है ।"

पर प्रकट रूप में वह यही कह पाई—

"अच्छा सर, तो अब अगले ररिवार ।"

मनोज ने चलते हुए कहा, "हाँ, जरूर ।"

कामिनी ने फिर चंचल चितवन बिखेरी जो मानो किसी फिल्मी गीत की तर्ज में कह रही हो—"आप यूँ ही अगर हमसे मिलते रहे, देखना एक दिन प्यार हो जाएगा ।"

पता नहीं, मनोज ने उसके मन की बात समझी या नहीं पर एक मीठी कसक उसे चुभने लगी । कामिनी का चेहरा बार-बार आँखों के सामने आ जाता ।

फिर तो एक नहीं, कई रविवार आए और गए । मनोज कामिनी दोनों एक दूसरे के निकट आते चले गए । पता नहीं, कब आँखों की प्यार की वह भाषा दिल में उतर गई । अब मनोज की समझ में आया, प्यार क्या होता है ! कैसे हो जाता है ! कामिनी तो उसका व्रतभंग करने हेतु संकल्पित थी जिसे उसने पहले तो एक खेल माना था, पर फिर स्वयं ही अपने बिछाए जाल में फँस गई । वह जानती थी कि यह प्यार परवान चढ़ा तो तूफान ही आएगा, क्योंकि दोनों की माली हालत में जमीन-आसमान का अंतर था । फिर भी, दिल था कि मानता ही नहीं था । परीक्षा हुई । पढ़ाई पूरी हो गई । मिलन मार्ग में बाधा आई तो प्रणय सरिता चट्टान तोड़कर बह निकली । दोनों पार्क में, सिनेमा में, कॉफी हाउस में मिलने लगे ।

मनोज को डिग्री मिली तो उसे नौकरी भी मिल गई । एक हिंदी संस्थान में उसे अध्यापन का कार्य मिला, पर उसे बाहर गाँव जाना पड़ा । जाने से पहले उस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शाम पार्क के एकांत स्थल में मनोज ने कामिनी को अपनी बाँहों में लेते हुए कहा—

"कल मैं जा रहा हूँ। वैसे, आता रहूँगा। पर अब पत्र ही हमारा सहारा बनेंगे। तुम तो मुझे लिख सकती हो, पर मैं तुम्हें किस पते पर लिखूँ—यह बताओ ?"

कामिनी ने अपना फोटो मनोज को देते हुए कहा—"इसे रख लो। यह पता है मेरी सहेली का। जाते ही पत्र लिखना। जब तुम कहोगे, मैं सब कुछ छोड़कर तुम्हारे पास चली आऊँगी।"

एक समझौता हो गया।

मनोज के जाते ही कामिनी उदास हो गई। वह खोई-खोई-सी रहने लगी। उसका किसी काम में मन नहीं लगता। दिन तो किसी प्रकार कट जाता पर रात में नींद नहीं आती। आती भी कैसे ! जिन आँखों में वियोग के आँसू भरे हों, उनमें नींद कैसे समाए ? उसकी इच्छा होती, पंख लग जाएं और वह उड़कर मनोज के पास पहुँच जाये ! रोज वह सहेली के घर जाती पर निराशा ही हाथ लगती। एक दिन जब पत्र मिला तो उसे ऐसा लगा मानो सूखे धान को पानी मिला। पत्र को उसने बार-बार चूमा। खोलते ही जब उसने संबोधन पढ़ा— "मेरे सपनों की रानी !" तो आँखें भर आईं। बड़ा लंबा पत्र था। मनोज ने सारा साहित्य उसमें गागर में सागर की तरह भर दिया था। उसका जवाब भी उसने उसी तरह दिया।जो बातें कह नहीं पाई थी, वे सब लिख दीं।

फिर तो यह सिलसिला चल पड़ा। कहते हैं कि इश्क छुपाये नहीं छुपता। कामिनी की मनोदशा प्रकट हो गई। एक दिन उसका प्रेम-पत्र बड़े भाई के हाथ लग गया। पूरे घर में तूफान ही आ गया। उसकी जमकर पिटाई हुई। उस पर प्रतिबंध लगा दिए गए। उसके दिये कई जगह रिश्तों की खोज होने लगी। वह घबरा गई, क्या करें, क्या न करें ! कुछ समझ नहीं आया। उसने मनोज को अंतिम पत्र लिखा। सब कुछ लिख दिया। उसका जवाब भी सहेली ने उसे लाकर दिया। सब कुछ निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार हुआ। दिन में वह सहेली के साथ अपना बैग लेकर शॉपिंग के बहाने निकली। वह सीधे स्टेशन जा पहुँची। गाड़ी में चढ़ने के पहले वह सहेली के गले लग खूब रोई, जैसे कि वह शादी के बाद विदा हो रही हो।

स्टेशन पर मनोज उसे लेने आ गया। उसे देखते ही वह खिल उठी। घर छोड़ने का सारा अवसाद मिट गया। इच्छा हुई कि तुरंत दौड़कर उसकी बाँहों में समा जाऊँ, पर भीड़ में वह सब संभव न था। मनोज की भी वही इच्छा थी पर विवशता थी। उनमें मुस्कान का ही आदान-प्रदान हो सका। मनोज ने सब प्रबंध कर रखा था। स्टेशन से सीधे रजिस्ट्रार ऑफिस जाकर विधिवत विवाह की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रस्म-अदायगी की। फिर एक सादे समारोह में भाग लिया। मनोज जब अपनी नवपरिणिता कामिनी को लेकर अपने निवास पर पहुँचा तो वहाँ के रहवासियों ने उनका परंपरागत स्वागत किया। कमरा एक ही था जिसे अच्छी तरह से सजा दिया गया था। आधे हिस्से में रसोई-स्नानगृह तथा आधे में शयन-गृह। यही सब उन दोनों का अपना संसार बन गया।

फिर आई मधुरात्रि यानी मधुर्मिलन की बेला। जब दो तन एक मन हो जाते हैं, कामनाओं का ज्वार उमड़ पड़ता है। सागर की उत्ताल तरंगों के सामने अच्छे-अच्छे महारथी का व्रत भंग हो जाता है। फिर मनोज का व्रत कहाँ तक टिका रहता? वह तो होना ही था। लेकिन उस पावन-बेला में दोनों ने यह पाया कि जो सुख पति को पत्नी से और पत्नी को पति से मिलता है, वह कहीं और नहीं मिल सकता है। इसी सुख के लिये 'एकव्रत' रहने का दोनों ने संकल्प लिया था और चाहा था कि वह कभी भंग न हो। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चिट्ठी आई है

● कमलेश भट्ट 'कमल'

शताब्दी एक्सप्रेस ठीक समय से चल पड़ी है। इसके कानपुर पहुँचने का समय 11.10 है, लेकिन प्राय: यह समय से पहले पहुँच जाती है—ऐसा पिछले अनुभव बताते हैं। चलो अच्छा है, मक्खन से मुलाकात कुछ और जल्दी हो जाएगी। साल भर से अधिक का समय हो गया है मक्खन से मिले। चिट्ठी मिल गई होगी तो वह स्वयं ही स्टेशन आ जाएगा। रात फोन पर बात करने का कितना प्रयास किया, लेकिन फोन ही नहीं मिल पाया। हर बार एक ही तरह का स्वर सुनाई देता रहा—'कृपया डायल किया गया नंबर चेक कर लें।

मक्खन यानी मक्खनलाल यानी एम. लाल और मैं—दोनों आस-पास के ही गाँव के हैं। लेकिन मक्खन जिस गाँव का रहने वाला है, वह कथा-कहानियों और फिल्मों में दिखाए जाने वाले सीधे-सादे भारतीय गाँवों से सर्वथा भिन्न है।

मक्खन के गाँव के ज्यादातर लोग अपने आप में नमूने हैं। क्या राहजनी, क्या चोरी, क्या उठाईगिरी और क्या चार सौ बीसी तो क्या झूठ, फरेब और लंपटता तथा नंगई ! सभी कुछ उपलब्ध है मक्खन के गाँव में। आज ही नहीं, सैकड़ों वर्षों से यह गाँव इसी तरह का है—30-35 वर्षों से तो हमी लोग देख रहे हैं इसे। मन में गहरी कालिमा लिये हुए भी शराफत का पुतला किस तरह दिखाया जा सकता है, यह किसी को सीखना हो तो जाए मक्खन के गाँव। सरासर सफेद झूठ बोलते हुए भी उसे सच बताने के लिए इकलौती औलाद से लेकर भगवान् तक की कसमें खाना कितना सहज है, यह मक्खन के गाँव गए बिना नहीं जाना जा सकता। आपस में एक-दूसरे की जड़ काटते रहने की गँवई राजनीति की जो पैंतरेबाजी यहाँ देखने को मिलती है, उससे बड़े-बड़े राजनीतिज्ञों को भी अचंभा हो जाए। लेकिन उसी गाँव में मक्खन जैसे आदमी का होना भी कम अचंभे की बात नहीं है।

जिस गाँव में लोगों की शिक्षा का उच्चतम स्तर हाईस्कूल रहा हो, वहीं मक्खन का इण्टरमीडिएट तक शिक्षा पूरी कर ले जाना—वह भी प्रथम श्रेणी में और उसके बाद शहर जाकर बी.ए., एम.ए. की डिग्री पा लेना अजूबा नहीं तो और क्या है ! मक्खन के गाँव से कभी आपका निकलना हो तो तमाम घरों पर नेम प्लेटें दिखाई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दे जाएँगी—जी. प्रसाद, के. राम, एन. सिंह, जे. दास आदि-आदि । चौंकिए नहीं, ये नाम गाँव वालों की कुलीनता के द्योतक नहीं, हीन भावना को छिपाने के तरीके भर हैं । जी. प्रसाद यानी घुरहू प्रसाद, के. राम यानी कालू राम, एन. सिंह यानी नन्हकू सिंह और जे. दास यानी झूलन दास ! शुरू में मक्खनलाल भी एम. लाल हुआ करता था, लेकिन जब वह अपनी हीन भावना से उबरा तो पूरा नाम लिखने लगा था ।

मेरे पिताजी दिल्ली में रहते थे । अत: जूनियर हाई स्कूल की पढ़ाई के बाद मैं दिल्ली आ गया था । मक्खन ने तहसील के इण्टर कॉलेज में दाखिला ले लिया था । आई.एस.सी. की परीक्षा के बाद गर्मी की छुट्टियों में गाँव गया तो पता चला कि मक्खन की शादी तय हो चुकी है और मेरे गाँव में रहते ही उसकी शादी हो भी गई । दरअसल, इतनी जल्दी मक्खन की शादी के पीछे गाँव की संस्कृति का ही दबाव था ।

मक्खन का गाँव इस मामले में भी विचित्र था कि वहाँ के लोग अपने 'लड़कों' की शादी के मोहताज रहा करते थे । बाहर से रंग-रोगन लगे और 'टीप-टाप' दिख रहे गाँव में जब एक के घर कोई लड़की वाला शादी के लिए आता तो विरोधी खेमे वाले उसे भड़काने के लिए हर सूरत कोशिश करते । अपने विपक्षी के लड़के के बारे में सही-गलत जोड़कर उसे बदचलन और आवारा बताना ऐसी कोशिश का प्रमुख अंग होता था । उससे भी काम न चलता तो खानदान के ऐसे बीसियों ऐब गिना दिए जाते, जैसे पिछली सात पुश्तें उनके ही आगे जन्मी हों । इस कुचक्र में वे उनके नाते-रिश्तेदारों तक को भी नहीं बख्शते थे । इसी बीच वाक्पटु गाँव वाले अपने पक्ष के लड़कों का बखान करना भी नहीं भूलते थे । इन सबका परिणाम यह होता था कि लड़की वाले भाग खड़े होते थे । संभावित विवाह में अड़चन पैदा करने के ही मुद्दे पर गाँव में हुई कई-कई फौजदारियों के मुकदमे आज भी कोर्ट में चल रहे हैं । जाहिर है ऐसे गाँव में बेटे की शादी किसी भी माँ-बाप के लिए चुनौती बनी रहती थी और मक्खन की शादी भी ऐसे ही किसी दबाव में बहुत जल्दी हो गई थी ।

यह तो गनीमत हुई कि शादी के समय ही मक्खन की बीवी उसके घर नहीं आ गई, अन्यथा मक्खन की जिंदगी में जो घमासान तीन साल बाद शुरू हुआ, वह शादी के दिन से ही शुरू हो गया होता ।

हुआ यह कि तीसरे साल जब मक्खन का गौना आया, तब वह एम.ए. के पहले साल में था । मक्खन कोई बहुत खूबसूरत किस्म का तो लड़का नहीं था, लेकिन ऐसा भी नहीं था कि उसे बदसूरत कहा जा सके । लेकिन जब उसकी बीवी आई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो पता चला कि वह पक्के रंग की कुछ-कुछ मोटी-सी है और उम्र भी मक्खन से ज्यादा नहीं तो कम भी नहीं है। उसके दो-तीन दरजे तक पढ़े होने की बात का पता तो शादी के समय ही चल चुका था। लड़की का नाम लाली था। लेकिन शारीरिक सुंदरता की बहुत क्षीण लालिमा ही उसके अंदर दिखाई देती थी। अत: मुँहदिखाई के समय ही मक्खन की माँ बिफर पड़ी—"हाय रे, खराब कर दई मेरो फूल जैसो बालक की जिंदगी।...किस जन्म को बदलो चुकायो रे रमनथवा ?"... फिर तो क्या गौने का उत्साह और क्या खुशी—सब ठप हो गया, जैसे किसी ने टेप रिकॉर्डर का स्विच बन्द कर दिया हो।

लाली के साथ आई सगुन की मिठाई, जिसमें से मक्खन की माँ ने गाँव वालों को बाँटने के लिए एक थाली में निकाला था, आँगन में ही लाली की आँखों के सामने कुत्तों को डाल दी गई।

सारा माजरा सुनकर मक्खन भी सकते में आ गया। उसकी कल्पना में खूबसूरती की जो सीमाएँ थी, लाली उसमें कहीं फिट नहीं बैठ पा रही थी। लेकिन अब क्या हो सकता था ! यह तो शादी से पहले देखी जाने वाली बातें थीं।

सुहागरात जैसी कोई उत्सुकता मक्खन में नहीं रह गई थी लेकिन मन के किसी कोने में एक बात जरूर थी कि यदि औरत विधाता की सबसे खूबसूरत सृष्टि है तो लाली में भी कुछ-न-कुछ खूबसूरती होनी ही चाहिए। वह प्रतीक्षा में था कि कोई उसे किसी बहाने से बुलाकर बहू के कमरे में ढकेलकर बाहर से कुण्डी चढ़ा देगा। लेकिन पूरी रात वह प्रतीक्षा ही करता रह गया—कोई भी उसे बुलाने नहीं आया। मक्खन मन मसोसकर रह गया, बल्कि उसके अंदर एक अपराध-बोध सा भी भर गया कि दूसरे घर से आई लड़की उसके बारे में क्या-क्या सोच रही होगी !

अगले दिन गाँव की एक भाभी से पता चला कि मक्खन की माँ ने ही मक्खन को नहीं आने दिया था। यही नहीं, उसने बहू को कोसते हुए कहा भी था, "ऐसी कुलच्छनी की घर में कोई जरूरत नाय है, वह कल जाना चाय रही होय तो आजइ चली जाय बाप के घर !"

ताजा 'जख्म' है तो आज ज्यादा टीस है। कल से धीरे-धीरे सब ठीक हो जाएगा—यही सोचकर मक्खन चुप रहा।

लेकिन एक-एक कर तीन दिन बीत गए और मक्खन की मुलाकात लाली से नहीं हो सकी। धीरे-धीरे रिश्तेदार भी चले गए। आखिर में चौथे दिन मक्खन ने स्वयं लाली से मिलने का निश्चय किया और खाना खा लेने के बाद चुपचाप लाली के कमरे की ओर चल पड़ा।

चौकस पहरेदारी में लगी मक्खन की माँ झपटते हुए उसके सामने खड़ी होती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुई बोली—"लल्ला, उस भूतनी के पास जाने की कोई जरूरत नांय !....शादी ह्वै गई सो ह्वै गई । एक गलती के बाद दूसरी गलती ना करौ । जे चाहै तो बाप को बुलाकर अपने घर चली जावै । मैं तुम्हारी दूसरी शादी कराय दूंगी !"

"लेकिन अम्मा, शादी में लाली का क्या कसूर है ? यही न कि वह खूबसूरत नहीं है—बदसूरत है । तो इससे तुम्हें क्या ! लाली के साथ ब्याह मेरा हुआ है, मैं अपने साथ रखूंगा ।" मक्खन को अपनी तरफ से सख्ती जरूरी लगी ।

"लेकिन जग हँसाई तो हमारी ह्वै रही है, लल्ला !... जिसे देखो, वई ताने मार रिया है कि इकलौती बहू वह भी भूतनी जैसी !" मक्खन की माँ ने लड़का हाथ से जाते देख कहा ।

"तो इसमें लाली की क्या गलती है ? क्या लाली जान-बूझकर बदसूरत पैदा हो गई है ?... पूछना है तो जाकर भगवान् से पूछो कि वह किसी को खूबसूरत और किसी को बदसूरत क्यों बना देता है ?"

मक्खन की माँ अपने बेटे के मुँह से पहली बार ऐसी ढिठाई भरी बातें सुन रही थी । वह खीजती ही खड़ी रह गई और मक्खन ने लाली के कमरे में अंदर से कुण्डी चढ़ा दी ।

मक्खन को अपने कमरे में अकेला पाकर लाली उसके पैरों पर भहरा पड़ी । मक्खन ने लाली को उठाकर अपने गले लगा लिया तो देर से रुकी लाली की आँखों से आँसुओं की झड़ी फूट पड़ी ।

मक्खन ने लाली को समझा-बुझाकर शांत किया तो वह बोली—"आपने मेरे लिए अम्मा से इस तरह झगड़ा क्यों कर लिया ?...मैं तो जन्म से ही अभागिन हूँ, नहीं तो जन्म के साथ ही माँ थोड़ी मर ज़ाती ।....आपने मुझे समझने की कोशिश की, यही क्या कम है !...मैं तो स्वयं आपके जोग नहीं हूँ !" लाली फिर सुबकने लगी थी ।

"नहीं लाली, ऐसा नहीं कहते । ठीक है, शरीर की सुंदरता भी कोई चीज होती है, लेकिन मन की सुंदरता के बिना वह भी बेकार हो जाती है । मैं जानता हूँ, तुम्हारा मन सुंदर है । धीरे-धीरे मन की सुंदरता ही तन की सुंदरता बन जाएगी ।"

...तो कुछ इस तरह शुरुआत हुई थी मेरे दोस्त के दाम्पत्य जीवन की जिसके बारे में उसने गौने के बाद मुझसे हुई मुलाकात में विस्तार से बताया था ।

फिर प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने का सिलसिला प्रारंभ हुआ था । अंततः संयोगवश हम दोनों को एक ही नौकरी मिली । आस-पास के इलाकों में राजपत्रित अधिकारी बनने वाले हम दोनों 'पहले' थे । फिर तो ट्रेनिंग भी हम दोनों की साथ-साथ ही हुई । ट्रेनिंग के बाद मुझे दिल्ली में पोस्टिंग मिली और मक्खन को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कानपुर भेजा गया।

उसके बाद दो-ढाई साल का वक्त कब बीत गया, इसका पता ही नहीं चला। इस बीच मेरी भी शादी हो गई। एक बच्चा भी हो गया। शादी में मक्खन से बातचीत का अवसर ही नहीं मिल पाया था—व्यस्तता के कारण। उसके बाद मुलाकात का यह अवसर मिल पाया है। फोन पर तो बीच में बातें होती रही थीं लेकिन औपचारिक किस्म की।...कानपुर में औद्योगिक प्रदूषण के अध्ययन का एक प्रोजेक्ट मुझे मिला है। अध्ययन की प्रारंभिक रूपरेखा प्रस्तुत करने के लिए सात दिन का समय मुझे दिया गया है, जिसके लिए इस यात्रा का कार्यक्रम अचानक बना।

ट्रेन अब तक लगभग पाँच घण्टे का सफर तय कर चुकी है। सामने काफी दूरी पर एक ऊँची चिमनी धुँआ उगलती हुई दिखाई देती है। ध्यान आया कि पनकी पावर हाउस है। इसी बीच ट्रेन में मधुर ध्वनि गूंजती है— "अब से कुछ ही देर बाद शताब्दी एक्सप्रेस ट्रेन उ.प्र. की औद्योगिक नगरी कानपुर पहुँचने वाली है। गंगा के पावन तट पर बसी यह नगरी अमर शहीद गणेश शंकर विद्यार्थी की कर्मभूमि रही है। यहाँ से कुछ दूरी पर स्थित बिठूर..." उद्घोषणा पूरी हुई नहीं कि लोग-बाग अपना सामान ठीक करने में लग गए। इस ट्रेन में ज्यादातर यात्री कानपुर के ही होते हैं। मैं भी अपना सामान सहेजने लग गया। ट्रेन की गति अब मंद पड़ने लगी है।

प्लैटफार्म पर मैंने ही मक्खन को देखा था। यानी मेरी चिट्ठी मक्खन को मिल गई थी।

मक्खन अपनी सरकारी गाड़ी ले आया था—अर्दली भी साथ था। अर्दली ने लपककर मेरा सामान ले लिया था। मुझसे हाथ मिलाते-मिलाते मक्खन ने कुछ इस तरह से गले लगाकर बाँहों में कस लिया कि कुछ क्षण के लिए मैं कसमसाकर रह गया। दोहरी काठी के मक्खन की इस 'परपीड़ा' में उसकी आत्मीयता रची-बसी थी।

"पी.के., मैं यह नहीं पूछूँगा कि तुम्हारी यात्रा कैसी रही!" गाड़ी की सीट पर बैठते हुए उसने एक खास अंदाज में यह बात कही।

"लगता है गाँव का असर अभी बाकी है। पी.के. नहीं प्रवीण, कुमार कहो।" हम दोनों का समवेत ठहाका एक साथ गूंजा।

"भाई मक्खन, तुम जो मेरे लंगोटिया यार ठहरे, तुम्हें भला अपने दोस्त के सुख-दुःख से क्या मतलब!" मैंने दुबारा चुटकी ली थी।

"अच्छा तो ये अंदाज हैं जनाब के! किस शायर का असर हो रहा है?"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मक्खन हल्के मूड में लग रहा था।

"मैं और शायरी ! क्या कमाल करते हो मक्खन !" हम दोनों का ठहाका फिर साथ-साथ गूंजा था।

मक्खन के घर पहुँचा तो मेरा स्वागत मक्खन के घर के कुछेक कर्मचारियों ने किया। जाहिर है इस स्वागत में अपनापन कम, औपचारिकता ज्यादा थी। ऐसा लग रहा था जैसे मैं किसी कैंम्प ऑफिस में आ गया होऊँ।

घर में खाना बनाने वाला एक महाराज था और अन्य घरेलू काम-काज के लिए एक नौकर। एक चपरासी को अपने कार्यालय से भी मक्खन ने बुलवा लिया था। मेरे खाने और चाय आदि की विधिवत् हिदायत देकर, मेरे साथ चाय पीने के बाद मक्खन ऑफिस चला गया और जाते-जाते बोल गया था कि शाम का खाना वह साथ ही खाएगा।

यात्रा की थकान यूँ तो कुछ खास नहीं थी, लेकिन सुबह जल्दी ट्रेन पकड़ने की चिंता में रात तीन बजे ही आँखें खुल गई थी। अतः शरीर पर खुमारी का-सा असर था। इसलिए खाना खाकर मैं आराम करते-करते सो गया।

जब तक मेरी नींद टूटी, मक्खन भी ऑफिस से वापस आ गया था।

"अरे, तुमने तो देर से आने की बात की थी। इतनी जल्दी कैसे ?" मैंने पूछा था।

"हाँ, एक मीटिंग थी। बॉस के आने से मीटिंग कैन्सिल हो गई।" मक्खन ने बात स्पष्ट की थी और साथ ही महाराज को आवाज देते हुए बोला था—"महाराज, तुम फटाफट चाय-नाश्ता लाओ। हम लोग घूमने जाएंगे।"

"कौन-सी जगह घुमाओगे मुझे ?"

"प्रवीण, तुम पहली बार इत्मीनान से कानपुर आए हो। शुरुआत जे.के. मंदिर से ही करेंगे। फिर मोतीझील की हवाखोरी करेंगे और बाद में माल रोड घूमते हुए वापस आ जाएँगे।" मक्खन ने जैसे पहले ही सोच रखा हो।

जब तक मैं फ्रेश होकर बाथ-रूम से बाहर आया, चाय तैयार हो चुकी थी। ड्राइवर गाड़ी साफ करने में लगा था।

चाय पीकर हम दोनों गाड़ी में बैठ गए।

जे.के. मंदिर के दर्शन के बाद मुख्य द्वार के बाहर संगमरमर से बने दूधिया फर्श पर हम दोनों न चाहते हुए भी बैठ गए थे। फर्श की शीतलता अपूर्व सुख की अनुभूति दे रही थी।

"मक्खन, यहाँ आने के बाद से एक बात मैं बड़ी देर से सोच रहा हूँ लेकिन तुम अपनी तरफ से कोई पहल ही नहीं कर रहे हो !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"ऐसी भी क्या बात है ?"

"भाभी के क्या हाल-चाल हैं ? कहीं विवेक की तरह तुमने भी तो नहीं— ?" मैं कहते-कहते संकोच में पड़ गया।

"क्या किया विवेक ने ?" मक्खन का चेहरा आशंकाग्रस्त हो आया था।

"तो तुम्हें पता ही नहीं ?

"मक्खन, हम लोग भगवान् के घर में हैं। फिर तुमसे झूठ और छिपाव क्या !"

"अफसर बनने के बाद उसने अपनी बीवी बदल दी है।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब यह है कि उसने एक और बीवी 'रख' ली है। पहली बीवी अब गाँव में रहती है। शहर के लिए उसने एक दूसरी लड़की को बीवी की तरह रख लिया है—और तो और, सालों से गाँव भी नहीं गया है। माँ-बाप बहुत दुखी और चिंतित रहते हैं।"

"लेकिन उसकी पहली बीवी बुरी तो नहीं थी।"

"विवेक कहता है कि वह बैकवर्ड लगती है। उसकी सोसायटी में फिट नहीं बैठती, नई वाली बीवी क्रिश्चियन है—जीन्स-टॉप वाली।

"अरे हाँ मक्खन, तुम भाभी वाली बात टाल ही गए। कहाँ है भाभी ? ठीक तो हैं न ?— जे.के. मंदिर घुमाया या नहीं ?"

'नहीं प्रवीण, लाली घर पर ही रहती है। एक बच्चा भी है। सोचता हूं, कुछ और बड़ा हो जाए तो अपने पास लाऊँ और किसी स्कूल में डाल दूँ।"

"और भाभी ?"

"लाली तो गाँव में ही रहेगी। माँ भी तो है न। जब तक माँ है, माँ को अकेले तो नहीं छोड़ा जा सकता न !"

"लेकिन माँ तो भाभी को बहुत प्रताड़ित करती होंगी ?"

"तो क्या हुआ। जो माँ को करना है, वह माँ कर रही हैं, जो लाली को करना चाहिए वह लाली कर रही है। माँ हम लोगों के लिए अच्छा करें, तभी हम लोग उसके लिए कुछ करें, यह तो कोई बात नहीं हुई। अपने कर्तव्य के निर्वाह में कैसी शर्त और कैसा संकोच !"

"तो क्या माँ ने भाभी को स्वीकार कर लिया ?"

"बिलकुल नहीं। वह अब भी लाली से उतनी ही नफरत करती हैं। यही नहीं, नौकरी मिलने के बाद एक बार फिर माँ ने कोशिश की थी कि मैं लाली को छोड़ दूँ ! लेकिन मेरी तरफ से हरी झण्डी न पाकर चुप रह गईं।"

"विश्वास नहीं होता मक्खन कि एक औरत किसी दूसरी औरत के खिलाफ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

इस हद तक भी जा सकती है ।"

"मेरा दुर्भाग्य है प्रवीण ,और कुछ नहीं ।...तुम्हीं बताओ क्या ऐसा नहीं हो सकता कि मैं लाली की ही किस्मत से नौकरी पाने में सफल हुआ होऊँ ? मुझे माँ के ऊपर तरस आता है कि जो बहू उनकी तमाम सारी गाली-गलौज के बाद भी पूरे मन से उनकी सेवा में लगी रहती है, उससे अच्छी बहू कौन हो सकती है ? यह जरा-सी बात भी उनकी समझ में नहीं आती..." मक्खन थोड़ा भावुक हो आया था । गले में जैसे कुछ आकर फँसने-सा लगा था । कुछ क्षण की चुप्पी के बाद वह फिर बोला—"सच कहूँ प्रवीण भाई, तो लाली की जिस्मानी सुंदरता को लेकर मेरे मन में भी एक कुण्ठा हो जाया करती थी । लाली मेरी इस कुण्ठा को भी समझती है । शायद इसीलिए मेरे एकाध बार कहने पर भी वह मेरे साथ शहर आने के लिए राजी नहीं हुई ।...बस चिट्ठी-पत्री आती रहती है । साल-छः महीने में मैं भी गाँव हो आता हूँ ।..."

मक्खन को लगा कि जैसे बहुत देर हो गई हो । झटके से अपनी बात पूरी करते हुए वह उठ खड़ा हुआ । मैं भी खड़ा हो गया । रात बढ़ जाने के कारण चारों कोनों से पड़ने वाली सोडियम लैंस की लाइट में मंदिर की आभा स्वर्णिम हो आई थी ।

घर वापसी तक रात के नौ बज चुके थे । मक्खन तो फ्रेश होने चला गया और मैं उसके ड्राइंग-रूम का जायला लेने लगा ।

अचानक एक रैक से इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका का एक वॉल्यूम निकालते हुए कई लिफाफे गिरकर फर्श पर बिखर गए । उत्सुकतावश मैंने उन्हें उठा लिया ।

सभी लिफाफों पर एक ही जैसी लिखावट थी तथा सभी डाक से आए थे ।

थोड़ा ध्यान से देखा तो सभी लिफाफों पर भेजने वाले का नाम अंग्रेजी में लाली लिखा था ।

'हैं, भाभी ने अंग्रेजी भी सीख ली !....और मक्खन ने बताया तक नहीं ! बड़ा छुपा रुस्तम है !' मेरे मन के कोने में हलचल-सी हुई । तभी मेरा ध्यान गया कि लिफाफे तो अभी खोले ही नहीं गए हैं । मैं अचानक किसी उलझन में फंस गया । खैर, पूछूँगा बच्चू से—मैं यह सोच ही रहा था कि मक्खन वापस आ गया ।

मैंने नाराजगी भरे स्वर में उससे शिकायत की—"मिस्टर मक्खन लाल जी, भाभी की इतनी सारी चिट्ठियाँ आईं और तुमने उन्हें खोलकर पढ़ने तक की जरूरत नहीं समझी ! एक तरफ तो भाभी के हमदर्द बनते हो और दूसरी तरफ ऐसी निष्ठुरता ! इसे मैं तुम्हारी कुण्ठा समझूं या हिकारत ? भई, माजरा क्या है ?"

"चलो तुम्हीं खोलकर देख लो । माजरा समझ में आ जाएगा ।" मक्खन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गंभीर हो आया था।

"तो ये बात है !" कहते हुए एक-एक कर सारे लिफाफे मैंने खोल डाले।

लेकिन यह क्या ? सभी लिफाफों में पत्रों की जगह मुड़े हुए सादे कागज भर निकले।

"इनमें तो कुछ लिखा ही नहीं है ?" मैं हैरान था।

"हाँ, सही है। कुछ नहीं लिखा है !" मक्खन बिलकुल सहज लग रहा था।

'फिर ?" मेरी उलझन बढ़ रही थी।

"प्रवीण, तुम मेरे अपने हो। तुमसे क्या छिपाना ! जब मैं घर जाता हूँ तो अपना पता लिखकर तथा भेजने वाले की जगह लाली का नाम लिखकर कुछ टिकट लगे लिफाफे रख आता हूँ। लाली महीने भर में उन्हीं लिफाफों में सादे कागज रखकर मेरे पास भेजती रहती है—अनपढ़ जैसी होने से वह कुछ लिख नहीं पाती। इन पत्रों को पाकर मुझे लगता रहता है कि लाली सही सलामत है, जिंदा है !"

मक्खन के स्पष्टीकरण से मैं ठगा-सा रह गया।

उधर मक्खन की पलकों में आँसू की कुछ बूँदें आकर ठहर गई थीं। उनकी गहराई का पता लगा पाना आसान नहीं था। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रूपांतर

• डॉ. विमला उपाध्याय

उस दिन अपने कॉलेज से लौट रही थी, तो मन नाना प्रकार की योजनाओं में लीन था। गर्मियों की छुट्टियाँ अगले ही दिन से होने वाली थीं। सोच रही थी कि इस बार ये छुट्टियां मसूरी की वादियों में बिताई जाएँ। यों, वहाँ कई बार हो आई हूँ, पर मन अघाता ही नहीं। सोचती थी कि शांत, एकांत क्षणों में कुछ अच्छी कहानियाँ तैयार हो जाएँगी। घर व कॉलेज के मायाजाल में इतना लीन रहती थी कि लिखना-पढ़ना प्राय: छूट जाता था। इन्हीं ख्यालों में खोई थी कि मुझे विभा मिल गई। उसने शायद मुझे नहीं पहचाना या मेरी ओर ध्यान ही नहीं दिया। मैंने ही उसका ध्यान आकर्षित किया—"विभा ! ओ विभा ! !" मैंने अपनी आवाज अपेक्षाकृत ऊँची कर पुकारा। उसने मेरी ओर पलटकर देखा। मैंने फिर कहा—"तुम विभा ही हो न ! विभा माधुरी।" उसे स्मरण करने में कुछ पल लगे। फिर वह बड़ी गर्मजोशी के साथ मेरी ओर बढ़ी और मुझे आलिंगनपाश में जकड़ लिया। हर्ष से विह्वल होकर कहने लगी— "कहाँ देहरादून और कहाँ भागलपुर का यह चौराहा। मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि मेरी बालसखी इस शहर में अचानक मिल जाएगी।"

मेरे मानस-पटल पर नाना प्रकार के प्रश्न मँडरा रहे थे। सुना था विभा की चाची से कि वह किसी दूर-दराज के गाँव में ब्याही गई थी। उसके पति के परिवार में धन-संपत्ति की कमी नहीं थी। उपजाऊ जमीन। दुधारू गायें। सब कुछ था। पर उसका जीवन सुखी नहीं था। अक्सर पति-पत्नी में तू-तू मैं-मैं हो जाती। मारपीट की नौबत आ जाती। स्त्री होने के कारण पिटती विभा ही, पर क्या करती— गम के आँसू पी जाती। सहिष्णुता जहाँ नारी की दुखभरी जिंदगी को ढाल बनकर सहेजती है, वहीं वह कायर और जड़ भी बना देती है। जल्दी वह यथास्थिति से नहीं उबर पाती है। परिस्थिति से समझौता ही उसकी नियति बन जाता है। उसी दौरान विभा को एक बार देखा था। तब मैंने कॉलेज में काम करना शुरू किया था और वह अपने विवाह के पाँच बसंत बिता चुकी थी। उस समय उसकी वेश-भूषा कीमती और भड़कीली थी। कुछ आभूषण भी उसके तन पर थे,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पर आँखों का रंग उड़ गया था । मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं । उन दिनों उसके पति देहरादून में कोई व्यापार करते थे । शायद लकड़ी कटवाने का । शायद उसके मन में एक तूफान चल रहा हो कि अपनी अंतरंग सखी को अपना दुख सुनाकर क्यों दुखी किया जाए या फिर उसकी ही नजरों में छोटा क्यों बना जाए ? शायद यह भी सोच रही हो कि इसी के सामने वह (विभा) अपने वैभव सुख की लंबी डींग हाँकती थी । अब असलियत कैसे उजागर किया जाए । कारण जो भी रहा हो, विभा उस दिन नितांत औपचारिक थी । मानो किसी इंटरव्यू में आई हो और सामने के अधिकारी के समक्ष अपना सर्वोत्तम रूप रखना चाहती हो । उसकी चाची के कथन, इधर-उधर से उड़ती खबर तथा विभा से साक्षात्कार ने मेरे मन में यह बैठा दिया था कि कोई कारण है, जो उसके सुख-सौभाग्य पर प्रश्नचिह्न लगा रहा है । वह इतना निरुपाय और विवश हो गई है कि उससे निजात नहीं पा सकती । जाल में उलझे हरिण के समान, जो सुलझने के बजाय उलझता ही जाता है ।

इस घटना को घटे पूरे बीस वर्ष हो गए थे । फिर विभा अचानक मिली थी, पर उसके चेहरे का रंग खिला हुआ था । उसका शरीर भारी हो गया था । स्थूलता अंग-अंग में दिखाई पड़ती थी । खुशहाली और आत्मविश्वास का प्रकाश उसके रोम-रोम को प्रकाशित कर रहा था । लगता था, खुशी उसमें समा नहीं रही थी । एक ओर अपनी सखी के इस अनुकूल परिवर्तन पर मेरा भीतर गदगद हो रहा था, दूसरी ओर जिज्ञासा कुंडली मारे बैठी थी अपना समाधान पाने के लिए । आखिर मैंने आलिंगनपाश में उसकी पीठ थपथपाते हुए पूछ ही लिया—

"कैसी हो विभा ? प्रसन्न तो हो ? बीस वर्षों बाद मिली हो । चलो, किसी होटल या रेस्त्रां में, जहाँ खुलकर बातचीत हो ।"

उसने आलिंगन की पकड़ ढीली करते हुए धीरे-धीरे कहना शुरू किया ।

"मैं कहाँ जानती थी सुप्रिया कि तुम इतने लंबे अंतराल के बाद यों अचानक मिल जाओगी, अन्यथा अपने पति को साथ लेकर ही आती ।"

"अच्छा तो तुम सपरिवार यहाँ आई हो ?"

"आई हूँ कि यहीं खंजरपुर में एक किराये के मकान में रहती हूँ और पति बैंक में काम करते हैं । पंजाब नेशनल बैंक में । शाखा प्रबंधक हैं ।"

इतना कहते ही पता नहीं क्या हुआ कि विभा अपने में नहीं रही । कहीं खो गई । अतीत के गली-गलियारे में । जहाँ कई कटु-विषैली यादें दफ्न थीं । उसे याद होने लगा रामायण का वह प्रसंग जब हनुमान बाधाओं की विशाल सेना देखकर आश्वस्त होते हैं कि यहीं कहीं सिद्धि का वास है । काँटों से खेले बिना फूल तक पहुँचा जा सकता है क्या ?

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

घर पहुँचते ही गालियों की बौछार । यदि प्रतिक्रिया व्यक्त करो, तो मारपीट । विभा पिटती, पर मुँह से एक शब्द भी न निकालती । पीकर आना । घर पहुँचने पर फिर पीना । फिर निढाल हो जाना । अवश, निरुपाय । विभा को दया आती । कहाँ उतना आतंक । निर्दयता की हद । कहाँ इतना निरुपाय । उसमें क्रोध के बजाय करुणा जन्म लेती । उसका मुँह पोंछ देती । पलंग पर ठीक से लिटा देती । कोई चादर ओढ़ा देती । लगता कि कोई अबोध बालक माँ के संरक्षण में सो रहा है । पल-पल बढ़ रहा है ।

देह दुखती रही वैभव (पति) की मार से । मन कसैला रहता उसके व्यवहार से, पर उसे अपने को संतोष देना पड़ता था । वही उसका भविष्य था, जिसका वर्तमान अंधकार से भरा था । जो निराशा, हताशा के मेघ से घिर जाए, उसे बिजली की तरह चमक कर अपना रास्ता खोजना ही पड़ता है ।

उस दिन वह बन सँवरकर बाजार जा रही थी । पति के लिए कपड़े, जूते और सेविंग किट खरीदने । उस रात उसने मन को बहुत समझाया । आती हुई विपत्तियों का हित भी कारण बन जाता है । दूध दुहते समय बछड़े के लिए माता (गाय) की जाँघ ही खूँटा बन जाती है । सागर के समान फैला अपार दुख । उस पर नाना प्रकार के ताने, व्यंग्य ! वह घर से निकली ही थी कि उसकी ओर तर्जनी उठने लगी । पड़ोसिनों का गुपचुप । उड़ती कुछ आवाजें उसके कानों में भी पड़ीं ।

"कहाँ चली है मेनका ? किसका दिल जीतने ? ......घर का चिराग गुलकर बाहर का रौशन करने.....शराबी पति.....पिये भर तो कोई बात नहीं---हाथ छूटा हुआ है । मार-पीट करता है ।".....फिर घृणा का भाव हवा में तैर गया । विभा खून का घूँट पीकर रह गई ।

विपरीतता भी अनुकूलता का कारण बन जाती है । विभा को अपना प्रोफेसर याद आने लगा, जो किसी समारोह की सफलता पर पहले विरोधियों और दुष्टों को धन्यवाद देता था कि वह अड़ंगा न लगाता, तो शायद इतने उत्साह से वह समारोह की शानदार सफलता का प्रयास न करता ।

वह जल्दी ही बाजार से लौट आई । वैभव जाग गया था । चारों ओर टुकुर-टुकुर देख रहा था, मानो वह किसी नई जगह आ गया हो । घर पहुँचते ही विभा ने मुस्कराकर उसका अभिवादन किया । वैभव उसे एकटक देखता रहा । अपलक, आँखों-में-आँखें डाले जैसे पहली बार उसे देख रहा हो । अंग-प्रत्यंग का मुआयना कर रहा हो । विभा लजा गई । संकोच में सिकुड़ गई । लज्जा की आभा ने उसे और भी सुंदर बना दिया । विभा ने ही उसका मौन भंग किया—

"जागिए कृपानिधान पंछी वन डोले"— पता नहीं प्रभाती की यह पंक्ति किस

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

अचेतन से बज उठी। इस 'कृपानिधान' शब्द में कितना समर्पण था— कहा नहीं जा सकता। दिन के ग्यारह बज चुके थे। पक्षी के वन में डोलने का सवाल ही नहीं उठता था। परंतु जब जागे तभी सबेरा— यही सत्य था।

नशे के टूटने पर वैभव का अंग-प्रत्यंग दर्द से टूट रहा था। विभा ने उसे दबाना शुरू किया। उसे सुकून मिलने लगा। उसके हाथ विभा को आलिंगन में जकड़ने के लिए घेरा बनाने लगे। विभा खोती गई। समय की सीमा नहीं रही। उसे विश्वास नहीं होता कि यही वैभव रात को कैसा खूंखार भेड़िया हो जाता है। उसने इसे दुःस्वप्न जानकर परे ढकेल दिया।

शाम होते-होते वही नशे का दौर। वही गाली-गलौज। मारपीट। पर विभा धरा-सी रहती सहिष्णु। बादल के छँटने का इंतजार करती। फिर दिनभर छाया की तरह डोलती वैभव के साथ। न कोई शिकवा, न शिकायत। प्रशंसा और प्रशंसा। शायद यही नुस्खा काम कर जाए।

वैभव को आश्चर्य लगता। अपनी आँखों पर भरोसा नहीं होता। अपना कुकृत्य याद आता। पर उतनी सहजता से क्षमा भी माँग नहीं सकता था। पुरुष होने का अहंकार। उसकी पूँछ कहीं झड़ न जाए, पर एक मन कहता-"माफी माँग ले विभा से।" दूसरा मन कहता-'इतना जल्दी हथियार डालने से क्या फायदा! क्यों वह झुकेगा? बेहतर यह हो कि विभा के विरोध के बजाय उसे साथ देने की कोशिश की जाए।' यह सोचकर वैभव का मन मानो हल्का हो गया। सिर से भारी बोझ उतर गया हो।

विभा को लगा कि राक्षसों की नगरी में सेंधमार कर वह राम का संदेश देने में सफल होती जा रही है। स्त्री के जीवन के सामने कोई विराट लक्ष्य हो, उसके लिए एकाग्र मन से प्रयास हो, तो समाज, परिवार, व्यवस्था कोई बाधा खड़ी नहीं कर सकते। लगा कि विभा कुम्हार है और थपकी-चोट देकर वैभव-रूपी घड़े को आकार और सार्थकता दे रही है।

एक सफलता दूसरी सफलता की जननी होती है। धीरे-धीरे वैभव की बुरी लत छूटने लगी। सद्‌गुणों का प्रभाव पड़ने लगा।

विभा एक बार पलटकर सब कुछ देखती, तो लगता कि इतना दुर्गम मार्ग कैसे पार किया उसने, पर मन को संतोष भी मिलता। पता नहीं, यह सब वह कब तक सोचती रही। अचानक वह वर्तमान में आ गई। "यह तो बड़ी खुशी की बात है कि हम-लोग एक ही शहर में रहते हैं...अच्छा फिर मिल कब रही हो?...आज ही चलो मेरे घर पर।"

उसने अपनी व्यस्तता की लंबी सूची सामने कर दी और कहा कि पहली बार

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैं कॉलेज से लौटते हुए उसके घर आऊँ। रास्ते में ही उसका आवास पड़ता था। फिर अवकाश के दिन वह सपरिवार मेरे घर आएगी। मैंने उसका प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। जब तक वह नजर से ओझल नहीं हुई, मुस्कराती रही। हाथ हिलाती रही। लगा कि मेरी जिज्ञासा के कई पक्ष स्वयं उत्तरित होते जा रहे हैं। किसी को कुछ कहने, व्याख्या करने और समझाने की जरूरत नहीं है। फिर भी, मन सब कुछ साफ-साफ जानना चाहता था।

मैं घर, परिवार और नौकरी के मध्य संतुलन बनाए रखने में स्वयं परेशान रहती थी। अस्त-व्यस्त। फिर विभा से मिलने का समय निकालना कठिन था, पर कहानी लिखने की लालसा, शांत-एकांत की तलाश ने बड़ा जोर मारा कि विभा से शीघ्र मिला जाए। शायद कहानी का अच्छा प्लाट मिल जाए कि चरित्र-विकास की आड़ी-तिरछी रेखाओं के अध्ययन से कहानी में नई जान आ जाए।

मैंने शनिवार को ढाई बजे अपनी क्लास लेकर उसके घर जाने का मन बनाया। मन में नाना प्रकार के प्रश्न थे। तक-वितर्क थे। कहीं हर्ष था। कहीं विस्मय। कहीं दोनों का सम्मिलित रूप। मैं दो बजकर पचास मिनट पर उसके द्वार पर दस्तक दे रही थी। बारह-तेरह साल के एक किशोर ने दरवाजा खोला। मुझे पहचानते देर नहीं लगी कि वह विभा का बेटा है। उसने मुझे पहचान लिया और 'अंटी' कहता हुआ मेरा चरण-स्पर्श किया। मैंने उसे बाँहों में भर लिया। तब तक विभा भी आ गई और कहने लगी—"इसे तुमसे मिलने की बड़ी उत्सुकता थी। एक तो तुम मेरी अंतरंग सखी। इसकी मौसी, उस पर एक प्रोफेसर, लेखिका। यह तुम्हें देखने के लिए कितना उत्सुक था— नहीं कह सकती।"

मैंने जल्दी-जल्दी उसके तीन कमरे वाले मकान के एक-एक कमरे, वहाँ की व्यवस्था, सामान, सजावट आदि पर सरसरी दृष्टि डाली। इसलिए नहीं कि उसकी कमी ढूँढती थी कि उससे ईर्ष्या थी, बल्कि इसलिए कि सुनती थी कुछ। देखती थी कुछ। विभा से मेरी यह उत्सुकता और जिज्ञासा देखी नहीं गई। नारी भला नारी के हृदय की बातें न जाने? एक का तार दूसरे हृदय को किस प्रकार जोड़े रहता है—यह रहस्य धीरे-धीरे खुलने लगा था।

विभा बिना किसी औपचारिक आतिथ्य भाव और सत्कार के मुझे एक कमरे में ले गई। बेटे आकाश को हिदायत करती गई—

"बहुत वर्षों के बाद मिले हैं हम लोग। लंबी बातचीत चलेगी। जरा एकांत चाहिए हमें। पापा आ जाएँ, तो तुम्हीं संभालना जरा।" विभा को ही सब कुछ परत-दर-परत खोलने की हड़बड़ी थी। कमरे में पहुँचते हुए लगा—वर्षों से बँधा बाँध एकबारगी टूट गया है। जल ही जल है चारों ओर। आँसुओं की बाढ़ आ

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गई है । मैं हतप्रभ थी । विस्मय-विमूढ़ । मैंने उसकी पीठ थपथपाई । उसकी घनी केश-राशि में उँगलियाँ फँसाकर उसको सहलाती रही । वह फफक-फफककर रोती रही । मैंने सोचा बदली बरस जाए । मनाकाश साफ हो जाए । निरभ्र स्वच्छ । फिर कुछ पूछा जाए ।

धीरे-धीरे वह प्रकृतिस्थ हुई और बोली— "कौन मेरा इतना अंतरंग और आत्मीय है, जिसके आगे जी भरकर रो पाऊँ । पति मेरे आँसू देख नहीं पाते । इसलिए कि एक जमाने में उन्होंने खूब रुलाया है मुझे । आज पश्चात्ताप के आठ-आठ आँसू स्वयं बहाते हैं और मेरा एक कतरा आँसू भी नहीं देख पाते ।"

"मैं यह पहेली समझ नहीं पाई, विभा ?"

"तुम समझोगी कैसे सुप्रिया ? तुम्हें मनोनुकूल पति मिल गया । सुदर्शन । विद्वान । तुम्हारी दिली-जज्बातों का ख्याल रखने वाला और मुझे ?"...यह कहकर वह चुप हो गई, मानो अतीत की गुफा में हाथ से कुछ टटोल रही हो । फिर स्वयं बोलना शुरू किया ।

"मेरे पिता को क्या चाहिए था ? बेटी सुखी रहे । उनकी बेटी राज करे । उनकी कल्पना के अनुकूल ही मेरे पति का चुनाव हुआ । वह सुदर्शन हैं । धनी हैं, पर विवाह के समय वे सातवीं पास थे । पिता ने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया । जमीन-जायदाद थी । सालों भर मजे में दाल-रोटी मिलती थी । वर्ष के अंत में एक मोटी रकम जमा भी होती थी ।"

मैंने अपना धैर्य खो दिया । फिर पूछ बैठी: "फिर क्या हुआ विभा जो तुम इतनी परेशान और अस्त-व्यस्त हो ?" विभा सोचने लगी— "जब पाँव कुठौर में चले जाएँ, पाताल नाप लेना सहज हो जाए, मनुष्य अपनी जिद, मूर्खता पर डटा रहे, अपने अहंकार की खोल से जरा भी बाहर निकलना न चाहे तो दो ही उपाय शेष रह जाते हैं—कोई चमत्कार हो जाए और कोई गहरा सदमा धारा को मोड़ ले । वैभव के साथ दोनों घटित हुए । शराब की लत ने जुए की लत को जन्म दिया । एक छेद कई छेदों को बढ़ावा देता है । एक अनर्थ कई अनर्थों का कारण बनता है । विपत्ति की अनंत शृंखला का भी । एक दिन विभा घर लौटी, तो देखा—नीलामी की डुगडुगी बज रही है । घर नीलाम करने की सारी तैयारी हो चुकी है । जुए और शराब की नदी में सारी संपत्ति बहने वाली है । उसे काटो तो खून नहीं । कुछ काल के लिए वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो गई । फिर अपने ऊपर ध्यान गया । विपत्ति के समय रोम-रोम चेतना का केंद्र बन जाता है । उसके मन में आया कि अपने भैया (नामी वकील) से मदद माँगूं । पिता जी को याद करूँ । फिर सोचा कि मुमकिन है, यही झटका वैभव के जीवन में नया प्रभात लाने वाला हो । फिर

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

नाव जहाँ पहुँच गई थी, वहाँ से पीछे लौटना संभव नहीं था। यथास्थिति से दूर होना भी परिवर्तन का कारण होता है। कारण, वह मथता है। झकझोरता है। अंतर्दृष्टि देता है।

अपने बचे-खुचे आभूषण, जरूरी कागजात, नकद रूपये लेकर उसने अधिकारी को नीलामी करने की सहमति दे दी। देखती रही सब चीजें हटते हुए, जिसके साथ उसकी यादें जुड़ीं थीं। पलंग, फर्नीचर, डाइनिंग टेबुल, जो वैभव के साथ-साथ रहने के सबूत थे—एक-एक कर निकल रहा था। विभा चुपचाप देख रही थी। घर फूंक तमाशा का भी अपना आनंद है। शायद इसी राख में नया अंकुर फूटे—यही आशा उसे बाँधे हुई थी। विभा दृढ़ थी। शांत। सब कुछ लुटते हुए भी अचानक ब्रेक लगा और वह मुझे कहने लगी—

"तुम जरा गंभीरता से सोचोगी, तो स्वयं सब कुछ समझ जाओगी। सब कुछ साफ दिखाई देगा। बिना किसी धुंध के...मनुष्य विशाल कुल में उत्पन्न हो। रूप और जवानी से संपन्न हो, पर उसे विद्या नहीं हो, तो वह निर्गंध किंशुक (सेमर का फूल) के समान लगता है।

"फिर क्या हुआ विभा जो तुम्हारे चेहरे पर अतीत का दर्द रह-रह कर दस्तक दे जाता है ?..."

"होना क्या था ? मूर्ख को विवेक कहाँ ? विवेकहीन को उचित-अनुचित के निर्णय की क्षमता कहाँ.....उन्हें लग गई जुए की लत। शराब की लत। फिर तो आए दिन मुझ पर हाथ भी उठाने लगे। ...जमीन बिकने लगी। कर्ज चढ़ने लगा। गांजा के यार किसके, दम लगाए और खिसके। कर्ज चढ़ने लगा, तो पीना कम हो गया।

"मित्रगण आने से कतराने लगे। सारी भड़ास मुझ पर उतरने लगी।... उसी समय आकाश भी पेट में आ गया।" यह कहकर उसका चेहरा तन गया। वहाँ आक्रोश, संकल्प, निर्णय का सम्मिलित रूप साफ-साफ दिखाई देने लगा। मैंने झट पूछ ही दिया— "तुम तो आई.ए. पास थी। क्लास में अव्वल आती थी। क्रांतिकारी थी तुम। दहेज के खिलाफ कैसा नारा बनाया था। नाटक में कैसा क्रांतिकारी रोल लिया था। लड़के तुम से भय खाते थे।" वह बीच में ही बोल पड़ी—"मुझे अपना पुराना रूप याद आने लगा। मैंने सोचा कि मुझसे बढ़कर कौन होगा इनका हितैषी ? मैं मार खाती, उफ नहीं करती। उनकी सेवा में कोई कसर नहीं करती। परंतु जब वह नशे में नहीं रहते, सामान्य रहते, तो उन्हें मान-मनुहार नाज-नखरे से अपनी ओर खींचती। धीरे-धीरे वह रास्ते पर आते गए। मैं ही उनका गुरु, अभिभावक, मित्र, पत्नी सब कुछ.....वह मुझ पर भरोसा करने लगे। यह जीवन का नया प्रभात था, नई तैयारी, नए प्रयोग। मैंने इसे चुनौती माना और सोई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शक्ति एकजुट होकर काम करने लगी ।" वह लगातार बोलती गई "बड़ी लंबी कहानी है सुप्रिया । यह सुनाने में मुझे अच्छा लगता है, पर अतीत के कांटे अंग-अंग में चुभने लगते हैं । मैं आपे में नहीं रहती, सुप्रिया ! इसलिए जो जख्म भर गया, उसे हरा करने की कोशिश न करो तो आभार मानूँगी । मैं अतीत की मरी बंदरिया को छाती से लगाना नहीं चाहती । मुझे वर्तमान पुकार रहा है सुप्रिया । तुम रंगमंच पर नाटक देखने की कोशिश करो, उसमें आनंद लो—नेपथ्य की तैयारी पर ध्यान मत दो, सुप्रिया !"

मैं अपने को रोक नहीं सकी—"क्षमा करना, मैंने तुम्हारी दुखती रगों पर अंगुली रख दी । वैसी तुम्हारी भूमिका सराहनीय रही, विभा । पुरुष की नकेल स्त्री के ही हाथों रहती है । वह चाहे तो उसे मनुष्य बना दे, उन्नति के शिखर पर चढ़ा दे, चाहे तो चुप देखती जाए, वह पाताल की गहराई नाप ले । पतन की चिकनी राह पर फिसलते देर कहाँ लगती है ।" कहती चली गई ।

"हाँ, यह मैं पूछना ही भूल गई कि तुम्हें एक ही बेटा है या और संतान भी हुई ?"

"तुम्हें याद होगा कि संस्कृत पंडित कहा करते थे—'गुणी पुत्र एक ही श्रेष्ठ है न कि सैकड़ों मूर्ख पुत्र । एक चन्द्रमा ही रात का अंधकार हर लेता है न कि हजारों तारे ।" फिर कुछ लजाकर, सकुचाकर वह बोली, जैसा इनका रवैया था, संतान एक दर्जन से कम होती क्या ? पर मैंने इन्हें मनाया । बहुत कटुता से गुजरना पड़ा, पर वह मान गए। मैं यहाँ भी जीत गई ।" यह कहते हुए कई घटनाएँ उसके मानस-क्षितिज पर तैर गईं । तुम्हारा यह पुत्र गुणी होगा—यह तुम कैसे जानती हो ?"

"यह भी पूछने की बात है, सुप्रिया ? जब मैंने वैभव जैसे दिशाहारा को रास्ते पर लगाया, तो इसे लाना आसान है ।" यह कहते हुए विभा का चेहरा दीप्त हो उठा । उसका रोम-रोम खिल उठा ।

इसी बीच उसका पति वैभव आ धमका । उसने बड़ी शिष्टता से मुझे नमस्कार किया और कुशल-क्षेम पूछकर बाहर चला गया । मैं देखती ही रह गई उसे । विभा ने ही टोका, "क्या सोच रही हो, सुप्रिया ?"

मैंने विभा की ओर आदर से देखा । मैं सहज ही अनुमान नहीं कर पाई कि वह मेरी नजर में कितनी महान हो गई है ! जो आग में जन्मता नहीं है, पर आग से ही खेलता है, आग में ही अपना रास्ता बनाता है, वह दूसरों के लिए स्वयं ही उदाहरण हो जाता है । मैं मन-ही-मन यह सोचती रही और प्रत्यक्षतः विभा को जकड़कर पकड़ लिया । याद नहीं, कब तक पकड़े रही । ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खंड-खंड में

● डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

अचानक वह जड़ हो गया, मानो शिलाखंड हो ! एकदम निश्चल । इसके कुछ क्षण पहले वह हँस-हँस कर रेखा से बात कर रहा था । उसका प्यारा मोनू सामने खेल रहा था । उसी के भविष्य को लेकर वे योजना बना रहे थे । रमेश सरकारी नौकरी कराने के पक्ष में था, जब कि रेखा इतनी सारी सुविधाएँ देखकर बेटे को रास्ते पर लाना चाहती थी । रमेश एक बार जोर से हँसा था । पता नहीं चला था—यह हँसी विषाद की थी, या आह्लाद की ! फिर वह मौन हो गया था । मूर्तिवत ।

लोग उपचार में लग गए थे । रेखा दहाड़ें मार कर रोने लगी थी । रजनी को लगा था कि उसके एकमात्र आश्रय की साया उठ रही है । उसे अपने भविष्य पर प्रश्नचिह्न दिखाई पड़ने लगा था, पर उसकी लाचारी थी । न वह खुलकर रो सकती थी और न सेवा-सत्कार और उतनी आत्मीयता ही दिखा पाती थी । क्योंकि उसकी हैसियत एक नौकरानी की थी । बस एक आया भर ! कमाओ दिन भर और बदले में आश्रय और पेट की भूख मिटाने के लिए रोटियों का जुगाड़ । उसके मनोराज्य से किसी को क्या मतलब था ! वह अपने-आपसे जूझती थी । अपने में ही सिमटी-सिकुड़ी जिंदगी घसीट रही थी । न भविष्य का सपना, न वर्तमान के सहेजने की धुन । अतीत की कटु स्मृतियाँ बेचैन करती थीं, पर उसमें भी एक रस था, जिसकी खुमारी गई-कई दिनों तक बनी रहती थी ।

रमेश तन से जड़ हो गया । अवश, पर मस्तिष्क उसका बड़ी तेजी से काम कर रहा था । वह अपने किसी अंग से इशारा भी नहीं कर पाता था, पर चेतना उसके प्राणों को आलोकित कर रही थी । उसकी स्मृति बड़ी साफ हो गई थी, एकदम स्पष्ट, मानो पूरा अतीत आँखों के आगे नाच रहा हो । उसे विभिन्न प्रकार की स्थिति से गुजरना पड़ रहा था । वे घटनाएँ जहाँ उसे गमगीन बनाती थीं, वहाँ लुत्फ उठाने और मजा लूटने के अवसर भी देती थीं । वह किसी तेज धारा में बहा जा रहा था, जहाँ यादों के सैलाब भरे थे ।

कॉलेज के रंगीनियों भरे दिन थे । समय को पर लग गया था । पता नहीं चलता था कि कैसे दिन बीता, शाम आई और रात चुपचाप खिसक गई अगली

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुबह की अगवानी में। रमेश बड़ा तेज और मेधावी लड़का था। ऑनर्स में टॉप करके एम.ए. में नाम ही लिखाया था कि एक दिन अचानक एक लड़की ने पुस्तकालय के गेट पर रोक लिया। अप्रतिम सौंदर्य, और वेश-भूषा देखकर यह ठगा-सा रह गया था। मंत्रमुग्ध-सा उसने पूछा—"माफ करना, तुम मेरी ही कक्षा में अंग्रेजी पढ़ते हो न ! हाँ, याद आया तुमने ट्रेजेडी लिया है स्पेशल पेपर, मैंने भी लिया है।" लगा, वीणा की आवाज आ रही है। कॉलेज में पढ़ा रमेश दिल्ली जे.एन.यू. में आ गया था। वह हक्का-बक्का हो गया। सोच नहीं सका कि इस स्वगर्विता को क्या उत्तर दे ! पर अपने प्रांत से टॉप करने का अपना कुछ अहम भी होता है। वह भला चुप कैसे रह सकता था।

"शुक्रिया, तुम्हारा अनुमान ठीक ही है। क्या मैं जान सकता हूं। तुम्हारा नाम ?"

"मुझे लोग रजनी मल्होत्रा कहते हैं।"

"वाह, वाह लोग कहते हैं, मतलब तुम नहीं कहती हो ? यह नाम सर्टीफिकेट में नहीं आया है क्या ?"

"तुम भी बात का खूब बतंगड़ बनाते हो।"

"अच्छा अलविदा, फिर मिलेंगे।"

पता नहीं, वह कौन-सी अज्ञात प्रेरणा थी कि वह प्रथम मुलाकात शनैः शनैः घनिष्ठता में बदल गई। लगभग रोज ही मिलना-जुलना होता था, हँसी खुशी का आलम था। रमेश रजनी की आँखों में झाँक कर कभी कहता, "अच्छा बताओ, पिताजी मेरे विवाह के लिए दबाव डाल रहे हैं, मैं क्या उत्तर दूँ ? कैसी लड़की से विवाह करना ठीक हो सकता है ?"

"मैं यह सब क्या जानूँ ? यह तुम्हारा व्यक्तिगत मामला है। इसमें मैं टाँग अड़ाने वाली कौन हूँ ?"

"तुम मेरी दोस्त हो। दिल से मुझे प्यार करती हो। मेरी आशा-आकांक्षाओं की वाटिका तुम्हारी ही मुस्कान से हरी-भरी रहती है। फिर तुम उदासीनता दिखाती हो ?"

तनिक सकुचाते हुए धीरे-धीरे रजनी ने कहा— "मैं तुम्हारी दिली दोस्त हूँ ही। तुम्हारी आशा-आकांक्षा की केंद्र-बिंदु भी। फिर जीवन-साथी के चुनाव के लिए मुझसे राय लेने की क्या जरूरत आ पड़ी ?" यह कहकर रजनी ने रमेश के सीने में मुँह छिपा लिया। वह उसके सिर के बालों पर हाथ फेरने लगा। पीठ थपथपाने लगा। उसे इतनी खुशी कभी नहीं हुई थी।

रमेश को इंग्लैंड में पढ़ने की अनुमति मिल गई थी। बाधा थी धन की कमी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसका बाप साधारण शिक्षक था, जो बमुश्किल उसे पढ़ाई का खर्च भेजा करता था। उसके मन में रमेश के विवाह में दहेज लेकर उसे विदेश भेजने का मंसूबा था। यदाकदा अपने भविष्य के बारे में रमेश रजनी से बातचीत किया करता था। अपनी गरीबी का रोना भी रोया था। वह जानता था कि रजनी के सामने भेद की सारी दीवारें टूट गई हैं। इससे छिपाना क्या ? एक दिन लॉन से घूमकर लौटते हुए दीर्घ श्वास छोड़कर उसने कहा था; "खुदा ने बड़ी कृपा की कि जो तुम्हारा साहचर्य मिला। मेरा जीवन सार्थक हो गया। मेरी जिंदगी नए-नए अर्थ अर्जित करने लगी। कल्पना के संसार ने न मालूम क्या-क्या सर्जना कर दी, पर मैं सोच कर ही विषाद के सागर में डूबने लगता हूँ कि कहीं दहेज के लोभ में पिता जी यह रिश्ता स्वीकार न करें, तो ?"

"तुम बेफिक्र रहो, मेरे पिता जी व्यापारी हैं। तुम्हें भरपूर मदद दे ही सकते हैं, दस लाख तक भी। मैं समझती हूँ, इससे तुम्हारा काम चल जाएगा और इससे अधिक तुम्हारी बाजार में साख भी नहीं होगी। बात रही तुम्हारी पात्रता और औकात की। इसके लिए पिता जी आगा-पीछा सोच सकते हैं, पर मेरी ओर से अनुशंसा ही काफी होगी।"

"रजनी, तुम कितनी महान हो ! सचमुच, तुममें कितना बड़ा दिल है। आज तुम्हारे सामने मैं कितना बौना लग रहा हूँ। मुझे अपनी लघुता का ऐसा एहसास पहले कभी नहीं हुआ था।" उसने बढ़कर रजनी का हाथ थाम लिया था। वह भाव-विभोर हो गई। उसने पलकें बंद कर ली थीं।

"तुम तो आलाप करने लगे। लघुता-विराटता का प्रश्न नहीं है। सवाल है दोनों के प्रेम पर विवाह की मुहर लगने का। इसमें तुम्हारी पसंदगी के साथ अर्थ की भी जरूरत है, जिसकी व्यवस्था आसानी से हो सकेगी। तुम्हारे पिता जी भी खुश। हम लोग तो खुश हैं ही।"

हँसी-खुशी, मान-मनुहार के दिन इसी प्रकार बीत ही रहे थे कि एक दिन रजनी के भाग्याकाश में धूमकेतु की तरह उसके पिता की बीमारी छा गई। कैंसर ऐसा जानलेवा रोग, जिसके लिए पैसे पानी की तरह भले ही बहा दिए जाएं, सम्राट् भिखारी बन जाए, पर व्यक्ति का रोग के चंगुल से छूटना असंभव हो जाता है। बंबई में उसकी चिकित्सा जो चली, तो तब तक चलती रही, जब तक रजनी के ऊपर से पिता की साया नहीं उठ गई। उसी हादसे में माँ मर गई और मल्होत्रा कंपनी का दीवाला निकल गया था। जमीन-मकान सब बिक गए। महलों की रानी दर-दर की ठोकरें खाने के लिए विवश हो गई। नियति-नटी के कुचक्र से भला कौन बच सकता है ? जिसे उसने कठोर आधार समझ लिया था, वह कैसे बह गया और वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मंझधार में डूबने लगी, इसका पता भी नहीं चला। परिस्थिति को बनते-बिगड़ते देर ही कितनी लगती है ! राजा का रंक हो जाना कठिन काम है क्या ?

उधर, रमेश का बुलावा इंग्लैंड से आ गया। एम० ए० में उसने टॉप किया। रजनी की यादों में वह खोया रहता। कुछ दिनों तक पत्र आए, फिर रजनी को जीवन और मृत्यु से संघर्ष करने में पत्र लिखने की फुर्सत कहाँ थी। रमेश को उसके पिता की जिद पर विवाह के लिए तैयार होना पड़ा। उस रात वह बहुत रोया। रोता रहा। उसे लगा कि वह अपने अरमानों को सदा के लिए दफनाकर लौटा है। रजनी की यादों से उसे बल मिलता था।

सभी मनुष्य परिस्थिति के दास नहीं होते। जीवट वाले अपनी प्रवृत्तियों के अनुकूल परिस्थितियों को ढाल लेते हैं, पर इतनी हिम्मत और जुझारू शक्ति सब में नहीं होती। उसी दिन रमेश को पिता के निर्णय के आगे झुकना पड़ा। वह कितना शर्मिंदा हुआ, कितना पछताया, जब विवाह के बाद उसे पता चला कि उसकी पत्नी रेखा को मुश्किल से तीसरी जमात तक की तालीम मिली है। उसने अपने मन को समझाया—चलो, मादा तो मिली है। नर के संयोग से एक-दो बच्चों की माँ हो ही जाएगी। 'माँ' नाम की सार्थकता सिद्ध करेगी—मैं पिता कहलाऊंगा।" हृदय पर भारी पत्थर रखकर उसने परिस्थिति से तत्काल समझौता करना ही उचित समझा था।

वह पांच वर्षों तक विदेश में रहा। रजनी अब थी नहीं, जिसकी यादों में खोया रहता। रेखा को पत्र लिखना और मन का हाल बताना उसे बड़ा बुरा लगता था। फर्ज अदायगी से वह बाज नहीं आता था। धुन का पक्का, लगन का धनी और मेहनती था रमेश। उसने डॉक्टरेट किया और पत्रकारिता में भी उपाधि हासिल की। फिर क्या था ! भारत लौट कर वह दिल्ली में बड़े पत्र का संपादक बन गया।

उसके ओहदे और रुतबे का क्या कहना ! शानदार बंगला, विशाल लॉन, नौकर-चाकर, शोफर—सब कुछ और साथ में पत्नी रेखा। उसकी जिंदगी किसी प्रकार कट रही थी। वह बाहर से सुखी मालूम होता था, परंतु उसका भीतर रिक्तता के हाहाकार से भरा रहता। लाख चाहकर भी आदमी अतीत से दरकिनार नहीं हो पाता। विषैली यादें हों या मधुर, शत्रु हो या मित्र की करतूत हो, मनुष्य सबको याद करता है और किसी बिंदु पर उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता। रेखा बड़ी सरल और सामान्य नारी थी। वह पति के हृदय के झंझावातों को क्या जाने ? जान भी जाए, तो क्या फर्क पड़ता है ! अपने मनोराज्य का स्वामी मनुष्य खुद है। वह उसमें स्वच्छंद विचरण करता है। कोई हस्तक्षेप करना भी चाहे, तो वह क्षणिक है रमेश रजनी की यादों में रात-रात भर खोया रहता। पत्नी कारण पूछती, तो करवट बदल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कर पड़ जाता।

फरवरी का महीना था। वसंत अपने पूरे तामझाम के साथ आ गया था। हवा में खुमारी थी। वातावरण में गजब की मादकता ! नाना रंग के फूल खिले थे। कनॉट प्लेस में काफी भीड़ थी। रमेश सुंदरियों की भीड़ को एक क्षण रुक कर निहार ही रहा था। पता नहीं, उसकी आँखें क्या ढूँढ रही थीं कि अचानक किसी आवाज से चौंक गया। वह कटकर रह गया कि उसकी चोरी पकड़ ली गई। "हैलो रमेश ! तुम ? यहां ? कैसी लगी दिल्ली ? सब ठीक-ठाक तो है ?" उसे सहसा अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ कि रजनी ही है यह, पर सचाई वही थी। उसने अपने को सहज बनाते हुए कहा, "तुम कैसी हो, यह न बताओ। मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि इस जीवन में तुमसे फिर भेंट भी हो सकेगी।"

रजनी सादी पोशाक में थी। आभूषणों के नाम पर एक जोड़े कर्णफूल और हाथ में घड़ी। एक कलाई सूनी। उसने सजने-संवरने की कोई कोशिश नहीं की थी, पर वह पूर्ववत सुंदरी लग रही थी। कहीं कुछ नहीं बदला था। उसकी रूप-राशि को देखकर उसे लगा था—समय रुक गया। समय, जो जवानी को बुढ़ापे में तब्दील करता है, रजनी के लिए थम गया था। रमेश कुछ कहता, इसके पहले ही उसे एहसास हुआ कि रजनी कुछ कहने के लिए आतुर है, मानो बादल क्षितिज के नजदीक आकर बरसने की आकुल प्रतीक्षा कर रहा हो। उसने उसे बोलने देने के लिए बात बढ़ाई, "कहो रजनी। कैसे आना हुआ दिल्ली ? सब कुशल तो है ?"

"कुशल मत पूछो, रमेश ! तुम्हारी कुशलता ही मेरी कुशलता है। जब तक तुम मेरे साथ रहे, मैंने मुँह खोलकर कुछ नहीं मांगा। कभी कोई आग्रह नहीं किया, पर आज एक प्रार्थना करती हूँ। देखना, अस्वीकार नहीं करना। तुमने "ना" कहा, तो मेरी जिंदगी में फिर कुछ नहीं रह जाएगा। अभी ही क्या है ? सिर्फ जिंदगी की गाड़ी घसीट ही तो रही हूँ। मर-मर कर जीने का नाटक कर रही हूँ। इसलिए कि समाज के सामने मैं बड़े आदमी की इक़लौती बेटी हूँ।"

रमेश का शंकालु हृदय सिहर उठा। उसके मन के क्षितिज पर शंकाओं के मेघ मँड़राने लगे—कहीं यह विवाह का वही प्रस्ताव रख दे तो ! जैसे कोई सांप देखकर दूर से ही भाग खड़ा होता है, उसके पास जाना तो दूर, भागने के अलावा उसे देखने की हिम्मत जुटाना नहीं चाहता, उसी प्रकार रमेश ने उसकी बात पूरी होने के पहले ही कहा, "असंभव, बिलकुल असंभव। एक पत्नी के रहते दूसरी शादी। नौकरी से निकाल देगा मुझे। बंद करो उस़ अध्याय को रजनी। अच्छा, मैं चला।" ऐसा लगा कि उसने अचानक आग पर पैर दे दिया हो ! उसकी यादों

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को लकवा मार गया।

इतना कहकर पार्किंग की ओर बढ़ता कि रजनी ने उसे रोक लिया। उसे धरती घूमती दिखाई पड़ी। आँखों के आगे कीड़े उड़ते नजर आए। जिसे उसने ठोस चट्टान समझकर उस पर जिंदगी की नींव डालनी चाही थी, उसकी यह हालत ! खैर ! वक्त की मार से आदमी बदल जाता है। उसने हिम्मत बटोर कर कहा—"पिता की मृत्यु और उस हादसे से माँ के अचानक चल बसने के कारण मैं आज तक कुँवारी हूँ, रमेश ! एकदम पवित्र, अनछुई, अनाघृत पुष्प, पर जानते हो, मेरा यह कुँवारापन और निगोड़ा सौंदर्य मेरे प्राणों का ग्राहक बन बैठा है। नर भेड़िए मेरे चारों ओर मँडराते हैं, मैं उनकी मंशा खूब जानती हूँ। वे आश्वासनों का सब्जबाग दिखाकर मुझे नोचेंगे, खसोटेंगे और बाद में जली सिगरेट के समान ऐश ट्रे में फेंक देंगे।"

"मेरे पास वक्त नहीं है। अपनी बात जल्दी कहो, वरना मैं चला।" "रमेश ! भगवान के लिए एक मिनट रुकोगे ? मैं तुमसे कुछ नहीं चाहती। तुम्हें पति बनाने का स्वप्न कब का उजड़ चुका है। तुम्हें एक कुशल आया तो चाहिए ही। बस, तुम्हारा आश्रय चाहिए। मैं जी लूँगी रमेश। मैं जी लूँगी अपनी अस्मिता की रक्षा करते हुए। न मैं बैंक में नौकरी कर सकती, न अन्यत्र टिक पाती हूँ। आखिर ऐसा कब तक चलेगा रमेश ? बोलो न, जल्दी बोलो।" रमेश ने उसे कार की सीट पर बैठ जाने का इशारा किया और यंत्रवत गाड़ी चलाने लगा। वह किसी गंभीर चिंतन में लीन था कि अचानक ब्रेक लिया। उसका बंगला सामने था। लगा, वह नींद से जगा हो।

कुशल आया पाकर रेखा फूल उठी। रजनी पूरी निष्ठा के साथ घर के कामकाज में लग गई। लगा कि उसका पुनर्जन्म हुआ हो और वह पिछली बातें एकदम भूल गई थी। वह भरसक न कभी रमेश की ओर ताकती, न उससे बातें करने के बहाने ढूंढ़ती। वह अपनी सीमा जानती थी। समझौते की शर्त भी। अतः अपने काम पर तैनात रहती थी। रेखा को उसके सौंदर्य और चुस्ती से ईर्ष्या होती, पर पति के अगाध विश्वास की हवा बादल को तुरंत उड़ा देती।

रमेश को प्रोन्नति मिली थी। वह एक पत्र के संपादक से बढ़कर उस ग्रुप के सभी पत्रों का जनरल मैनेजर हो गया था। इस अवसर पर एक पार्टी का आयोजन किया गया। फर्म तथा नगर के गण्य-मान्य लोग आमंत्रित थे। बंगला ऐसे सजाया गया, जैसे सुहागरात के लिए दुल्हन। रेखा ने शॉपिंग के लिए जाने के समय रमेश से आग्रह किया, वह आया के लिए कोई रंगीन साड़ी अवश्य खरीद लें। रंगीन साड़ी का नाम सुनते ही उसके हृदय में स्मृतियों के महकते फूल खिलने लगे, उसका

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रोम-रोम अजीब सिहरन से भर उठा । एक बार सेमिनार में रजनी नीली साड़ी के मैंचिंग के साथ आई थी । सबकी नजर उसी ओर लगी थी । बाद में सभी साथियों ने इसके चुनाव की सराहना की थी और मन-ही-मन इसके भाग्य से ईर्ष्या भी । वह अतीत से वर्तमान में आ गया और नीले रंग का पूरा सेट रजनी के लिए खरीदता गया । रेखा ने उसके पसंद की दाद दी और रजनी भी उसे पहन कर अपने बीते दिनों में कुछ समय के लिए लौट आई । अतीत की बातें स्मरण भले ही नहीं हों, पर उसके संस्कारों की छाप पड़ ही जाती है ।

रजनी में वही मस्ती, वही चंचलता, वहीं शोखी आ गई । वह पार्टी में जिधर घूमती, नजरों की शिकार बन जाती । उसके रूप को देखकर लोग नहीं अघाते । रमेश अतिथियों से बातचीत करते हुए भी नजर बचाकर कनखियों से उसे देख लेता । इसी एक नजर देखने में कामनाओं और स्मृतियों की कितनी-कितनी लड़ियाँ जुड़ी थीं !

अचानक रेखा उसे ही ढूँढ़ती आई और रजनी का करिश्मा देख उसे सांप सूंघ गया । आस्तीन के सांप से भला किसे भय नहीं हो ? उसका क्रोध सातवें आसमान पर चढ़ गया । उसकी शान, उसकी सुंदरता और उस पर लोगों का विश्वास, फिदा होना उससे देखा नहीं गया । वह चिल्लाकर बोली, "रजनी, तुम्हारी यह हिम्मत । अपनी सीमा को पहचानो, जाओ यहां से । नाश्ते की प्लेटें लगाओ ।" रजनी का सारा जोश उसी प्रकार ठंडा हो गया, जिस प्रकार दरिद्र के मन में कामनाएं उठती हैं और ठंडी हो जाती हैं । उसने अपनी नजरें जो पृथ्वी में गड़ाई, सो गड़ाए ही रह गई । उसकी तंद्रा तब भंग हुई, जब दूसरी बार मालकिन की सिंह-गर्जना सुनी । वह बताए काम में लीन थी कि रेखा वहां पहुँची और कठोर स्वर में बोली, "नीच आया, कान खोल कर सुन ले, आज से तुम्हारा काम मुन्ना की देख-रेख भर रहा । खबरदार, जो मालिक से बात की ।" वह मुन्ना की देख-रेख में लीन हो गई, मानो उसका सारा जीवन इसी के निमित्त है । पूर्णतः लीन, तुष्ट, समर्पित ।

रमेश पार्टी के समाप्त होने के बाद चुप रहने लगा । रेखा को लगता था कि कोई काँटा उसके मन में चुभ रहा है, जिसे न वह निकाल पाता है और न पचा सकता है । कभी-कभी वह सोचती कि यह आया कैसी है बला की सुंदरी, सेवा की साकार प्रतिमा ! उस दिन बात-बात में साहब से किस फर्राटे के साथ अंग्रेजी बोलने लगी । जब भी उस पर काम का दबाव पड़ा, साहब ने बुरा माना । एक दिन तो हद हो गई । रजनी बुखार में तपती रही । साहब ने बहाना बनाकर उपवास कर लिया । मेरे बेटे को किस यत्न से रखती है, मानो अपनी संतान हो । बात में तो मिश्री घुली रहती हे । इतनी सहनशील भी कोई हो सकती है क्या ? कभी उसे रजनी पर की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

गई कठोरता पर पछतावा भी होता, पर मालकिन का दंभ इसे दबा देता।

रमेश की चुप्पी के पीछे मानसिक आघात था। कहाँ रजनी के साथ बिताए सुखद दिन। भविष्य के लिए की गई प्रतिज्ञाएँ। कहाँ परिस्थिति की विषमता के कारण सारे अरमानों की दिनदहाड़े हत्या। समाज, परिस्थिति, परिवार, बाधक भले हो सकते हैं दिली जज्बातों के प्रकट करने को, उसे अंजाम देने में, पर भीतर यह दफन हो और नाना रोगों का कारण बन जाए—इस पर किसका वश है ?

रमेश ऐसा बीमार पड़ा कि डॉक्टर निदान ही न दे पाएँ। सब यही कहें कि कोई मानसिक सदमा है। पता लग सके, तो उसे दूर करने की कोशिश की जा सकती है। पार्टी के दिन से जो चुप्पी छाई, वह भंग होने का नाम ही न ले। अंग-प्रत्यंग शिथिल हो गए। वह एकटक छत को निहारता। रेखा सामने होती, तो उस ओर देखता भी नहीं। रजनी आ गई, तो उसे अपलक निहारता, पर कोई भाव व्यक्त न कर पाता।

रजनी सब समझती थी। वह अपने जीवन की एक-एक बूंद निचोड़कर रमेश को बचाना चाहती थी। उससे खुलकर बोलना चाहती थी। नहीं था भय उसे रेखा का। जब जीवन मृत्यु के द्वार पर दस्तक दे रहा हो, तो भय की कहाँ गुंजाइश होती है ? मृत्यु से बड़ा भय होता है क्या ? रजनी अपने अतीत राग का बखान करती, तो रेखा का शेष जीवन कांटों से भरा हो जाता। एक ओर अपने पति से घृणा करती, दूसरी ओर रजनी से। फिर मुन्ना इन्हीं दो पाटन के बीच पिसता रहता। रमेश के प्रति रजनी में अशेष कृतज्ञता भाव था। मुन्ना उसी की अभिव्यक्ति था, जिसकी हर कीमत पर रक्षा होनी थी। रमेश तन से अवश अवश्य था, पर मन में ऐसा ही भाव उदय हो रहा था। उसकी बीमारी का एक ही निदान था—सब कुछ साफ-साफ प्रकट कर देना, जो नामुमकिन था। रेखा को रमेश के रोग का सही पता नहीं था। वह इलाज की व्यवस्था में जितना जागरूक रहती, उसका रोग उतना ही बढ़ता जाता था। वह इसी प्रकार के द्वंद्व में लीन था कि .... ।

उसके चिंतन-प्रवाह को कहीं ब्रेक लगा और उसी झटके के साथ उसके अंग-प्रत्यंग एक बार फिर क्रियाशील प्रतीत होने लगे। चिंता और आतुरता के कारण सहसा उनका ध्यान उस ओर नहीं जा सका। पहले तो सबकी नजरें रमेश के जड़ शरीर पर टिकी थी, जिसमें स्पंदन भर शेष था। अचानक उसमें कुछ हलचल हुई। चेहरे पर भावों की रेखाएं बनीं और मिट गईं। किसी ने इसकी ओर ध्यान भी नहीं दिया। वह कुछ कहना चाहता था। रेखा की आंखों से आंसू टपक पड़े। उसने मुश्किल से कहा ब...ब...रे र...ज...नी को अपनी बहन समझना। उसे मेरे कारण बहुत कष्ट हुआ। देखना... तुम भी कष्ट नहीं देना.... पानी.... । नाटक समाप्त

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हो गया। करुणा का दृश्य चारों ओर फैल गया। रुदन, सिसकी और हाहाकार !

रजनी न उसके निकट आई और न एक बूंद आँसू ही बहा सकी। वह तो लक्ष्मण-रेखा के भीतर कैद थी। राम के रहते इसमें कुछ छूट भी हो सकती थी, पर अब क्या बचा था। अगले दिन से ही उसने अपने को सहज और संयत कर लिया। स्कूल में नौकरी करने लगी और मुन्ने को वहीं पढ़ाने लगी। वह इतनी मायूस रहने लगी, बिखरी हुई, मानो रेखा के साथ उसने भी वैधव्य स्वीकार कर लिया हो। घर के पूरे उत्तरदायित्व को संभालती थी। परिस्थिति ने उसे कितना बुजुर्ग और सहनशील बना दिया था ! वह रेखा को सांत्वना देती, "मेम साहब, अब साहब तो नहीं रहे, छोटे साहब को बड़ा बनाना। उसे सही जीवन देना ही साहब की आत्मा को सुखी करेगा। अब चिंता मत करें। मैं आखिर किस काम आऊँगी।" यह कहकर वह घर के काम में ऐसे तल्लीन हो जाती, जैसे इसीलिए उसका जन्म हुआ हो।

एक दिन जब रजनी स्कूल से लौटी तो रेखा उसके लिए नाश्ते की प्लेट सजाकर तैयार थी। बड़े प्रेम से दोनों (रजनी, मुन्ना) को हाथ-मुँह धुलाकर नाश्ते पर बैठाने में सफल हुई। रजनी यह आशातीत, अप्रत्याशित प्रेम पाकर झूम उठी और सोचने लगी, "क्या उनके जीते जी यह संभव हो सका ? हो भी नहीं सकता था। एक रमेश कितने टुकड़ों में खंडित होता भला ! उसने अपने टुकड़े किए। उसका परिणाम तो मेरे साथ रेखा भोग रही है।" यह सोच कर वह रोने लगी। लगातार रोती रही, चुप तभी हुई, जब मुन्ना भी उसे देख कर फूट-फूट कर रोने लगा। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दर्द का रिश्ता

● किशन लाल शर्मा

"अजीब आदमी हो ! लाइट नहीं जलाई ? अंधेरे में ही बैठे हो ?"

विपिन ने आते ही स्विच पर हाथ रख दिया । कमरे का अंधेरा खिड़की से कूद कर बाहर भाग गया ।

दोपहर से ही बर्फ गिर रही थी । मौसम बेहद खराब और ठंडा हो चला था । ऐसे मौसम में भी विपिन राम बाबू के पास आए बिना न रह सका ।

राम बाबू शराब पी रहे थे ।

विपिन उनका प्रशंसक था। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में उनकी दर्दभरी कहानियां पढ़ कर वह उनको पत्र लिखने लगा था । किंतु उसे अपने किसी भी पत्र का उत्तर नहीं मिला था । पिछले साल वह लेक्चरॅर होकर शिमला चला आया था । यह नगरी उसके पसंदीदा लेख का गृह नगर था । इस शहर में कदम रखते ही वह सबसे पहले राम बाबू से ही मिलने गया था ।

विपिन ने राम बाबू की कहानियां पढ़ कर मन-ही-मन उनके व्यक्तित्व का खाका खींच लिया था । मिलने पर उसने उनको अपनी कल्पना के अनुरूप ही पाया था ।

लंबे बाल, बढ़ी हुई दाढ़ी, उदास चेहरा और सूनी-सूनी आंखें ! उन्हें देखकर लगा था कि वे दुखी हैं । आंखों में छिपी अव्यक्त उदासी उनके दुखित हृदय की निशानी प्रतीत हो रही थी । उसे उनके साथ सहानुभूति हो आई थी ।

उस दिन के बाद विपिन की हर शाम राम बाबू के घर गुजरने लगी । राम बाबू बहुत शराब पीते थे । वे हर समय खोये-खोये और उदास रहा करते । उनकी उस उदासी के पीछे जरूर कोई बात थी । लेकिन उन्होंने अपनी उस उदासी का कारण कभी नहीं बताया । उनकी उदासी का वह कारण जानना चाहता था । लेकिन उसे पूछने की हिम्मत ही नहीं होती थी । आज उन्हें पीता देख कर वह चुप नहीं रह सका ।

"बहुत हो गया !" विपिन ने राम बाबू के हाथ से गिलास ले लिया, "कितनी बार मना किया, इतनी मत पियो !"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"नहीं पियूं ?" वे विद्रूप हँसी हँसे, "अब यही तो मेरा सहारा है ।"

"शराब सहारा नहीं होती । यह कोई मदद नहीं कर सकती । सिर्फ शरीर को गला सकती है । उसे खोखला कर सकती है । एक दिन वह जीवन का अंत भी कर देगी ।"

"अच्छा है । अगर इस जीवन का अंत हो जाए तो !"

"तुम हमेशा ऐसी बातें क्यों करते हो ? शायद अकेले-अकेले रहते तुम में हताशा की भावना समा गई है ।" विपिन ने पूछा, "तुम अपना कोई साथी क्यों नहीं तलाश लेते ?"

"इससे अच्छा साथी और कौन हो सकता है ?" राम बाबू शराब की बोतल पर हाथ फेरते हुए बोले ।

"साथी ऐसा होना चाहिए जो सुख-दुख बांट सके ।" विपिन उपदेश देने लगा, "जिंदगी का लंबा सफर तय करने के लिए मर्द के साथ औरत का साथ रहना बहुत जरूरी है ।"

"यह नामुमकिन है ।" राम बाबू" बोले, मेरी शादी संभव नहीं । मैं शादी कैसे कर सकता हूं ?

"क्यों नहीं कर सकते ? शादी करने में हर्ज भी क्या है ?" विपिन ने पूछा ।

"विपिन, मुझे अब किसी से प्यार करने का हक नहीं है । मैं किसी को अपनी बनाने की सोच भी नहीं सकता ।"

"प्यार करने पर तुम पर ऐसी क्या पाबंदी है ? वह क्या मजबूरी है जो तुम्हें शादी नहीं करने देती ?" विपिन ने कुछ झुंझला कर पूछा ।

"यह तुम जानना चाहते हो ?" राम बाबू उसे देखने लगे ।

"हां ।" विपिन ने कहा, "मैं तुम्हारी शादी न करने की वजह जाना चाहता हूं ।"

राम बाबू विपिन को उधर से अपने बेड-रूम में ले गए । उन्होंने वहां की दीवार पर बनी अलमारी को पहली बार खोला । उस अलमारी में एक बेहद खूबसूरत और हसीन युवती के विभिन्न मुद्राओं में फोटो लगे हुए थे ।

"ये किसके फोटो हैं ?" विपिन ने आश्चर्य से पूछा ।

"यह माया है ।"

"माया ?" विपिन ने प्रश्न दागा, "कौन माया ?"

"मेरा अरमान, मेरा प्यार । मेरा दिल !"

"यूं पहेलियां न बुझाओ, राम बाबू ! मुझे साफ-साफ बताओ कि यह माया कौन है ?" विपिन का वही झुंझलाया हुआ स्वर था ।

"मैं तुम्हें वही तो बताने जा रहा हूं ।" कह कर राम बाबू माया की फोटो के

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सामने खड़े हो गए। ऐसे में वे अतीत में भटकने लगे।

राम बाबू और माया सरस्वती विद्या मंदिर में चौथी कक्षा में साथ-साथ पढ़ा करते थे। राम बाबू के पिताजी चुंगी विभाग में सामान्य क्लर्क थे। माया के पिताजी का अपना कारोबार था।

एक दिन वे होमवर्क करके नहीं आए थे। बाकी सभी बच्चे अपना काम करके लाए थे। मैडम उन पर नाराज हो गई थीं। उन्होंने अपने पास बुलवा कर उन्हें बेंतों से पीटा था। उनके हाथ सूझ गए थे। उनकी पिटाई होते देख कर माया के नन्हें-से दिल को ठेस पहुंची थी।

"बहुत चोट लगी है न?" माया ने उनके हाथों को अपने हाथों में लेकर पूछा था," बहुत दर्द हो रहा होगा?"

"हां।" वे इतना ही बोले थे।

"चुप हो जा। मैडम बहुत गंदी हैं।" वह उन्हें चुप कराने लगी थी। मैडम की नजर माया पर पड़ी तो वे चिल्लाई थी, "माया, क्या कर रही हो? बस्ता उठाओ और इधर आकर बैठो!"

माया और उनको उस दिन मैडम ने अलग बिठला दिया था। लेकिन उस दिन माया के नन्हें-से दिल में फूटा प्यार का अंकुर धीरे-धीरे बढ़ने लगा था। उनकी अच्छी दोस्ती हो गई थी। वे स्कूल में साथ खेलते, साथ खाना खाते और साथ ही अपने-अपने घरों को आते। दोनों का हाई स्कूल तक साथ रहा था।

इंटर में राम बाबू को रत्नमुनि में और माया को क्यू. वी. इंटर कॉलेज में प्रवेश मिला था। इंटर की पढ़ाई में उनका साथ जरूर छूट गया था। लेकिन वे फिर भी जब-तब मिलते रहते। दो वर्ष बाद इंटर पास करके बी. ए. में दोनों ने आगरा कॉलेज में प्रवेश लिया था। कॉलेज में आने पर वे जवान हो चले थे। उनका काफी समय साथ ही गुजरने लगा था। दोनों कभी ताज, कभी किला, कभी सिकंदरा तो कभी फतेहपुर सीकरी जाने लगे। वे घंटों एकांत में बैठे रहते थे। उनकी वह दोस्ती धीरे-धीरे प्यार में बदल गई। वे एक-दूसरे को चाहने लगे, प्यार करने लगे थे।

हर साल सावन के महीने में सोमवार को कैलाश में मेला लगता है। एक सोमवार को वे दोनों कैलाश चले गए थे। दोनों ने यमुना के नीले जल में स्नान किया। फिर पूजा करने के लिए वे मंदिर में चल दिए थे। माया शंकर भगवान की मूर्ति के आगे खड़ी हो, आंखें बंद किए पूंजा करने लगी थी। उसके उस रूप को देख कर राम बाबू भाव विभोर ही हो आए थे। न जाने उन्हें क्या सूझी कि उन्होंने वहीं रखे सिंदूर को अंगुली में लगा कर माया की मांग भर दी थी।

"राम बाबू, ये तुमने क्या किया?" माया हतप्रभ रह गई थी।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"तुम्हारी मांग भर दी।" वे भोलेपन से बोले थे, "तुम्हारी यह सूनी मांग अच्छी नहीं लग रही थी। देखो, तुम्हारी मांग में यह सिंदूर कितना अच्छा लग रहा है।"

"मांग में सिंदूर भरने का मतलब समझते हो?" माया गंभीर हो आई थी।

"नहीं तो।" वे बोले थे, "तुम बताओ।"

"औरत आदमी की शादी होती है। तब दूल्हा अपनी दुल्हन की मांग में सिंदूर भरा करता है।" माया बोली थी।

"तो क्या मैं तुम्हारा पति बनने के योग्य नहीं हूं?" उन्होंने पूछा था।

"मैंने यह कब कहा? हम बचपन से ही दोस्त हैं। एक-दूसरे को प्यार करते हैं। मजाक में ही सही, आज तुमने मेरी मांग में सिंदूर भरा है। अगर तुम मुझे सच्चा प्यार करते हो तो इस पर दृढ़ रहना।" माया ने कहा था।

"माया, मैंने जीवन में सिर्फ तुम्हें ही चाहा है। शादी करूंगा तो सिर्फ तुम्हीं से। अगर किस्मत ने हमें एक न होने दिया तो मैं आजीवन कुंवारा ही रहूंगा।" वे बोले थे, "ईश्वर को साक्षी मान कर आज वायदा करता हूं। अपने पैरों पर खड़ा होते ही मैं तुम्हें अपनी दुल्हन बना लूंगा।"

राम बाबू के मामा नेपाल में रहते थे। वहां उनका अपना कारोबार था। वे आगरा आए थे। तब उनकी बी. ए. की परीक्षा समाप्त हो चली थी।

"अब क्या करने का इरादा है?" मामा ने उनसे पूछा था।

"मैं नौकरी करना चाहता हूं।"

"यहां नौकरी मिलना इतना आसान नहीं है।" उनके पिताजी ने कहा था, "तुम इसे अपने साथ ही नेपाल ले जाओ।"

वे अपने पैरों पर खड़ा होना चाहते थे। इसलिए वे अपने मामाजी के साथ जाने की तैयारी करने लगे थे। आगरा से रवाना होने से पहले वे माया से मिलने गए थे। माया को उनके नेपाल जाने का पता चल ही गया था। वह उदास हो आई थी।

"राम बाबू, मुझे भूल तो नहीं जाओगे?" उसने कांपते होंठों से पूछा था।

"कैसी बातें करती हो! तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं है?" वे माया के गाल सहलाने लगे थे, "मैं अपने पैरों पर खड़ा होना चाहता हूं, ताकि मैं तुम्हें अपना सकूं।"

वे नेपाल चल दिए थे। वहां से वे माया को पत्र डालते। उनके हर पत्र में तन्हाई और मन न लगने का जिक्र होता था। वे मामा के काम में ज्यादा रुचि नहीं ले सके। उनके मामा मोहन का दोस्त हरनाम भी नेपाल में कारोबार करता था। उनकी बेटी थी रूपकला। हरनाम राम बाबू का रिश्ता अपनी बेटी से करना चाहते

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

थे। लेकिन वे उसके लिए तैयार नहीं हुए। मोहन ने अपने कारोबार के सिलसिले में उन को काठमांडू भेज दिया था। वहां उन्हें दो महीने रहना पड़ा था। उन दो महीनों में उन्हें माया को एक भी पत्र डालने की फुर्सत नहीं मिल पाई थी। वहां से वापस वीरगंज आते ही वे आगरा के लिए रवाना हो गए थे।

"तू अब आया है ?" आगरा आते ही वे अपने दोस्त रमन के पास पहुंचे थे। रमन माया के मुहल्ले में ही रहता था। उसने राम बाबू को देखते ही कहा, "मैंने तुझे पत्र डाला था।"

"मुझे तेरा पत्र नहीं मिला।" वे बोले थे।

"नहीं मिला ?" रमन ने आश्चर्य से पूछा था।

"नहीं।" राम बाबू ने उतावलेपन से पूछा था, "लेकिन हुआ क्या ?"

"होना क्या था ! माया की शादी हो चली है।" दोस्त ने बताया था।

"ये तू क्या कह रहा है ?" उनको विश्वास नहीं हो पा रहा था।

"माया की मां को कैंसर हो गया था। उसकी मां मरने से पहले अपनी बेटी के हाथ पीले करना चाहती थी। अपनी शादी की भनक लगते ही वह मेरे पास आई थी। मैंने उसी दिन तुझे पत्र डाला था।" रमन ने बताया था।

उन्हें सारी धरती तेजी से घूमती हुई प्रतीत होने लगी थी।

"माया तुम्हें बहुत चाहती थी। वह तुमसे ही शादी करना चाहती थी। उसने अपनी मर्जी के खिलाफ शादी करने का विरोध भी किया था। लेकिन तुम्हारे न आने की वजह से उसका विरोध कारगर न हो सका था। मां की बिगड़ती हालत को देख कर उसे उस शादी के लिए राजी होना पड़ा था।" रमन ने बताया था।

रमन के मुंह से सारी बातें सुन कर उन्हें गहरा धक्का लगा था।

"माया तेरे लिए पत्र दे गई है।" रमन ने उन्हें एक पत्र दिया था। वे उस पत्र को पढ़ने लगे थे:

"मेरे अपने राम बाबू !

तुम इतनी दूर चले गए और घर वालों ने जबर्दस्ती मुझे दूसरे के पल्ले बांध दिया। कैलाश के मेले में तुमने ईश्वर को साक्षी मान कर मुझे अपनी पत्नी बनाने की कसम खाई थी। मैंने सिर्फ तुम्हें ही दिल से पति माना है। मुझे उम्मीद है, तुम मुझसे मिलने जरूर आओगे।

सिर्फ तुम्हारी ही,
माया"

उसी दिन वे माया से मिलने दिल्ली चल दिए थे।

"तू अब आया है ! तेरे पीछे मेरे घरवालों ने मुझे जबर्दस्ती दूसरे की पत्नी बना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया।" राम बाबू को देखते ही माया उनसे लिपट कर रोने लगी थी।

"चुप भी हो जा, माया !" वे उसे समझाते हुए बोले थे, "दोष किसी का भी नहीं है। सब हमारी ही किस्मत का है। शायद ईश्वर की ऐसी ही इच्छा थी।"

"नहीं, राम बाबू ! मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकती।" माया ने उनको कस कर पकड़ लिया था, "तुम अब मुझे छोड़ कर चले मत जाना।"

"माया, समझदारी से काम लो। अब तुम किसी और भी ब्याहता बीवी हो। इस तरह का व्यवहार अब तुम्हें शोभा नहीं देता।" उन्होंने माया को अपने से अलग करते हुए कहा था।

"राम बाबू, मैंने सिर्फ तुम्हीं को चाहा है।" वह बोली थी, "मैं केवल तुम्हीं से प्यार करती हूं।"

"हमारा प्यार शाश्वत है। दुनिया ने इस जन्म में हमें नहीं मिलने दिया लेकिन अगले जन्म में हमारा मिलन जरूर होगा। इस जन्म में तुम्हारा कर्तव्य है कि........।"

"क्या ?" उसने चौंक कर देखा था।

"अशोक तुम्हारा पति है। तुम पर उसका पूरा अधिकार है। अब तुम मुझे भुला दो। उसके प्रति वफादार रह कर अपने पतिव्रता धर्म का पालन करो।"

"ऐसा कैस हो सकता है ?"

किसी पुरुष के स्वर को सुन कर वे चौंक पड़े थे।

सांवले वर्ण का सुंदर युवक कमरे में प्रवेश करते हुए बोला था, "समाज की नजरों में हम जरूर पति-पत्नी हैं। लेकिन एक छत के नीचे रहते हुए भी हमारे बीच पति-पत्नी के रिश्ते नहीं बने हैं। माया विवाहिता होकर भी कुंवारी कन्या है। वह बेदाग है। मैंने उसके तन का स्पर्श तक नहीं किया है।" अशोक ने सफाई दी थी।

"तुम कहना क्या चाहते हो ?" वे उसके कहे का आशय न समझ पाए थे।

"सुहागरात को माया ने मुझे सब कुछ बतला दिया था। उसकी बातें सुन कर मैंने उसे छुआ तक नहीं।"

"ये क्या कह रहे हो ?"

"ये ठीक कह रहे हैं।" माया ने भी अशोक की बात का समर्थन कर दिया था।

"यह तो अशोक की महानता है।" वे बोले थे, "लेकिन अब हमें वास्तविकता से समझौता कर लेना चाहिए।"

"यह तो तुम्हारे साथ सरासर अन्याय ही होगा। तुम दोनों ने पहले ही एक-दूसरे को पति-पत्नी स्वीकार कर लिया था। इस हिसाब से माया की मुझसे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

शादी नहीं होनी चाहिए थी। शादी होने के बाद मुझे सब बात का पता चलने पर मैंने माया को अपने पास तुम्हारी अमानत के रूप में रखा है। अब तुम लौट आए हो। मैं तुम्हें तुम्हारी अमानत लौटाना चाहता हूं।" अशोक ने कहा था।

"हमारे समाज के नियमों के अनुसार माया तुम्हारी पत्नी है। तुम्हारी पत्नी को मैं ले जाऊं, यह अनैतिक और नियम विरुद्ध भी है।" उन्होंने सफाई दी थी।

"राम बाबू, अगर मुझे सारी बातें पहले पता चल जातीं तो मैं माया से शादी करने को हर्गिज तैयार न होता। खैर! अब भी कुछ नहीं बिगड़ा है। भूल सुधारी जा सकती है।"

"वो कैसे?"

"मैं माया को तलाक दे देता हूं।" अशोक ने कहा था, "फिर तुम इसके साथ शादी कर लेना।"

"माया संपन्नता में पली है। वह तुम्हारे योग्य है। मैं बेरोजगार युवक उसे क्या सुख दे पाऊंगा?" बोले थे।

"तुम चाहो तो अपना खुद का धंधा शुरू कर सकते हो।" अशोक ने कहा था, "पैसों की चिंता न करो।"

"अशोक, तुम कहना क्या चाहते हो? तुम्हारी इस त्याग-भावना की मैं कद्र करता हूं। लेकिन मैं भी इतना स्वार्थी और खुदगर्ज नहीं जो तुम्हें तलाक देना पड़े।" वे सिर खुजलाने लगे थे।

"मैं दो प्रेमियों के बीच में दीवार नहीं बनना चाहता। मैंने सुहागरात को ही माया से वायदा किया था कि उसे तुमसे मिलवाऊंगा। मैंने आज अपना वह वायदा पूरा कर दिया है।" इतना कह कर अशोक कमरे से बाहर चला गया था।

"माया, अब तुम्हें यह सब स्वीकार कर लेना चाहिए। अशोक ही तुम्हारा पति है।" वे माया को समझाने लगे थे।

लेकिन माया उनकी किसी भी बात को मानने को तैयार नहीं थी। वह चाहती थी कि वे अशोक के प्रस्ताव को मान लें। लेकिन वे उसे मानने को तैयार नहीं हो पा रहे थे। जब वे किसी भी प्रकार से नहीं माने तो अपनी प्रेयसी को रोता-बिलखता छोड़ कर वहां से आगरा लौट आए थे।

"माया सीरियसली, कम सून!" उनके आगरा आने के तीसरे ही दिन उन्हें अशोक का तार मिला था।

तार पाकर वे हक्के-बक्के ही रह गए थे। वे तो माया को सही-सलामत छोड़ आए थे। फिर अचानक यह क्या हो गया? अनहोनी की आशंका से वे कांप उठे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उसी दिन वे दिल्ली पहुंच गए थे। अस्पताल के बाहर उन्हें अशोक मिल गया था। "तुम्हारे चले जाने के बाद माया बहुत चिड़चिड़ी हो आई थी। वह किसी बात को सुनने के लिए तैयार ही न होती थी। आज सुबह वह कार लेकर घर से निकल पड़ी थी। रिंग रोड पर एक टैंकर से उसकी कार टकरा गई थी।" अशोक ने बताया था।

उनके हाथों से जैसे तोते उड़ चले थे। तभी अशोक ने कहा था, "शायद तुमसे मिलने की आस में ही अब तक जिंदा है।"

अशोक उन्हें माया के पास ले गया था। उसके पूरे शरीर पर पट्टियां बंधी हुई थीं। अपनी प्रेयसी की उस दशा को देख कर उनका दिल भर आया था।

"माया, देख तो, कौन आए हैं!" अशोक बोला था।

माया ने आंखें खोल ली थीं।

अपने प्रेमी को पास आया देख कर माया की आंखों में एक विशेष चमक आ कौंधी थी, "तो तू आ गया!"

"माया, अब मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं भी नहीं जाऊंगा। अब हम दोनों साथ रहेंगे।" वे उसे धैर्य बंधाने लगे थे।

"राम बाबू, अब बहुत देर हो चुकी है।" माया किसी प्रकार बोली थी, "पहले तू नहीं माना। मुझे छोड़ कर चला गया था।"

माया के कहने में सचाई थी। अगर माया की बात पहले ही मान ली होती तो आज वह मौत के मुंह में नहीं जाती। ऐसे में वे अपने आपको ही धिक्कारने लगे थे।

"अब तू क्या सोच रहा है?" उस चुप्पी को माया ने ही तोड़ा था, "अब तो बातें कर ले।"

वे क्या बातें करते! माया की हालत देख कर उनका दिल रो रहा था, पर उसके सामने वे उस बात को जाहिर नहीं होने दे रहे थे।

"राम बाबू, सपने कभी सच नहीं होते। मैंने भी एक सपना देखा था। एक घर होगा, उस घर में मैं और तुम होंगे। अपने बच्चे होंगे। लेकिन देखो तो, मेरे सपने का क्या अंत हो रहा है!" माया रोने लगी थी।

"तू रो मत।" वे माया के आंसू पोंछने लगे थे, "तू ठीक हो जाएगी। तुझे अब कुछ नहीं होने का।"

"झूठी दिलासा मत दे रे!" माया ने कहा था, "देख, शादी जरूर कर लेना।

"ऐसा मत कह। मैं तेरे बिना नहीं रह पाऊंगा।"

"राम बाबू, मेरा शरीर चाहे तेरे साथ न रहे। लेकिन मेरी आत्मा हमेशा ही तेरे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

साथ रहा करेगी ।" उसने कहा था ।

"माया, ऐसे मत बोल ।" वे फफक कर रोने लगे थे ।

"अरे ! मर्द हो कर रोता है ! देख, मेरी तरफ देख ।" माया असहनीय पीड़ा सहती हुई भी मुस्करा दी थी । किसी प्रकार अशोक ने ही उन्हें चुप करवाया था ।

"अशोक, मैं तुम्हें कोई सुख नहीं दे पाई । तुमने सुहागरात को किए गए वायदे को पूरी ईमानदारी से निभाया ।" माया बोली थी, "समाज मुझे तुम्हारी पत्नी समझता है । लेकिन मैंने दिल से सिर्फ राम बाबू को ही अपना पति माना है । तुम जानते हो कि मैं विवाहिता होकर भी इस संसार से कुंवारी ही जा रही हूं ।"

"माया, चिंता न कर । ठीक होते ही मैं तुझे तलाक देकर तुम्हारी शादी राम बाबू से करा दूंगा ।" अशोक ने उसे आश्वासन दिया था ।

" अब कुछ नहीं हो सकता । मेरे जाने का समय करीब आ गया है । मेरे पति के रूप में राम बाबू का नाम जाना चाहिए ।" उसने अपनी अंतिम इच्छा प्रकट की थी, "बस, मैं यही चाहती हूं ।"

इतना कह कर माया ने हमेशा के लिए आंखें मूंद ली थीं । वह खामोश हो गई थी ।

विपिन को अपनी कहानी सुना कर राम ब्राबू चुप हो गए । विपिन को उनकी उदासी के साथ उनके अविवाहित रहने का कारण समझ में आ गया था ।

विपिन समझ गया कि राम बाबू की कहानियों में इतना दर्द क्यों रहता है ? शायद वे अपने ही दर्द को इन कथा-कहानियों में उड़ेला करते हों । ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सम्मोहन

• भगवती प्रसाद द्विवेदी

"पहचाना मुझे ?" इससे पूर्व कि तुम्हारा स्नेहिल सवाल मेरी तंद्रा को भंग करता, तुम्हारा उलाहनाभरा स्वर पुनः गूंज उठा, "जीवन की इस भागमभाग में कौन किसको याद करता है जी ! संवेदना के लिए कोई कोना खाली बचा हो, तब तो । किसे गरज पड़ी है किसी को पहचानने की !"

तुम्हारे अधरों की धवल चांदनी-सी निश्छल हँसी से मेरे अंतर्मन में रजनीगंधा के अनगिनत फूल अनायास खिल उठे । ऐसा लगा, जैसे स्वाति की बूंद की मानिंद तुम्हारे शब्द बूंद-बूंद रिसते हुए सीप-से हृदय में उतर गए हों और अंदर-बाहर अनगिनत मुक्ता-दीप जगमगा उठे हों ।

आंखें चार होते ही मेरी हड़बड़ाहट की वजह से प्याले की चाय छलककर मेज पर बिखर गई और मैं खुद पर लगभग झुंझलाता, साश्चर्य सवाल जड़ता हुआ उठ खड़ा हुआ, "शशि, तुम ?"

तुम पत्थर की प्रतिमा-सी खामोश खड़ी थीं । तुम्हारी कजरारी आंखें अब भी कुछ बोल रही थीं, मगर उन वाचाल नयनों की भाषा मैं भला कैसे पढ़ पाता ?

मैं बेताबी से बाट जोह रहा था कि पुनः तुम्हारे अधरों के बंद कपाट खुलें, हरसिंगार के पुष्प झरने लगें और मैं तुम्हारी बातों की डोर पकड़कर इस मनहूस निस्तब्धता पर काबू पा सकूं । मगर मेरी प्रतीक्षा के बावजूद जब तुम नहीं ही खुली तो मैंने ही माहौल का सन्नाटा तोड़ा, "कैसी बातें करती हो, शशि ? तुम्हें न पहचानने का अर्थ होगा अपने-आपको न पहचानना और स्वयं को भुला पाना क्या इतना आसान होता है ?"

"होता है बिरजू, बहुत आसान होता है ।" तुमने कुर्सी खींचकर बैठते हुए मुस्कान बिखेरी थीं, "वैसे यह उचित भी है, क्योंकि जख्म की टीस को यादकर ख्वाहमख्वाह जीवन को दर्दीला बनाने से क्या फायदा ?"

"नहीं शशि, तुम यह गलत सोच रही हो ।" तुम्हारी बात को काटने की मैंने भरसक कोशिश की थी, "जिस चिकित्सक ने किसी मरणासन्न मरीज को नवजीवन दिया हो, उसे भुला पाना क्या कभी संभव होता है ?"

पर नंगे सच को क्या कभी झुठलाया जा सकता है ? कहने को मैंने कह तो

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

दिया, मगर मेरा मन मुझे बार-बार धिक्कारने लगा। कैसा स्वार्थी निकला मैं ?

"नमस्ते जीजी !" आहट पाकर नमिता जब बाहर आई तो तुमने दोनों हाथ जोड़ दिए। पत्नी पर नजर पड़ते ही मैंने स्वयं को संयत करने का भरसक प्रयास किया, मगर मन बहकने से फिर भी रुका नहीं।

"जीजी, आप लोगों ने बिटिया का ब्याह रचाया और मुझे बुलाया तक नहीं ? क्या इस परिवार पर अब मेरा इतना भी हक नहीं रहा ?" तुमने शिकायत भरे लहजे में प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी।

"क्या बताएं, शशि ! दरअसल शालिनी की शादी इतनी जल्दबाजी में तय हुई कि किसी को भी निमंत्रण भेजने का वक्त न रहा। लड़के वालों ने इतनी हड़बड़ी मचा दी कि हम सबकी नाक में दम आ गया। खैर, सब कुछ सही-सलामत निबट गया।" नमिता ने बात का रुख बदलने की गरज से कहा, "कहने को तो उन लोगों ने एक पैसा भी न लेने की सौगंध ले रखी थी, पर सिद्धांत का ऐलान करना और अमल में लाना—दोनों अलग-अलग बातें हैं।"

नमिता ने निगाहें उठाकर एक मर्तबा मेरी ओर देखा। उसकी बातें मुझे हंसिया के ब्याह में खुरपी के गीत गाने-सी लग रही थीं। शायद उसने भी मेरे अंतस की भाषा पढ़ ली हो। तभी तो वह सिर झटकते हुए खड़ी हुई, "अरे, मैं तो खुद ही लेक्चर झाड़ने में मशगूल हो गई। आओ, अंदर चलें।" उसने तुम्हारी कलाई पकड़ी और तुम दोनों मुस्कराती हुई आंगन से होकर अंदर वाले कमरे में जाने लगीं।

छत की रेलिंग पकड़कर मैं उद्विग्न-सा गुमसुम खड़ा हो गया। सड़क पर चलते नर-नारियों का हुजूम अपने आप में मग्न था। मसाला डोसा वाला चिरपरिचित राग अलापता हुआ अपना ठेला लिये इधर ही बढ़ता आ रहा था। सामने राय जी की दुग्धशाला के इर्द-गिर्द लोग लोटा-गिलास लिये हुए दूध की खातिर मंडरा रहे थे। तभी बादलों की गड़गड़ाहट ने अनायास मेरा ध्यान अपनी ओर खींच लिया। आसमान में कुलांचते हुए अनगिनत बादलों के झुंड के साथ सूरज का आंखमिचौनी खेलना मुझे बहुत ही अच्छा लग रहा था। लुकता-छिपता सूरज और मृगछौने-से ऊधम मचाते हुए बादल। एकाएक मन-पंछी अतीत की सपनीली दुनिया में उड़ चला। गांव की गलियों में यादों की आंखमिचौनी आरंभ हो गई।...

"शशि ! चलो, चोर-सिपाही खेलें !" जब तुम पहली बार शहर से गांव वापस लौटी थी तो मैंने तुम्हारे घर जाकर दोस्ती का हाथ बढ़ाने की गरज से कहा था।

"चोर-सिपाही ! भला यह कौन-सा खेल होता है ?" तुम्हारे गुलाबी चेहरे पर आश्चर्य की रेखाएं अचानक उग आई थीं।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

"अरे, चोर-सिपाही नहीं जानती ! बड़ा मजेदार खेल है, आंखमिचौनी !" मेरी आंखें तुम्हारे कपोल की ज्यामिति पढ़ने में मशगूल हो गई थीं ।

मेरा किशोर मन तुम्हारे रूप-लावण्य के सरोवर में गोता लगाने की के लिए बेचैन हो उठा था ।

"तुम चोर और मैं सिपाही !" आंगन में आते ही मैंने तुम्हारा बायां हाथ अपने हाथों में ले लिया था । न जाने क्यों, पूरे बदन में अनगिनत चींटियां रेंगने लगी थीं ।

"तुम्हारे मन में तो खुद चोर बसा है, फिर तुम सिपाही कैसे हो सकते हो ?" तुमने झटके के साथ एक प्रतिप्रश्न उछाल दिया था, शायद मेरे मनोभावों को ताड़ गई थीं तुम ।

मगर मैंने तुम्हारी बातें सुनकर भी अनसुनी कर दी थीं । खेल शुरू हो गया था । तुम्हारी ओढ़नी को मेरी आंखें ढांपते हुए सिर के पिछले भाग से बांध दिया गया था । अन्य गंवई किशोरों के साथ तुम भी तालियां पीटते हुए खिलखिला रही थीं और मैं दोनों हाथ पसारे तुम्हें छूने की भरसक कोशिश करता रहा था । मुझे अनायास याद हो आया था अपने छोटे भाई सुधांशु का रोज-रोज का खेल । सुबह की सिंदूरी लालिमा पसरते ही एक गौरैया मुंडेर से उड़कर आंगन में उतर आती थी । सुंधाशु उसे पकड़ने की गरज से आंगन में दौड़ता था, मगर गोरैया उसे जैसे चिढ़ाते हुए यहाँ-वहाँ फुदकती फिरती थी और अंततः चहचहाते हुए फुर्र-से बगीचे की तरफ यूं उड़ जाती थी मानो उसे अंगूठा दिखा रही हो ।

सचमुच, तुम्हारा शहर से गांव आ जाना मुझे स्वर्ग की किसी सुनहरी अप्सरा का स्वर्गलोक से धरती पर उतर आने जैसा ही लगा था । कहां वह महानगर का उन्मुक्त आसमान और कहां यह कीचड़-पानी में सिमटा-सिकुड़ा बदबू-भरा गांव । तभी तो तुम अपने आप में सदा खोई-सी रहने लगी थी मानो किसी ने आजाद पक्षी को पकड़कर पिंजरे में कैद कर लिया हो । एक परकटे पंछी की भांति फड़फड़ा भर रही थीं तुम । मगर न जाने क्यों, एक अबोध बच्चे की मानिंद मैं जागते-सोते बस तुम्हें ही निहारते रहना चाहता था—पिंजरे में बंद एक प्यारी मैना की तरह ।

पढ़ना-लिखना, खाना-पीना सभी कुछ भूल बैठता था मैं । सपने में भी तुम और सिर्फ तुम्हीं दिखती थीं । दूध-सा उज्ज्वल एक सरोवर है और उसमें कमल के दो फूल अचानक खिल उठे हैं । सरोवर की गहराई में उतरकर मैं डुबकी लगाते हुए फूलों को पकड़ने के लिए मचल उठता हूँ । मगर मैं जैसे ही तैरते हुए उनकी तरफ लपकता हूँ, दोनों फूल आगे .... और आगे भागते चले जा रहे हैं... भागते जा रहे हैं, दूर... बहुत दूर । मेरी आँखें खुल जाती हैं और खुद पर ही झुंझला उठता हूँ मैं । पसीने से तरबतर हो आंखें मींचते हुए अब भी न जाने क्या-क्या सोचता जा रहा हूँ ।

"यहाँ खड़े-खड़े किस उधेड़बुन में लग गए, जनाब ?" तुम्हारा मिसरी-सा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सवाल मेरे हृदय में मिठास भर देता है । अतीत की पगडंडियों से चलकर वर्तमान के राजपथ पर पहुंचते ही मन-पथिक को राहत सी मिलती है ।

"कुछ भी तो नहीं ।" "हकलाते हुए मैं भीतर की ओर बढ़ जाता हूँ, "चलो, अंदर चलकर बैठें ।"

पत्नी के चेहरे की मुस्कान व्यंग्यवाण-सी कलेजे में चुभ जाती है । शायद उसने चोरी पकड़ ली हो ।

"तुम्हारे वो कैसे हैं ?" झेंप मिटाते हुए मैं पूछ बैठता हूँ ।

"बस, ठीक ही हैं । दरअसल टूर पर दिल्ली गए हुए हैं, इसीलिए साथ नहीं ला सकी ।" तुम्हारी मधुर आवाज तन-मन में रचने-बसने लगी है ।

"कितने बाल-बच्चे हैं तुम्हारे ?" नमिता ने तुम्हें कुरेदते हुए सवाल उछाला है ।

"मेरे ? कॉपी पेन्सिल लाकर गिनना पड़ जाएगा... 6 बेटे, 2 बेटियाँ ।" तुम्हारा स्वर ठहाकों में डूब गया है ।

सचमुच, आज भी तुममें जरा भी तबदीली नहीं आई । चांदनी-सी झिलमिलाती तुम्हारी काया । गुलाबी अधरों के मध्य जगमगाती हुई, सितारों-सी दंत-पंक्तियां । मन के भावों को अभिव्यक्ति देती कजरारी आंखें ।

रूप की इसी मादकता ने मुझे भावविह्वल कर दिया था कभी । तब अपने प्यार का इजहार करते हुए मैंने चुंबनों की झड़ी लगा दी थी और भोंडे इशारे पर उतर आया था । आज भी समझ नहीं पाता कि वैसा दुस्साहस आखिर मैंने किया कैसे ?

"छि: ! भला यह भी कोई प्यार है !" तुमने मुझे दूर झटक दिया था और इससे पहले कि मैं अपने को संभाल पाता, तुम फूट-फूट कर खुद ही रो पड़ी थीं ।

मुझे तो जैसे काठ मार गया था । यह क्या कर बैठा मैं ? अब अपने मां-बाप से मेरी शिकायत करोगी और मैं एक लावारिस कुत्ते की भाँति सबके द्वारा दुत्कारा जाऊँगा ।

"शशि, मुझे माफ कर दो । अनजाने में गलती हो गई मुझसे ।" मैंने रुआंसा हो, तुमसे आरजू-मिन्नत की थी ।

"अनजाने में नहीं, जानबूझ कर ऐसी गलतियां करते रहे हो तुम । गांव की कितनी ही भोली-भाली लड़कियों के साथ यह खेल खेला होगा ।" तुमने आंखें पोंछते हुए कहा था, "तुम्हें शर्म नहीं आती एक लड़की के साथ ऐसी हरकत करते हुए ? कई लड़कों के साथ भी तो तुमने दोस्ती की होगी । क्या उन्हें भी वासना की तृप्ति के लिए ही दोस्त बनाया है ? यदि नहीं तो फिर एक लड़की के साथ दोस्ती करने का ऐसा गलत अर्थ क्यों लगा लिया तुमने ? क्या दोस्ती का मतलब होता है—भोगना, लूटना, नोचना-खसोटना ?"

आज मैं झूठ नही बोलूंगा, शशि ! उस वक्त मेरी नजर में लड़कियों से दोस्ती

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करने का बस यही अर्थ था और कइयों के साथ मैंने यही सब कुछ किया भी था। मगर तुमने एक नई परिभाषा दी मुझे।

"मैं भटक गया था, शशि ! क्या तुम मुझे क्षमा नहीं करोगी ?" मेरे कंपकंपाते हुए हाथ जुड़ गए थे। मैं मन-ही-मन अपने आपको कोस रहा था। मेरा अनुमान जो गलत निकला था। मैं तो शहरी चहकती तितलियों की मानिंद तुम्हें भी उन्मुक्त समझ बैठा था। मेरे आसमानी किशोर मन को पहली ठोकर लगी थी।

"बिरजू, जैसा कि तुम जानते हो, मैं एक बड़े घराने की बेटी हूँ। मां-बाप की इकलौती संतान। हालांकि मैंने शहर में रहकर मैट्रिक तक की शिक्षा ली, पर मां-बाप की रूढ़ियों का शिकार होने की वजह से चाहते हुए भी आगे पढ़ना नामुमकिन है मेरे लिए। मैं एक उच्चवर्गीय संपन्न बाप की बेटी हूँ और तुम हो एक यादव वंशीय मध्यवर्गीय परिवार के पुत्र। इन रूढ़िवादी व परंपरावादी परिवारों में यह कतई संभव नहीं है कि हम इस जन्म में एक-दूसरे के जीवन-साथी बन सकें। और तुम तो बचपन से ही शादीशुदा भी हो न ? फिर एक मासूम के जीवन को चौपट करने का तुम्हें क्या हक है ? अलबत्ता हम प्रेमी बन सकते हैं, मगर पति-पत्नी नहीं। क्यों ख्वाहमख्वाह अपना जीवन बर्बाद करने पर तुले हुए हो ? पहले अपने कैरियर पर ध्यान दो। मैं जानती हूँ, तुम्हारा यह क्षणिक प्यार जिंदगी नहीं हो सकता। याद रखो, दोस्ती में सेक्स कभी आड़े नहीं आता। आज भी हम दोस्त हैं और यदि चाहोगे तो ताउम्र सच्चे दोस्त बने रहेंगे।" तुम्हारी बातों की गहराई में उतरकर मैं तो हक्का-बक्का रह गया था। छोटी-सी छोकरी और ऐसी गहन-गंभीर बातें ! तभी तो इसने मैट्रिक की परीक्षा इतनी कम उम्र में ही प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण कर ली और मैं बस यहां लटका ही हुआ हूँ। धत् तेरे की ! मुझे अपने-आप से ही घृणा हो आई थी।

तुम्हारे निष्कलुष मन ने सचमुच माफ कर दिया था मुझे। अब तुम मेरे अध्ययन में अभिरुचि लेने लगी थी और तुम्हारे प्रणय की डोर ने मुझे वाकई जिंदगी से जोड़ दिया था। कभी तुम एक शिक्षिका की भांति मुझे सबक रटाती कभी एक ममतामयी मां की तरह मीठे-मीठे फल, मनभावनी मिठाइयां, स्वादिष्ट पकवान खाने के लिए बाध्य करती तो कभी प्रेयसी की मानिंद प्यार-भरी बातों की स्वप्निल दुनिया में ले जाकर सुधारस की फुहारों से मुझे सराबोर कर देती। गुरु, मां, प्रेयसी ! आखिर कौन-सा संबोधन दूं मैं तुम्हें ? सच शशि ! वह तुम्हारा प्यार, तुम्हारी प्रेरणा ही तो थी, जिसने मुझ जैसे आवारा-लंपट को मैट्रिक से बी. ए. तक की परीक्षाएं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने को बाध्य कर दिया था और अनपढ़-गंवार बने रहने की बजाय मैं सरकारी सेवा में इस अच्छे पद पर कार्यरत हूँ। आज भी मैं समझ नहीं पाता कि आखिर वह कैसा सम्मोहन था तुम्हारी आँखों में ? वह

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कौन-सा जादू था तुम्हारी रसभरी बातों में ? तभी तो इधर मेरे-तुम्हारे मां-बाप का, गांववालों का विरोध दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा था और उधर हम दोनों और भी गहरे और गहरे उतरते जा रहे थे पवित्र प्यार के समुद्र में। एक-दूसरे की बातों में अपनी सुध-बुध खोते रहे थे हम दोनों।

जब तुम डोली में बैठकर ससुराल गईं तो एकांत के क्षणों में मैं कई दिनों तक तुम्हारी तस्वीर को निरख, फूट-फूट कर रोता रहा था। विदा की बेला में तुम सुहागन बनीं मेरे सामने खड़ी थीं। मांग में सिंदूर की लालिमा, हाथों में मेंहदी, पांवों पर महावर और बिछुए, गले में हीरे का हार, कलाइयों में चूड़ियां और कंगन, कानों में टॉप्स, माथे पर जगमगाता टीका, नाक में नथ, बदन पर सुहाग की सितारों जड़ी साड़ी और पूर्णिमा के चांद-सा खिला चेहरा। आंखों से आंसू की बूंदें मोतियों-सी टपक रही थीं और मैं मर्माहत पीड़ा लिये हुए तुम्हें विदा कर रहा था। तुम्हारे चले जाने के बाद कई दिनों तक मैं विक्षिप्त-सा गांव से बाहर निकलकर खेतों में भटकता रहा था। अमराई में कोयल की कुहू-कुहू, लहलहाती फसलों की हरीतिमा, किलकारियां मारतीं नदी की उन्मुक्त लहरें...कोई भी प्राकृतिक दृश्य मेरे मन को बांधने में कामयाब नहीं हो सका था।

तभी संयोगवश मुझे नौकरी का नियुक्ति-पत्र मिला था और गांव की उन गलियों से, जिसमें हर जगह बस तुम्हारी ही याद रची-बसी थी, मैं इस महानगर के कार्यालय में आ गया था। मगर यहां भी तुम्हें कहां भूल पाया था। सच शशि, यह शरीर बेशक मेरा है, मगर मेरी जिंदगी तो तुम्हीं हो न ? और अपना ही शरीर अपनी जिंदगी को भूल जाए, यह क्या कभी संभव हुआ है आज तक ? उस रात मैंने कितना भयंकर सपना देखा था। मेरी शशि की देह बर्फ-सी ठंडी पड़ गई है और उसकी चिता सजाई जा रही है। परिवार के तमाम लोगों की आँखों में आंसू की बूंदें छलछला आई हैं। बच्चे बिलख रहे हैं, सास छाती पीट रही है...नहीं ! पसीने से लथपथ होकर मैं उठ बैठा था। आंखें अनायास बरस पड़ी थीं। सुबह होते ही मैंने अटैची संभाली थी और जा पहुंचा था तुम्हारे पास। रास्ते-भर में ट्रेन की धीमी गति को कोसता रहा था। बार-बार निगाहें घड़ी पर जाकर टिक जाती थीं और बेहद पछतावा होता था अपने इस मानव तन पर। काश, मैं भी पक्षियों की मानिंद उड़ पाता।

तुम्हें सकुशल पाकर मैं आश्वस्त हुआ था, धड़कते दिल को राहत मिली थी। तुम्हें देखते ही अंधेरे मन के मुरझाए हुए अनेक सूरजमुखी खिल उठे थे।

तुमने अपने पति से मिलवाया था मुझे। उन जैसे विलक्षण प्रतिभा के धनी व्यक्तित्व से किसी को भी ईर्ष्या हो सकती है। जैसा तन, वैसा ही मन। उन्हें भी तुमने मेरे बारे में शायद सब कुछ बता दिया था। तभी तो उन्होंने नाम लेते ही मुझे

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

पहचान लिया और इतना सम्मान दिया, जितना मैं स्वप्न में भी सोच नहीं सकता था। सुख, समृद्धि और शांति सभी कुछ वहां विद्यमान पाकर मैंने अंदाजा लगाया कि इन सबकी वजह तुम्हारा गंगाजल-सा पावन मन ही रहा होगा।

लौटते वक्त तुमने बहुत कुछ देना चाहा था, मगर सिर्फ तुम्हारा प्यार ही क्या पर्याप्त नहीं है मेरे लिए ? जो कुछ है, बस तुम्हारा ही तो दिया हुआ है।

"कहां खो जाते हो जी ? मैं आई थी आत्मीयता-भरी दो-चार बातें करने के लिए...और पता नहीं, क्या सोचने लग गए ?" तुमने झकझोरते हुए शिकायती लहजे में कहा।

सिर झटककर मैंने सामान्य बनने की भरसक कोशिश की, "बस, तुम्हारी यादों में ही तो खो गया था।"

नमिता उधर किचेन में घुसकर नाश्ता तैयार करने में मशगूल हो गई थी।

"सच शशि, मैंने तुम्हारी यादों में ही अब तक की जिंदगी काटी है और इसके लिए खुद को सौभाग्यशाली भी मानता रहा हूँ।" मैंने असलियत जाहिर करते हुए कहा।

"नहीं बिरजू, हम दोनों का प्यार ही एक-दूसरे के लिए संबल है।" मेरी बात काटते हुए तुमने अपना हाथ मेरे हाथों में दे दिया।

"शशि, मुझे याद आता है वह दिन, जब मैं यहां अकेला जॉन्डिस का मरीज होकर छटपटा रहा था। सेवा-टहल के लिए कोई भी तो नहीं था यहां। नमिता बच्चों के साथ अपनी बहन की शादी में शरीक होने मायके गई हुई थी। बेहोशी की स्थिति में मैं अस्पताल पहुंचाया गया था। संयोगवश उन्हीं दिनों तुम्हारे पति दौरे पर यहां आए थे और तुम भी साथ चली आई थी। मेरी बीमारी की खबर पाते ही तुम अपने पति के साथ अस्पताल जा पहुंची थीं और तन-मन-धन से मेरी सेवा में जुट गई थीं। तुमने सारी इज्जत-प्रतिष्ठा को ताक पर रख पतिव्रता पत्नी की भांति जी-जान से मेरी सेवा की। अगर तुम्हारा प्यार, तुम्हारी सेवा, तुम्हारी प्रार्थना मुझे उस वक्त प्राप्त न हुए होते तो सचमुच मैं कब का मर गया होता। शशि, तुमने मुझे नवजीवन दिया है। तुम महान् हो शशि, तुम महान हो। क्या तुम्हें भूल जाना अपने आपको भूल जाना नहीं होगा ?"

मैंने तुम्हारे हाथ को अपने माथे से छुला दिया। आगे मुझे कुछ भी याद न रहा कि कब मैं एक अबोध बच्चे-सा फूट-फूट कर रो पड़ा था, कब किचेन से देशी घी की तली हुई कचौड़ियों की प्लेट लिये हुए नमिता आ धमकी थी, कब उसके हाथ से प्लेट तड़ाक से फर्श पर जा गिरी थी और कब हम दोनों चिहुंक कर लजाते-सकुचाते अलग-अलग दायरे में आ बैठे थे।

बाहर झमाझम बारिश होने लगी थी। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

एग्रीमेन्ट

• चन्द्रभान राही

कौशल्या अपने पति को पास ही बेंच पर बिठला कर स्वयं डॉक्टर के कमरे के पास गई। उसने वहाँ खड़े चपरासी से पूछा, "क्यों भईया, शर्मा साहब कब आएंगे ?"

"माता जी, शर्मा साहब का ट्रान्सफर दूसरे अस्पताल में हो गया है। आज उनकी जगह पर नये डॉक्टर राजीव मित्तल आ रहे हैं।"

"अच्छा ! कब आएंगे ?"

"बस आते ही होंगे।" चपरासी ने बताया।

कौशल्या के पति को शादी के कुछ दिनों बाद से लकवा मार गया था। तब से वह उनका इलाज इसी अस्पताल में करवा रही हैं। आज उनकी हालत काफी अच्छी है। उसे कोई संतान नहीं है। उसके पति की उम्र लगभग 60 वर्ष की हो चुकी होगी। कौशल्या के चेहरे पर भी उम्र की स्पष्ट रेखाएं उभर आयी थीं। बाल सफेद हो गए थे।

वहाँ रखी बेचों पर मरीज आ के बैठते जा रहे थे। भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। चपरासी ने उनमें टोकन बांटने शुरू कर दिए। कौशल्या का दूसरा नम्बर आया। तभी वहाँ उपस्थित मरीजों के बीच हलचल हुई। किसी ने कहा—"अरे डॉ. साहब आ गए।"

मरीज सर्तक हो गए। कुछ मरीजों के चेहरों पर उम्मीद की रोशनी नजर आने लगी। चपरासी ने अंदर जाकर साहब की टेबल और कुर्सी को झाड़ पोंछ डाला।

सामने से एक 25-30 वर्ष का आकर्षक युवक अपने गले में आला डाले हुए एक निश्चित गति से कमरे की तरफ चला आ रहा था। लोग उसको झुक-झुक के सलाम कर रहे थे। कमरे के पास आते ही चपरासी ने उन्हें सलाम ठोका और दरवाजा खोल दिया। डॉ. राजीव मित्तल अपने कमरे में चले गए।

डॉक्टर ने एक मरीज को देखा। दूसरे नम्बर पर कौशल्या को बुलाया गया। अपने पति को पकड़े हुई धीरे-धीरे वह कमरे में चल दी। उसने डॉ. मित्तल को नमस्कार किया। डॉ. ने उनको पास की बेंच पर बैठने को कहा। उन्होंने उसके पति

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

का चैकअॅप किया और पूछा, "इनको कब से ये बीमारी है ?"

"डॉ. साहब, 30-40 साल हो गए।"

"अब कैसी हालत है ?"

अभी डॉ. मित्तल कुछ और पूछते कि एक 50-60 वर्ष का व्यक्ति हाथ में ब्रीफकेस लिए कमरे में आए। उन्होंने अपने शरीर को इस तरह का बना रखा थाउ कि वे ज्यादा उम्र के लग ही नहीं रहे थे। डॉ. मित्तल उस व्यक्ति को देखते ही उठ खड़े हुए, "ओर पापा, आप !"

"हाँ ! मैंने सोचा, देखें तो तुम्हारे काम का पहला दिन कैसे गुजर रहा है।" वे सज्जन मुस्करा दिए।

उन श्रीमानजी को देखकर कौशल्या के चेहरे पर कई भाव उभर आए। उसने अपने आँचल से मुँह छुपा लिया। वे कुछ देर बाद डॉ. मित्तल से मिलकर चले गये। उनके जाने के बाद कौशल्या ने डॉक्टर से पूछा, "डॉ. साहब, एक बात पूछूं ?"

"हाँ-हाँ, बोलो"

"ये जो सज्जन आए थे, ये आर.के. मित्तल साहब हैं क्या ?"

"हाँ ! ये मेरे पापा हैं। मैंने आज से अपना कैरियर शुरू किया है तो वे मुझे देखने यहाँ चले आए। मेरे पापा मुझे बहुत चाहते हैं।" डॉ. मित्तल मुस्करा दिए।

"और आपकी माताजी ?" कौशल्या ने धड़कते दिल से पूछा।

"वे घर पर हैं ! वे भी मुझे बहुत चाहती हैं। लेकिन आप पापा को कैसे जानती हैं ?

"जिन्दगी के एक मोड़ पर जान-पहचान हो गई थी।" कहकर कौशल्या ने पूछा, "अच्छा अब हमें कब आना है ?"

"ये जो दवाइयाँ हैं वे एक माह की हैं। एक माह के बाद आप फिर मुझे दिखाने आ जाना।" डॉक्टर बोले।

कौशल्या की आँखे भर आई थीं। कमरे से बाहर निकलते समय आँसू छलक पड़े।

शाम होते ही जिन्दगियां अपने-अपने रंगों में रंगने लग जाती हैं। प्रत्येक व्यक्ति की जिन्दगी जीने के अपने-अपने तरीके होते हैं। कौशल्या एक शासकीय स्कूल में सेवारत थी। बच्चों की परीक्षा होने वाली थी। इसलिए शाम को उसने घर पर ट्यूशन के लिए आए बच्चों की छुट्टी कर दी थी। खाना बनाने के लिए पास की ही झोपड़ी से एक लड़की आती थी। कौशल्या की अपनी कोई संतान न थी। कारण यह था कि उनके पति को लकवा मार गया था। वे भी पहले शासकीय

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

स्कूल में सेवारत थे। लेकिन उनकी बीमारी के कारण शासन ने अब उनके स्थान पर कौशल्या को नौकरी दे दी थी।

आज कौशल्या की आँखों से नींद कोसों दूर थी। उसकी आँखें नम होती जा रही थीं। आज वह सोच रही थी कि उसने अपना आँगन सूना करके दूसरे का आँगन सजाया है। कभी-कभी अपने द्वारा किए गए एग्रीमेन्ट पर उसे स्वयं ही पछतावा होता था। काश ! उसने ऐसा एग्रीमेन्ट न किया होता ! वह पलंग पर करवटें ही बदलती रही। सहसा वह उठी और संदूक से एक कागज निकालकर पलंग पर बैठे-बैठे उसे देखने लगी। उसकी आँखों के सामने उसके 30 वर्ष पूर्व की घटनाएं ताजी होती गईं।

कौशल्या की शादी को दो या तीन वर्ष पूरे हुये थे। रामकुमार स्कूल से पढ़ाने के बाद शाम को जब घर आते थे तो एक गजरा वे अपने साथ अवश्य लाते थे। उनको मालूम था कि कौशल्या को गजरा पसंद है। उसे भी यह मालूम रहता था कि पति शाम को मेरे लिए गजरा लाएंगे। इसलिए वह अक्सर शाम को सजने के लिए तैयार रहती थी। पति के द्वारा लाए गजरे को वह अपने जूड़े पर लगाती तो अति आकर्षक व मनमोहक लगने लगती थी।

ठंड का समय था। एक दिन सवेरे ही रामकुमार प्रतिदिन की भाँति टहलने निकले। वापस आने पर उन्हें ठंड लगी और वे बिस्तर पर लेट गए। उनका उस दिन का बिस्तर पर लेटना था कि वे आज तक न उठ पाए। उसी दिन उनको अस्पताल ले जाया गया था। डॉक्टर ने लकवा लग जाने की बात कही।

रामकुमार को लकवे ने इतना जकड़ लिया था कि वे बिस्तर से उठने में असमर्थ हो गए। उनके इलाज के लिए पैसों की कमी आ गई। भाई, रिश्तेदार, मित्र आदि लोगों ने जितनी मदद करनी थी की, लेकिन व्यक्ति पर जब मुसीबत आती है तो चारों ओर के रास्ते स्वतः ही बंद हो जाते हैं। कौशल्या चूंकि पढ़ी-लिखी थी। इसलिए पति की जगह उसे शासकीय स्कूल में नौकरी मिल गई। लेकिन उसका सारा पैसा पति के इलाज में ही लग जाता था। खाने के लिए फिर उसे किसी दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता था।

एक बार पैसों की कमी के कारण रामकुमार की दवाई समय पर न आई। जिसके कारण उनकी बीमारी बढ़ गई और उन्हें अस्पताल में भर्ती कराना पड़ा। उनकी तबीयत दिन-प्रति-दिन गिरती ही चली जा रही थी। कौशल्या अस्पताल के बैंच पर बैठी रो रही थी। वह अपने भाग्य को कोस रही थी। अपनी निर्धनता के लिए वह ईश्वर को भला-बुरा कह रही थी। वह मन-ही-मन न जाने कैसे-कैसे निर्णय लेने लगी थी। वहीं बैठा एक युवक काफी देर से कौशल्या को ही देखे जा रहा

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

था । हालांकि उसने भी एक-दो बार उस युवक को देखा था, लेकिन फिर यह सोच के कि ये तो अस्पताल है । यहाँ तो ऐसे कई आते-जाते हैं । उसका बदन अनायास ही पुरुषों को अपनी ओर आकर्षित कर रहा था । वह युवक धीरे-धीरे कौशल्या के पास उसकी बेंच पर आकर बैठ गया । उसने कहा था, "देखिए ! मेरा नाम आर.के. मित्तल है । मैं काफी देर से आपको देख रहा हूँ कि आप रोती ही जा रही हैं । क्या मैं आपकी परेशानी को जान सकता हूँ ?"

कौशल्या ने मन-ही-मन सोचा, शायद ये मानवता के नाते पूछ रहे हों । क्या आज के युग में भी मानव के मन में मानवता बाकी है ? खैर ! जब पूछ ही रहे हैं तो बताने से भी कुछ नुकसान नहीं है । उसने कहा था, "मेरे पति को लकवा मार गया है । मेरे पास उनके इलाज के लिए पैसा नहीं है । मेरी तो कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि मैं क्या करूँ ।"

"कितने पैसे की आवश्यकता होगी ?" युवक ने पूछा था ।

"जी !" वह चौंक पड़ी थी ।

"देखिए ! आप मुझे गलत मत समझिए । मैं कोई बुरा आदमी नहीं हूँ । मैं अपने बारे में आपको बताता हूँ । उसके बाद यदि आप चाहें तो मैं आपकी मदद करने को तैयार हूँ । आप जितना पैसा चाहेंगी, मैं आपको उतना पैसा दे दूँगा ।"

कौशल्या ने मन में नाना प्रकार के ख्याल आने-जाने लगे थे । उसके सामने आर.के. मित्तल किसी व्यापारी से कम नजर न आ रहा था । वह सोचने लगी थी कि आखिर ये इतना मेहरबान क्यों हो रहे हैं ? फिर उसको अपने पति के इलाज के लिए पैसों की आवश्यकता थी । उसने सोचा कि कोई गलत काम करने से बेहतर यही है कि इस आदमी की बात को सुना जाए ।

कौशल्या को खामोश देखकर मित्तल ने कहा था, "देखिए ! आप पहले मेरी पूरी बात सुनें । उसके बाद यदि आपको अच्छा लगे तो मेरी बात मानिएगा । वरना मत मानिएगा । मुझे कोई एतराज नहीं ।" तभी उधर चायवाला आ गया था । आर.के. मित्तल ने दो चाय की प्याली ली । वे दोनों चाय पीने लगे थे । तभी धीरे से कौशल्या ने कहा था, "कहिए, क्या कहना चाहते हैं आप ?"

"यहीं कहूँ । या आपके घर ?"

"ठीक है । कल सुबह आप मेरे घर आ जाइए । वहीं पर बात करेंगे ।" कौशल्या बोली थी ।

कौशल्या ने एक पर्चे पर अपने घर का पता उन्हें दे दिया था । मि. मित्तल के जाने के बाद वह सोचने लगी थी कि वे आखिर कौन-सी बात कहने वाले हैं जो मेरे मानने पर वे करेंगे । समाज तो मजबूर स्त्रियों की मजबूरी का फायदा उठाया

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

करता है । कहीं वे मुझसे कोई गैर कानूनी काम तो नहीं कराने वाले हैं ! उस रात वह इन्हीं उलझनों में उलझती रही थी ।

उस दिन अभी कौशल्या ने अपने लिए सुबह का नाश्ता तैयार किया ही था कि मित्तल ने उसका दरवाजा खटखटाया था । उसने बड़े ही आदर के साथ उन्हें अन्दर आने के लिए कहा था । कमरा ज्यादा सजा-संवरा न था, लेकिन फिर भी, ठीक ही था । मित्तल पलंग पर बैठ गए थे । वह उनके लिए चाय-नाश्ता ले आई थी । उसके बाद वह सामने रखी कुर्सी पर बैठ गई थी । उसने पूछा था, "जी कहिए । वह कौन-सा काम है ?"

"देखिए कौशल्या जी !"

"आपको मेरा नाम कैसे मालूम ?"

"मैंने डॉ. से आपके बारे में सब कुछ मालूम कर लिया है ।" मित्तल कहने लगे थे, "मैं मुम्बई का एक व्यापारी हूँ । मेरे परिवार में मेरी वृद्ध माता जी हैं और मेरी पत्नी है । हमारी शादी को सात वर्ष हो गए लेकिन हमारी कोई संतान नहीं है । मेरी वृद्ध माता जी की इच्छा है कि वे अपने पोते का मुँह देखें । उनके पास काफी जायदाद है जिसे वे अपने पोते के नाम लिखना चाहती हैं । वर्ना वे अपनी सारी जायदाद अनाथ आश्रम को दे देंगी । डॉक्टर ने कहा है कि मेरी पत्नी कभी माँ नहीं बन सकती । मैं दूसरी शादी इसलिए नहीं कर सकता कि दो नावों पर एक साथ सवार नहीं हुआ जा सकता । मेरी पत्नी को कोई एतराज नहीं यदि मैं किसी बच्चे को अपना लूँ तो ।"

"तो आप कोई बच्चा गोद क्यों नहीं ले लेते !" कौशल्या धीरे स्वर में बोली थी ।

"मैं यह जानता हूँ कि मैं किसी का बच्चा भी गोद ले सकता हूँ । लेकिन गोद लिया बच्चा फिर भी पराया ही रहेगा । और पराए बच्चों से वंश नहीं चल पाता । वंश चलाने के लिए पितृ गुण विद्यमान बच्चा ही आवश्यक है । जिसे आप चाहें तो पूरा कर सकती हैं ।"

"वह कैसे ?" कौशल्या चौंकी थी ।

"वो ऐसे कि आप मेरे बच्चे के पैदा होने तक अपनी बच्चेदानी को मुझे किराए पर दे दें । इस पर आने वाला सारा खर्च मैं उठाऊँगा । आपकी डिलेवरी से लेकर आपके परिवार की आवश्यकताओं तक को मैं पूरा करूँगा । आपको किराए के रूप में मैं 50 हजार रूपये एडवांस दे दूँगा । साथ ही आपके पति का इलाज अच्छे-से-अच्छे अस्पताल में कराऊँगा ।"

कौशल्या के चेहरे पर कई भाव उभर कर आए थे । एक बार तो उसका मन

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हुआ था कि उसे कमरे से बाहर निकल जाने को कहे । मन करता था कि उसे एक तमाचा मार दे । लेकिन उसने कुछ नहीं किया । वह चुप बैठी रही । उस चुप्पी पर मित्तल ने कहा था, "देखिए कौशल्या जी ! आप यदि मेरी बात मानें तो अपने पति से एक बार पूछ लें । उसके बाद मुझे जवाब दें । मैं आपकी बच्चेदानी को तब तक किराए पर लेना चाहता हूँ जब तक कि मुझे मेरा बच्चा नहीं मिल जाता । उसके बाद आप स्वतंत्र हो जाएंगी । आप चाहें तो मैं एग्रीमेन्ट करने को तैयार हूँ । अच्छा, अब मैं चलता हूँ । कल फिर आऊँगा । आप सोच-समझ कर जवाब देना । 50 हजार रूपए एडवांस आप जब चाहें, तब दे दूँगा ।"

आर.के. मित्तल चले गए थे । वे कौशल्या के सामने अपना प्रस्ताव छोड़ गए थे । ऐसा प्रस्ताव जिसको वह अपनाती तो बदनामी तथा कलंक माथे पर लगता और नहीं मानती तो माथे की बिंदिया मिटने का डर था । वह ऐसे भंवर में फँस गई थी कि दोनों ओर उसे मरना-ही-मरना था । लेकिन मित्तल के प्रस्ताव में उसे आशा कि किरणें झिलमिलाती दिखाई दे रही थीं ।

उस दिन कौशल्या दिनभर अस्पताल में पति के पास रही । उनकी हालत गंभीर होती चली जा रही थी । डॉक्टरों का कहना था कि यदि शीघ्र ही उनका सही इलाज न किया गया तो बीमारी और जोर पकड़ लेगी । डॉक्टरों ने कौशल्या को मुंबई जाने की सलाह दी थी । उस ने पति पर आने वाले खर्चे के बारे में एक डॉक्टर से पूछा था । उसने लगभग बीस-तीस हजार रुपए खर्च होने की बात कही थी ।

शाम रात में ढल चुकी थी । चाँद न जाने क्यों समय से पहले ही आसमान पर में उग आया था । तारे भी एक-एक कर आकाश पर निकल रहे थे । लेकिन कौशल्या की आँखों के आगे अँधेरा छा गया था । उसको अपने आगे अन्तहीन गर्त नजर आ रहा था, जिसमें दिल दहलाने वाला अँधेरा था । उसको ऐसा महसूस हो रहा था कि वह उस गर्त में डूबती ही चली जा रही है, और उसकी साँसे उसका साथ छोड़ रही हैं । वह किसी छोटे बच्चे की भाँति डर रही थी । उसने अपना माथा पकड़ लिया था ।

कौशल्या के सामने एक ही प्रश्न था । वह हर हालत में अपने पति का इलाज कराना चाहती थी । पति जीवित रहेगा तो उसके हाथों पर चूड़ियाँ व माथे पर बिंदिया बरकरार रहेगी । पति के बिना तो जीवन सूना हो जाएगा । पति के इलाज में इतना खर्च हो चुका था कि साहूकारों की भीड़ महीने की पहली तारीख को घर के सामने खड़ी रहती । उसे इस समय पैसों की सख्त जरूरत थी । ऐसे समय पर मित्तल उसे किसी फरिश्ते से कम नजर न आ रहे थे । लेकिन उन का वह प्रस्ताव ! वह यदि उनके प्रस्ताव को मानती है तो समाज क्या कहेगा ? समाज उसे कुलक्षणी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कुल्टा कहेगा । जितने मुँह, उतनी ही बातें होंगी । चूंकि पति बिस्तर से उठ नहीं पाते और पत्नी बच्चे की माँ ! यह बात शायद कोई भी व्यक्ति पचा नहीं पाएगा ।

उसने गहरी साँस खींची और उठकर वह किचन में चली गई थी ।

अगली सुबह मित्तल ने कौशल्या का दरवाजा खटखटाया था । वह पहले से ही तैयार थी । उसे उन्हीं का इंतजार था । चाय-नाश्ते के बाद मित्तल ने पूछा था, "तो आपने क्या सोचा ?"

कौशल्या कुछ गम्भीर हो आई थी, "जी ! मैं तैयार हूँ । लेकिन--" वह वहीं अटक गई थी ।,

"लेकिन ! लेकिन क्या ?" मित्तल ने उत्सुकता से पूछा था ।

"मैं आपके बच्चे की माँ बनूँगी तो ऐसी स्थिति में समाज मुझे बदचलनी का लिबास तो नहीं पहनाएगा ? समाज मुझे बदचलनी का लिबास न पहनाए और मेरे बच्चे को हरामी की औलाद न कहे, इसके लिए मैं चाहती हूँ कि हमारे बीच होने वाला एग्रीमेन्ट कोर्ट के माध्यम से हो । ताकि मेरे बच्चे को कानूनी अधिकार मिल सके और वह समाज में इज्जत से रह सके ।"

चूँकि मित्तल एक व्यापारी थे । इसलिए वे सिक्के के हर पहलू को अच्छी तरह से तौल कर देखते थे । कुछ देर तक उन्होंने अपनी नजरों के तराजू से कौशल्या को तौला फिर शायद उसकी बात का बाट वजनदार निकला । तब मित्तल ने "हाँ" में स्वीकृति दे दी थी । तय हुआ था कि अगले दिन कोर्ट में याचिका दायर की जाएगी ।

अगले दिन मित्तल अपने साथ एक वकील को लेकर कौशल्या के घर चले आए थे । वकील ने कौशल्या को याचिका के कागजात प्रस्तुत किए । एग्रीमेन्ट की निम्नानुसार शर्तें थीं:—

"यह कि मेरी कोख को एक बच्चे के होने तक मित्तल रु. 50,000/- में किराये पर लेते हैं, जिसे मैं स्वेच्छा से मंजूर करती हूँ ।"

"यह कि बच्चे के होने तक एवं पैदा होने के एक वर्ष तक आने वाला सारा खर्च मित्तल के द्वारा देय होगा । और बच्चे को माँ का दूध छोड़ते ही, कौशल्या के द्वारा बच्चा मित्तल को सौंप दिया जाएगा जिस पर उसका कोई अधिकार न होगा । और बच्चा मित्तल का पुत्र/पुत्री कहलाएगा ।"

इसी तरह के और भी कई ठोस बिंदुओं को वकील ने कौशल्या को पढ़कर सुनाया । जिस पर कौशल्या और मित्तल ने हस्ताक्षर किए ।

अगले दिन वकील ने याचिका कोर्ट में लगाई । अदालत में इस तरह का यह पहला व अनोखा केस था कि कोई व्यक्ति बच्चेदानी को किराए पर ले रहा हो और

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कोई औरत बच्चेदानी को किराये पर दे रही हो ।

तब अदालत में इस याचिका पर काफी बहस हुई । अखबारों में भी यह केस खूब उछला था । लेकिन अंत में निर्णय यह हुआ कि जिस तरह वकील, रिक्शेवाले, मजदूर आदि अपना अंग श्रम, दिमाग के बदले पैसा लेते हैं, उसी तरह यह औरत (कौशल्या) भी अपने एक अंग को कुछ दिनों के लिए किराए पर दे रही है ।

कौशल्या और मित्तल के बीच हुए एग्रीमेन्ट को अदालत ने मंजूरी दे दी । वह मित्तल के बच्चे की माँ बन गई । मित्तल ने भी अपना वायदा निभाया । रामकुमार को मुंबई ले जा कर उनका एक अच्छे-से अस्पताल में इलाज शुरू करा दिया । रामकुमार की स्थिति में बदलाव आने लगा । वे धीरे-धीरे ठीक होने लगे । इधर, कौशल्या ने मित्तल के बच्चे को पुत्र के रूप में जन्म दिया ।

कभी-कभी कुछ बातें जिन्दगी में ऐसे बाँध बनकर सामने आती हैं जिन्हें तोड़ पाना तूफानों के बस में भी नहीं होता । कौशल्या और मित्तल के बीच हुए एग्रीमेन्ट के मुताबिक एक वर्ष बीत चुका था, और बच्चे को मित्तल के हवाले करने का वक्त आ गया था ।

आज कौशल्या को मित्तल किसी यमदूत से कम नजर नहीं आ रहे थे । मित्तल एग्रीमेन्ट के मुताबिक अपने बच्चे को लेने आ गए थे और कौशल्या अपनी कोख से जने बच्चे को किस तरह से मित्तल को दे, उसकी समझ में कुछ भी न आ रहा था ।

रामकुमार की हालत में अब संतोषजनक सुधार हो चुका था। उन्होंने कौशल्या को समझाया, "मानव को अपने जुबान की लाज रखनी चाहिए इसलिए कभी या किसी को जुबान देने से पहले ठंडे दिल-दिमाग से सोच समझ लेना चाहिए ।"

तब कौशल्या ने अपने कलेजे पर पत्थर रखकर अपने जिगर के टुकड़े को मित्तल को सौंप दिया था ।

आज अचानक डॉ. राजीव मित्तल के रूप में कौशल्या का अपना ही बेटा आया है । उसके ममत्व में उबाल आने लगा । लेकिन वह चाहकर भी तो राजीव को अपना बेटा नहीं कह सकती थी ।

कौशल्या अब प्रतिमाह रामकुमार का चेकअॅप कराने अस्पताल जाती है । वहाँ वह अपने बेटे को एक नजर भर देखकर जी को हल्का कर लेती है ।

आज अदालत द्वारा दिए गए एग्रीमेन्ट को लेकर कौशल्या पलंग पर बैठी-बैठी देख रही थी । उसकी जिन्दगी में इस एग्रीमेन्ट ने एक ऐसा बाँध बना

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रखा था जिसे तोड़ना संभव न था। लेकिन उस की आँखों का बाँध टूट ही चुका। ऐसे में उसकी आँखों से पछतावे के आँसू एग्रीमेन्ट के कागज पर गिरते जा रहे थे जिससे कागज पर लिखे अक्षर घुलते जा रहे थे। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

टूटते इंद्रधनुष

● कु. अनिता सिंह चौहान

सोनू और रीता चुपचाप दरवाजा खोलकर अंदर आने की कोशिश कर रही थीं कि मम्मी की नजर उन पर पड़ गई। वे आगबगूला होकर बोलीं—"दिन भर घूमती-फिरती रहती हो, न खाने का होश, न पढ़ने की चिंता ! और लड़कियों को देखो तो... ।"

"दिन भर पढ़ती रहती हैं, घर का सारा काम करती हैं, बड़ों की हर बात मानती हैं... ।" मम्मी की बात बीच में ही काटकर कहती हुई दोनों मम्मी की नजरों से दूर गैलरी में खड़ी हो गप्पें मारने लगीं।

मम्मी की बड़बड़ाहट जारी थी—"जब देखो; घूम रही हैं, इम्तहान सिर पर आ गए, मगर इन्हें होश ही नहीं, बातों से फुर्सत मिले तो पढ़ें... ।"

"सोनू, मैं चलती हूँ, तू पढ़ ! वरना आज आंटी दोनों को अच्छी तरह से खबर लेंगी।"

थोड़ी देर तक सोनू मम्मी की बड़बड़ाहट सुनती रही। फिर किताबें लेकर गैलरी में आ गई। मगर सारी किताबें वैसी ही पड़ी रहीं जाने क्या सोचती सोनू सड़क निहार रही थी। अचानक मम्मी की आवाज आई—"सोनू, टी.वी. बिगड़ा पड़ा है। तेरे पापा को बोला था, वो आज मैकेनिक भेजेंगे, वो आए तो टी.वी. सुधरवा लेना, मेरे सिर में दर्द हो रहा है। मैं सोने जा रही हूँ।"

"अच्छा मम्मी।" सोनू बोली।

थोड़ी देर में दरवाजे की घंटी बजी। सोनू उठी और जाकर दरवाजा खोला। देखा तो बाहर एक लड़का खड़ा था, कंधे पर एक बैग लटकाए हुए। बोला—"जी, क्या आपके यहाँ... ।"

"जी हाँ। जी हाँ, हमारे यहाँ का ही टी.वी. खराब है। आइए, अंदर आइए।" उसकी बात बीच में ही काटती हुई सोनू बोलती ही जा रही थी,."मम्मी बता रही थी कि आप आने वाले हैं। मैं आप का ही इंतजार कर रही थी। मगर आप बाहर क्यों खड़े हैं ?... ।"

वह मुस्कराता हुआ सोनू की नकल उतारता हुआ बोला—" बाहर इसलिए

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

खड़े हैं कि हम टी.वी. सुधारने वाले नहीं, आपके पड़ोस में जो शर्मा जी रहते हैं, मैं उनके यहाँ से आया हूँ। गुड़िया को पूछने आया था। मगर आपने तो हमें"...बात अधूरी छोड़ वह बड़ी दुष्टता से मुस्कराने लगा।

शर्म और खिसियाहट से सोनू का चेहरा लाल हो गया। हाय ! क्या सोच रहा होगा ये लड़का उसके बारे में ? उसने धीरे से सिर ऊपर उठाया तो देखा, वह लड़का धीरे-धीरे मुस्कराए जा रहा था।

सोनू गुस्से से भर गई ! ठीक है, उससे गलती हो गई लेकिन खुद भी कैसा बेशर्म है, हँस कर मेरा मजाक बना रहा है। उसने जल्दी से दरवाजा बंद कर लिया।

अगले दिन सुबह-सुबह ही सोनू किताबें लेकर गैलरी में पढ़ने बैठी। तभी बगल वाली गैलरी से गुड़िया की आवाज आई—"भइया, ओ भइया, जल्दी आओ। माँ बुला रही है।" न चाहते हुए भी सोनू ने उस तरफ देखा तो वही कल वाला लड़का उसकी तरफ देख रहा था। वह खिसिया गई। उसने जल्दी से मुँह फेर लिया और सोचने लगी— "अच्छा, यही हैं गुड़िया के विनय भइया। उस दिन बता तो रही थी कि उसके भइया कहीं बाहर पढ़ते हैं और जल्दी ही पढ़ाई खत्म कर यहाँ आ जाएंगे।"

"आ रहा हूँ, गुड़िया ! तू चल।" कहते-कहते अंदर जाने से पहले लड़के ने एक बार फिर से सोनू की तरफ देखा।

लो, फिर देख रहा है, शर्म नहीं आती ! हम भी अपनी गैलरी में खड़े थे। हमने तो नहीं देखा उसे। वह तो कानों में गुड़िया की आवाज पड़ गई, वरना कौन देखता इसे.... ! सोनू ने मन-ही-मन सोचा।

ऐसे ही कई दिन गुजर गए। कभी वह लड़का गैलरी में बैठकर कुछ पढ़ता नजर आता, कभी अपने दोस्तों के साथ बैठा और कभी-कभी यूँ ही गुमसुम सड़क को निहारता हुआ। सोनू उसे देखा करती और सोचती, हमेशा गैलरी में लटका रहता है। इसे और कोई काम नहीं है क्या ! मेरा क्या ! मैं तो अपनी गैलरी में बैठकर पढ़ती हूँ।"

जाने क्या होता जा रहा है सोनू को ! सारी-की-सारी बातें, वो मस्ती, सब हवा हो गई थी। मम्मी तो उसे देखकर अपनी आँखों पर विश्वास ही नहीं कर पा रही थी कि उनकी सोनू इतनी शरीर, इतनी मस्तानी बक-बक करने वाली लड़की, जो अकेले ही सारे घर को जरा-सी देर में सिर पर उठा लेती थी उसे कभी किसी कोने में, या गैलरी में यूँ चुपचाप किताबें लिये देखेगी। खुद सोनू भी हैरान थी कि उसे क्या होता जा रहा है ?

"परीक्षा खत्म हो तो चैन आए ! सब किताबें समेट कर रख दूँगी ! न पढ़ाई

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

की चिंता, न मम्मी की डाँट खाना। खूब आराम करेंगे। होली भी आने वाली है कुछ दिनों में! बबली से पिछली होली का बदला भी तो लेना है। बड़ा माज आएगा। फिर तो....।" इसी सोच में सोनू बैठी हुई थी।

होली के दिन सारी कॉलोनी में धूम मचाने के बाद रंग खेलकर दोपहर को जब सोनू और रीता घर में घुसे तो उनका रंग से पुता हुआ चेहरा देखकर मम्मी सर पीट कर बोली—"हे भगवान! कैसी शक्ल हो रही है तुम दोनों की! लगता है, सारी होली तुम दोनों पर ही चढ़ी है...।" रीता तो चुपके से घर खिसक ली और सोनू नहा कर जो सोई तो शाम को ही आँखें खुलीं। उठकर सोनू बैठक में आई ही थी कि दरवाजे की घंटी बजी और एक जानी पहचानी-सी आवाज आई—"अंकल जी घर में हैं क्या?"

उसने उठकर दरवाजा खोला तो देखा, सामने विनय खड़ा था—बिलकुल साफ सफेद कुरता पायजामा पहने, एकदम साफ-सुथरा। कहीं भी होली के रंगों की निशानी नहीं। वह अपलक देखती ही रह गई।

"अंकल जी घर में हैं क्या?" उसने झुककर फिर अपना सवाल दोहराया। वह सकुचा गई।...सोचता होगा—कैसी लड़की है, घूरे ही जा रही है।

"पापा किसी के घर गए हुए हैं।" सोनू ने जैसे-तैसे जवाब दिया! उसे लगा कि उसकी आवाज शायद खुद उसकी नहीं रह गई है।

"अच्छा, तो फिर मैं जाता हूँ। अंकल जी आएं तो उन्हें बता दीजिएगा कि विनय आया था।" कहकर वह जाने के लिए मुड़ा। पल भर में ही सोनू के छोटे-से मन में कई बातें उमड़ पड़ीं—"ऐसे ही चले जाओगे, बिना मुझसे बात किए? क्या सिर्फ पापा से ही मिलने आए थे? जी मैं आया—हाथ बढ़ाकर उसे रोक ले। अचानक ही उसके मुँह से निकला—"पापा आते ही होंगे! आप बैठिए।" जाते-जाते वह ठिठक गया—"शुक्रिया, मैं तो सोच रहा था कि आप बैठने के लिए कहेंगी ही नहीं।" और हँसने लगा।

विनय को बैठक में बिठाकर सोनू मम्मी के पास किचन में दौड़ गई— "मम्मी, मम्मी....वो अपने पड़ोस वाले शर्मा अंकल हैं ना! उनका लड़का आया है।"

"अच्छा....अच्छा....आया है तो उसे बिठा, मगर तू इतना हाँफ क्यों रही है?" सोनू ने देखा, सचमुच उसकी साँस फूल रही है। उसने फ्रिज से एक बॉटल निकाल कर जल्दी-जल्दी पानी पिया। तब साँस आई।

"तू चल, उससे बात कर। मैं तब तक चाय लेकर आती हूँ।" मम्मी बोली।

"हूँ! तुम भी मम्मी अजीब हो! भला मैं क्या बात करूंगी उस लड़के से? हमेशा हँसता ही रहता है। वो पापा से मिलने आया है, मुझसे नहीं!" परोक्ष में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सोनू मम्मी से बोली। हालांकि मन-ही-मन वह कहीं खुश भी हो रही थी।

हॉल में बैठे-बैठे दोनों के बीच जब खामोशी गहराने लगी तो उसने पूछा, "आप तो पढ़ती हैं ना ?"

"जी हाँ ! इस साल इंटर का इम्तहान दूँगी।" सोनू ने हकलाते हुए जवाब दिया और उसे ख्याल आया कि वैसे तो उसकी जुबान कैंची की तरह चलती है, पर इस लड़के के सामने पता नहीं उसे क्या हो जाता है ?

"आप तो काफी अच्छे नंबरों से पास होंगी ! हमेशा पढ़ते ही देखता हूँ आपको।" उसने संजीदगी से कहा।

सोनू के मन में दबे हुए सारे रंग जैसे चेहरे पर उभर आए हों। उसका जी कर रहा था कि वह हमेशा बोलता ही रहे, और वह सुनती रहे।

इतने में मम्मी चाय ले आईं। फिर तो तीनों जने जाने कहाँ-कहाँ की गप्पें मारते रहे। वक्त जैसे पंख लगाकर उड़ गया। सोनू सोच रही थी कि इस संजीदा-से दिखने वाले लड़के के अंदर बातों का कितना बड़ा खजाना छुपा हुआ है ! काफी देर हो जाने के बाद भी पापा नहीं आए तो उसने कहा, "अच्छा आंटी ! मैं चलता हूँ अब।"

"बेटा, आया करो ! यह भी तुम्हारा ही घर है ! ऐसा न हो कि आज आए और अब अगली होली पर ही आना हो।" मम्मी बोलीं।

दरवाजे की आड़ में खड़ी सोनू का मन मम्मी की बात सुनकर खुशी से भर उठा ! वैसे वह खुद भी शायद पूरी-की-पूरी यही कह रही थी मन-ही-मन कि रोज आया करो।

किसी का आना-जाना कहीं रुकता है क्या ?

एक इतवार को सोनू यूँ ही बैठी-बैठी अकेली बोर हो रही थी। पढ़ने का बिलकुल मन ही नहीं हो रहा था। मन न जाने कहाँ चला गया था ! शायद विनय के पास। वह कितनी अच्छी बातें करता है ! थोड़े ही दिनों में सबका प्यारा हो गया है। और उसके होंठों के पास का वो तिल...सोचते हुए वह खुद ही से शर्मा गई। अचानक कानों में आवाज आई—"सुनिए।"

"अरे आप !" सोनू चकित होकर बोली।

"जी, मैं अंदर आ जाऊँ ?"

"आइये ना !" सोनू ने नजरें चुराते हुए कहा, जैसे उसकी कोई चोरी पकड़ी गई हो।

हॉल में आकर थोड़ी देर इधर-उधर की बातें करने के बाद वह धीरे से हिचकिचाते हुए बोला, "ये किताब आपके लिए है। आपने एक दिन बताया था

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कि ये किताब आपको पढ़नी थी । मैं इन्हें आपके लिए ही लाया हूँ ।"

सोनू चौंक उठी, "अरे, इतनी सी बात इसे इतनी अच्छी तरह से याद है ?" आज गुड़िया घर आई ! बड़ी प्यारी और मीठी बातें करती है । 8-9 साल की छोटी-सी गुड़िया । बातें करते-करते वह बोली, "दीदी, आज शाम को आप हमारे घर आना ।"

"क्यों ?"

"वो भइया हैं ना ! वो मम्मी से कह रहे थे..."

"क्या कह रहे थे ?" सोनू ने धड़कते दिल से पूछा ।

"यही कि ये सोनू बड़ी अच्छी लड़की है । इसे आज शाम को चाय पर बुला लो ।" गुड़िया अटकते हुए बोली । सोनू ने गुड़िया को उठाकर चूम लिया ।

विनय जब भी सोनू के घर जाता, मानो सोनू के आस-पास सैकड़ों इंद्रधनुष बनकर रंग-ही-रंग बिखेर देते और वह चकित-सी उन रंग-बिरंगे इंद्रधनुष को देखती ही रह जाती ।

रीता उस दिन बोली, "क्या बात है सोनू ! आजकल तो तू बिलकुल ही बदल गई है । कितनी अलग-सी दिखने लगी है ?"

"चल हट ! तुझे तो यूँ ही मजाक सूझता रहता है ।" सोनू ने उसे झिड़क दिया और अकेले में शीशे में अपनी सूरत देखी । उसने सोचा कि रीता भी बस, क्या बदला है उसमें ! कुछ भी तो नहीं ! वही नैन-नक्श हैं ! हाँ, लगता है उसके मन में बहुत कुछ बदल गया है । कल रीता ने आकर बताया था कि कॉलोनी में अगले इतवार को इंडियन डांस कॉम्प्टीशन होने जा रहा है और वह उसमें भाग ले रही है । वह बोली थी, "सुन सोनू ! तू भी भाग लेना उसमें, बड़ा मजा आएगा ।"

"नहीं रे ! तू तो मम्मी को जानती ही है । वह कभी हाँ नहीं करेंगी ।"

"तू तो पहले ही हार मान लेती है ।" रीता थोड़ा बिगड़ते हुई बोली थी— "पहले आंटी से पूछ तो ! हो सकता है, थोड़ा मनाने पर वो हाँ कर दें ।"

"ठीक है ! तू जा ! मैं कोशिश करती हूँ, लेकिन अगर वो मना कर देंगीं तो मैं कुछ नहीं कर सकती हूँ ।" और सोनू मम्मी की खुशामद करने लगी— "मम्मी प्लीज, हाँ कर दो ना ! रीता भी तो उसमें भाग ले रही है । इंडियन डांस कॉम्प्टीशन है । ड्रेस भी जरा-सी भी गंदी नहीं ! लहँगा-चुनरी पहनना है । मम्मी, प्लीज !... ।"

"अच्छा बाबा, ठीक है, पीछे ही पड़ जाती है यह लड़की तो । लेकिन सुन, ज्यादा हुल्लड़ नहीं होना चाहिए । समझी ! वरना फिर कभी किसी चीज के लिए हाँ नहीं करूँगी ।" कहकर मम्मी ने उसे घूरा ।

"अरे नहीं, मम्मी ! ऐसा कुछ नहीं होगा । तुम निश्चिंत रहो ।"

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बस, फिर क्या था ! जोर-शोर से डांस की तैयारियाँ होने लगीं । तय किया गया कि रिहर्सल तो रीता के घर हुआ करेगी और कॉम्प्टीशन रखा जाएगा शर्मा अंकल के घर की छत पर ! "अरे भई... तुम लोग डांस कॉम्प्टीशन में भाग लेने को तो तैयार हो गई । मगर यह भी सोचा है कि तुम लोगों के ग्रुप को म्यूजिक कौन देगा ? किसे आता है तुम लोगों में से, तबला सारंगी आदि बजाना ?..."

"अरे हाँ..., यह बात तो हम लोगों ने सोची ही नहीं... ।" परेशान हो रीता बोली ! सोनू भी सोचने लगी ।

"फिक्र मत करो । वो अपने पड़ोसी शर्मा जी का लड़का है ना, विनय ! बस वही म्यूजिक देगा, तुम लोगों के ग्रुप को ।"...मम्मी ने कहा ।

सोनू को तो विश्वास ही नहीं हुआ । विनय...उसके विनय में यह गुण भी छिपा है । चलो, अब चिंता खत्म हुई ।

इतवार भी आ गया । उस दिन शाम को सात बजे से डांस कॉम्प्टीशन था । सब लड़कियाँ तैयारी करने लगीं । सोनू अपनी ड्रेस की चिंता में थी : कहाँ से मिलेगा उसे लहँगा और चुन्नी । अचानक उसे याद आया, मम्मी के पास अपनी शादी का लहँगा-चुन्नी है ! बस, वह मम्मी को पटाने लगी, "मम्मी, वो आपके पास जो लहँगा है आपकी शादी वाला, वो दो ना मुझे पहनने को, प्लीज ! मैं जरा भी खराब नहीं करूँगी । बहुत संभाल कर पहनूँगी ।"

मम्मी उसकी सूरत देखकर हल्के से मुस्करा दी । वे नर्म स्वर में बोलीं, "ठीक है, ले ले । और तुझे कुछ गहने भी तो चाहिए होंगे इस ड्रेस के साथ, वो भी ले लेना । मेरी छोटी-सी बेंदी भी है, माथे की ! उसे भी लगाना ।"

हाय ! मम्मी को कभी क्या हो जाता है । वैसे तो कोई चीज पहनने को बोलो तो 'हाँ' ही नहीं करती है और आज खुद ही पहनने को कह रही हैं ।

फिर तो जैसे-तैसे चार-पांच फूल खोंस-खास कर सोनू तैयार हुई । मम्मी की बेंदी भी माथे पर लगाई और शीशे में उसने अपने को देखा । इस पर वह खुद से ही शर्मा गई...आज विनय पहली बार उसे इस ड्रेस में देखेगा ।

सब लड़कियाँ छत पर आ गईं । सात बजने वाले थे । सोनू व रीता भी वहीं आ गईं । मगर सोनू की आँखें चारों तरफ विनय को ही ढूँढ रही थीं— "कहाँ रह गया वह विनय भी ? क्या उसे पता नहीं होगा कि सोनू कितनी बेचैन होकर उसे ढूँढ रही है ।" अपने मन में यही सोचती-सोचती सोनू टहलती हुई छत की मुंडेर के पास आ कर खड़ी हो गई । वह सूनी आँखों से आसमान में उभरते हुए तारों को देखने लगी । तभी बगल वाली छत, जो इस छत से थोड़ी ऊँचाई पर थी, से बातचीत का अस्पष्ट स्वर सुनाई दिया । उसे लगा कि इन आवाजों में विनय की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

आवाज भी शामिल है। शायद नहीं, विनय की ही आवाज है। जहाँ सोनू खड़ी थी, वहाँ से वह विनय को नहीं देख सकती थी। इसलिए वह उसे देखने की खातिर चलने की सोचने लगी। अचानक उसके कानों में विनय के दोस्त बंसल की आवाज आई—"मान गए गुरु...क्या लंबा हाथ मारा है तूने भी.. ! कॉलोनी के सारे लड़के जिस पर मरते थे, तूने उसे पटा लिया। वाह, क्या बात है... !"

सोनू के कानों में जैसे किसी ने पिघला हुआ शीशा उंडेल दिया हो। वह वहीं-की-वहीं खड़ी रह गई। तभी विनय की आवाज आई "...हाँ यार,.. इसे पटरी पर लाने के लिए काफी वक्त गँवाया है मैंने ! पहली बार तो इसे पटाने के लिए पूरे बीस रुपये की किताब खरीदनी पड़ी थी मुझे ! तब जाकर थोड़ा भाव दिया है इसने मुझे !" और उन दोनों की सम्मिलित हँसी जैसे तेजाब के छींटे बनकर उसके ऊपर बरस पड़ीं। और सोनू ! वह तो जैसे पत्थर की हो गई हो। जाने कितने रंग-बिरंगे इंद्रधनुष एक साथ ही रंग बिखेर कर उसकी आँखों के आगे आकर स्याह हो गए। नहीं...ये वो इंद्रधनुष जैसा लड़का नहीं हो सकता। जो अपनी मासूम मुस्कान से, बातों से रंग-ही-रंग बिखेर देता था, जिस पर उसे ही नहीं, सब लोगों को भी विश्वास था। यह तो किसी राह चलते छिछोरे लड़के की आवाज थी। उसकी आँखों के सारे सपने बिखरते चले गए और रह गई सिर्फ उन टूटे हुए सपनों की नुकीली किंर्चियाँ, जो उसके नन्हें-से दिल में गहराई तक चुभती ही चली गईं।

"देख, अभी दिखाता हूँ। क्या लग रही है आज वो... अभी तो यहीं थी, रुक जरा... ।" विनय की आवाज फिर आई।

सोनू की आँखों में बसे सारे घरौंदे चूर-चूर होकर एक ही पल में ज्वार के पानी की तरह आँखों से बह निकले। रोष व अपमान से उसकी आँखें धुँधला गईं।

न जाने कब वह सीढ़ियाँ उतर कर घर आई। कैसे कमरे तक पहुँची और कब बिस्तर पर लेटी, उसे होश ही नहीं था। शाम का अंधेरा धीरे-धीरे जब कमरे में पसरा तो सोनू बत्ती जलाने के लिए उठी। अंधेरे में किसी चीज से उसका पैर टकराया। बत्ती जलाकर देखा तो जमीन पर विनय की दी हुई वही किताब पुर्जा-पुर्जा होकर पड़ी थी। एक जोर की रुलाई हूक बनकर उसके सीने में उठी और आँखों में आकर पत्थर हो गई। एक ही पल में सोनू अपनी उम्र के न जाने कितने बरस गुजार कर बड़ी हो गई थी।

उसके अंदर विनय के प्रति जो भी प्यार का जाल बुनता गया था, वह चिंदी-चिंदी हो चला था। उसे स्वार्थ रूपी चूहे ने पूरी तरह से कुतर डाला था। वह दौड़ते मन पर लगाम लगाने लगी। आखिर ऐसा क्यों होता है ? मर्द जात

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

छल-प्रपंच क्यों करती है ? क्यों ? क्यों ? इस पहाड़ सरीखे प्रश्न का उसे कोई उत्तर नहीं मिल पा रहा है । इंद्रधनुष ऐसे ही टूटा करते होंगे, उसने सोचा । और तब वह बिस्तर पर जा गिरी किंतु उसके सोच का सिलसिला बंद ही नहीं हो पा रहा था । वह करवटें ही बदलती रही । ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बेचारी विभा दी

● सुमन शर्मा

उन वीथियों से गुजरते हुए मेरा मन-मानस इतिहास के गलियारों में भटके बिना नहीं रह सकता था। सुंदर-स्वच्छ गलियाँ, चारों ओर ओसवालों, अग्रवालों, जैनों, माहेश्वरी, कोठारियों की ऊँची-ऊँची,सूनी-सूनी हवेलियाँ किसी ध्यानस्थ योगियों की भाँति दम साधे प्रतीत होती थीं। उन सभी के बीच से जाते हुए मुझे अपना अस्तित्व बहुत बौना नजर आता था। हवेलियों पर चित्रित राजाओं के जीवन की झांकियाँ मन मोह लेती थीं। इतनी जनशून्यता, इतनी चुप्पी कि वहाँ की उपस्थित अपराध-बोध उत्पन्न करती रहती थी। कभी-कभी कोई खिड़की अचानक खुल जाती या बंद हो जाती तो लगता कि मेरे अतिरिक्त वहाँ अन्य कोई दूसरा भी है।

विभा दी का घर हमारे कॉलेज के पास ही था। जब भी ज्यादा खाली पीरियड्स होते, मैं उनके यहाँ चली जाती थी। कारण कोई विशेष नहीं होता था। बस, मुझे वहाँ जाना अच्छा लगता था। उन हवेलियों में से एक में विभा दी ने एक कमरा किराये पर ले रखा था। वहाँ वे अकेली ही रहा करती थीं।

हमारी हिंदी की प्रोफेसर विभा दी देखने में सामान्य से कम सुंदर, साँवला रंग, दुबली-पतली देह, छोटा कद, सामान्य नैन-नक्श, बड़े दांत जो बाहर नहीं निकल पाए थे। फिर भी, वे मुझे बहुत अच्छी लगती थीं, क्योंकि अपने विषय में उनकी गहरी पैठ थी। उनके पढ़ाने की कला-निपुणता की मैं कायल ही हो आई थी। दूसरे उन्हें पसंद करते थे या नहीं, मुझे नहीं मालूम। वे भी तो करुणा के उदात्त भावों से संपन्न थीं। इसीलिए मेरे मन में उनके लिए अपार श्रद्धा थी।

मुझे विभा दी का अकेली रहना सदा ही अखरता रहता था। कभी-कभी तो मैं सोचा करती कि मैं उनके ही साथ रह लूँ। जिससे ज्यादा चुप रहने वाली विभा दी मेरे साथ अपनी एकांत पीड़ा बाँट सके। लेकिन मेरी और उनकी उम्र में एक खासा अंतराल था, जिसे पाटना उनके लिए शायद संभव हो किंतु मेरे लिए निहायत ही असंभव था।

उन दिनों वे पीएच.डी. कर रही थीं। सारे दिन वे न जाने क्या-क्या लिखती-पढ़ती रहती थीं! वे मुझ पर विशेष स्नेह दर्शाया करती थीं। मैं उनकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

उस स्नेह-वर्षा में भीगती ही जाती थी ।

हवेली की ऊँची सीढ़ियाँ पार कर आज छुट्टी के दिन मैंने उनके कमरे की कुंडी खटखटाई । वे बहुत ही अनमने मन से बाहर निकलीं । फिर मुस्कान बिखेर कर मुझे अंदर ले गईं । आज मेरी मम्मी और भाई-बहन मेरी ननिहाल गए हुए थे । पापा भी चाचाजी के पास गए हुए थे । मैं घर में अकेली ही रह गई थी । ऐसा स्वर्णिम अवसर मुझे और कब मिलने वाला था ? मैं सर-से उनके घर चली आई थी । किंतु आज मुझे यहाँ आकर कुछ विषाद-सा अनुभव हुआ । कॉलेज में सदा ही ठीक-ठाक रहने वाली विभा दी घर में बहुत ही अलसाई हुई हालत में थीं ।

उनके कमरे में एक ओर स्टोव व उसके आसपास सारा सामान बिखरा पड़ा था । दूसरी ओर किताबें और बिस्तर भी यथावत् स्थिति पर पड़े थे, जबकि मैं दिन के ग्यारह बजे आई थी ।

"दीदी, आप अपने पास किसी को बुला क्यों नहीं लेतीं ? आपके छोटे भाई-बहन या कोई अन्य व्यक्ति आ जाए तो यहाँ आपका मन लग जाए । इस तरह से एकाकी रहना आपको अच्छा नहीं लगता होगा न !" अनौपचारिक रूप से मेरे मन की बात निकल ही गई ।

वे मुस्करा दीं, "अरे सुमन ! कौन बुलाने से आता है ! जिसका मन हो, वह खुद ही चला आएगा । घर में तो सभी यही सोचते हैं कि मैं बहुत पैसे कमाती हूँ तथा बहुत ही मजे में हूँ ।" वे बोलीं ।

विभा दी ने आज अपने निजी जीवन को अभिव्यक्ति दी, मुझे अच्छा ही लगा ।

"आपको मेरा आना बुरा तो नहीं लगा ?" मैंने उनसे पूछा ।

"अरे, कैसी बातें करती हो ! मैं तो सदा किसी के आने की प्रतीक्षा में ही रहती हूँ । लेकिन यहाँ कौन आएगा ? साथ की सभी लेक्चरर्स घर-बार वाली हैं । वे व्यस्त रहा करती हैं । मेरे अविवाहित होने के कारण मैं उन सबसे अलग-थलग पड़ जाती हूँ । उनकी अपनी अलग बातें हैं, समस्याएं हैं । उनके विषय क्षेत्र भी व्यापक हैं । मेरा दायरा सीमित है ।" वे बोलीं ।

"दीदी, क्या आप शादी नहीं करेंगी ?" मेरा स्वाभाविक प्रश्न था ।

इस पर वे कुर्सी से उठ कर कपड़े समेटने लगीं । मेरे प्रश्न के दोहराये जाने पर उन्होंने मुझे प्यार से मीठी झिड़की दी, "तुम अभी छोटी हो न ! तुम्हें ऐसी बातें नहीं करनी चाहिए ।"

मुझे लगा कि वे शायद मुझसे कुछ छिपाना चाहती हैं । शायद मैं इस प्रश्न के लिए उपयुक्त नहीं हूँ । फिर भी, मुझे जिज्ञासा थी उनके भविष्य को जानने की ।

"दीदी, मैं आपके लिए कुछ बनाऊँ ?" मैंने स्टोव के आसपास के सामान को

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

समेटते हुए पूछा ।

"नहीं ! मैंने सुबह ब्रेड ले लिया था ।" उन्होंने कुछ चौंक कर कहा ।

हम दोनों ने कमरा कुछ व्यवस्थित-सा कर दिया । सीढ़ियों की ओर से बार-बार लोगों के चढ़ने-उतरने की आवाजें आ रही थीं । मकान मालिक कहं दूसरी मंजिल पर रहते थे । विभा दी तीसरी मंजिल पर रहती थीं ।

"दीदी, ये लोग आपके पास कभी-कभी तो आते ही होंगे न ?" मैंने पूछा । मैं सोच रही थी कि काश ! मैं मकान-मालिक की बेटी होती तो सदा दीदी के पास ही रहती । परंतु—इस पर वे मुस्करा कर ही रह गईं । शायद उन्होंने मेरे मनोभाव ताड़ लिये थे ।

दोपहर हो चली थी । वातावरण बहुत ही सुहावना हो आया था । टीलों पर मंद-मंद पड़ती बारिश की फुहारें और सोंधी हवा बह रही थी । ऊँची हवेलियों के ऊपर उड़ते बादलों के झुंड, छोटी-छोटी खिड़कियों से छन कर आती ठंडी हवाएं न जाने कैसी-कैसी भावनाएं मेरे मन में उत्पन्न कर रही थीं ।

"मैं चलूँ, दीदी ?" उठकर मैंने उनसे आज्ञा चाही ।

अधिकतर कम बोलने वाली व भाव-ज्ञापन करने वाली विभा दी ने आज आँखों, हाथों और वचनों से मुझसे रुक जाने का आग्रह किया । ऐसे में मुझे बहुत भला लगा । सच तो यह था कि मैं स्वयं भी वहाँ से नहीं जाना चाहती थी ।

"दीदी, आपके घर में कौन-कौन हैं ?" मैंने कुछ संकोच के साथ पूछा ।

"कोई नहीं ।" वे मुस्करा दीं ।

"ऐसा तो हो ही नहीं सकता ।" मैंने कहा ।

"घर के अपनों, संबंधियों की श्रेणी में तुम किसे गिनती हो ?" साहित्यकारा दीदी की व्यथा फूटने लगी । मुझे लगा, यही उचित समय है दीदी के बारे में सब कुछ जान लेने का, अपनी जिज्ञासा शांत करने का ।

"रक्त संबंधी तो शर्तिया ही अपने होते हैं ।" मैं बोली ।

"तो इस परिभाषा में मैं संपन्न हूँ । माँ, पिताजी, भाई-बहन सभी तो हैं मेरे ।" वे बोलीं ।

"उन लोगों ने इतनी अच्छी दीदी को अकेले यहाँ कैसे भेज दिया ? आपके बिना उनका मन कैसे लगता होगा ?" मैंने प्रश्नों की झड़ी ही लगा दी ।

इस पर वे मंद-मंद मुस्कराती रहीं ।

"जरूरी नहीं कि जो तुम्हें अच्छा लगता है, वह सभी को अच्छा लगे । फिर, मुझमें अच्छी लगने वाली बात भी क्या है ?" उन्होंने पूछा ।

मैं सोचने लगी कि उनके चरित्र में बुराई ही क्या है ? वे शायद मेरे मनोभाव

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

ताड़ गईं। उन्होंने गहरा उच्छवास भरकर कहा, "मैं स्वतंत्र रहना चाहती हूँ। यही मेरी बुराई है। अपना समाज जो एक ओर नारी को विभिन्न रूपों में पूजता है, व्यवहार में वह उसे सिर्फ एक ही रूप में देखना चाहता है। वंदिनी के रूप में। तुम जानती हो कि मुझे स्वतंत्र विचारों, स्वतंत्र रहन-सहन की कितनी कीमत चुकानी पड़ी है ! सारा परिवार मुझ से रुष्ट हो गया। संपन्न परिवार की हो कर भी नौकरी करना किसी को पसंद न आया। तुम्हारा यह नगर भी तो मुझे पसंद नहीं करता। यदि मेरे साथ मेरे पति, मेरे बच्चे होते तो शायद यह मुझे सम्मान देता। तब मैं पूजनीया होती। परंतु अब इन हवेलियों से झाँकती चोर नजरें मुझे मुजरिम के रूप में पहचानती हैं। वे मुझे शंका की दृष्टि से देखती हैं। मैं तुमसे भी कहती हूँ कि तुम मेरे पास न आया करो। अपनी पढ़ाई करो।" कहते-कहते उनकी आक्रोशमयी वाणी सहसा ही शांत हो गई। मैं व्यग्र-सी हो आई।

शाम होने को आई थी। मैं उनके घर से चल पड़ी। रास्ते में मैंने फिर से वही शून्य सम्मोहन महसूस किया। शून्य सम्मोहन जो मैं उन रास्तों पर महसूस किया करती थी।

दूसरे दिन सुबह कॉलेज के लिए मैं तैयार होकर जैसे ही घर से निकली, रास्ते में मुझे कमल भैया मिल गए। मुझे वे विशेष स्नेह व सम्मान की दृष्टि से देखते थे। मुझे ऐसा ही आभास होता रहता था। हमेशा की तरह से आज भी उन्होंने पूछा, "कैसी चल रही है पढ़ाई ?"

"जी, ठीक चल रही है।" मैंने यथावत् उत्तर दिया।

कमल भैया जैसा सुंदर युवक मैंने अपने अब तक के जीवन में नहीं देखा था। यद्यपि मैंने उनके चेहरे व कद-काठी को ठीक से नहीं देखा था। कारण यह था कि वे पुरुष थे। फिर भी, मुझे पूरा विश्वास था कि वे हमारे शहर क्या, दुनिया के सबसे सुंदर युवक हैं।

कॉलेज पहुँचते ही मुझे पता चला कि विभा दी बहुत बीमार हैं। मुझे विश्वास ही नहीं हुआ। लेकिन बीमारी की बात सुनने पर मुझे बेचैनी होने लगी। मेरा मन पढ़ाई में भी नहीं लगा। एक खाली पीरियड में मैं सीधे ही विभा दी के घर की ओर चल दी। गली में मुड़ते ही मेरी भेंट फिर से कमल भैया से हो गई। कॉलेज के समय यहाँ होना मुझे अपराध-बोध का एहसास करवा रहा था।

"मैं मैडम के यहाँ जा रही थी, भैया।" मैंने उन्हें बिना पूछे ही बतला दिया।

"विभा मैडम के यहाँ न ?" उनके मुँह से ये शब्द सुनकर मुझे आश्चर्य ही हुआ।

"जी !" कहकर मेरी गर्दन झुक गई।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हम सब उन्हें भैया कहते थे। हालांकि 'भैया' शब्द का इस संबंध में कोई वास्ता न था। वे सांस्कृतिक कार्यक्रमों के सूत्रधार हुआ करते थे। उन दिनों वहाँ नृत्य, संगीत, कविता-पाठ आदि के कार्यक्रम होते ही रहते थे। उनमें भाग लेने के कारण हम लोग कमल भैया को जानते थे। उनकी वाणी से रस टपकता था। उनके नेत्रों से स्नेह बरसता था।

"सुमन— !" उन्होंने पीछे से धीरे-से पुकारा।

मैं आगे चल दी थी। मैं वहीं रुक गई थी। कमल भैया ने एक पत्रनुमा कागज मुझे पकड़ाते हुए कहा, "इसे तुम अपनी विभा मैडम को दे देना। मैं डाक से डालता लेकिन तुम उधर जा ही रही हो।"

सामने कुछ ही दूरी पर चाय की दुकान पर कुछ लोग बैठे हुए थे। मुझे पत्र लेते और उन्हें देते हुए संकोच तो अवश्य हुआ। फिर भी, वह लेन-देन हो ही गया।

मैं रास्ता पार कर सीढ़ियाँ चढ़ने लगी। न जाने आज मेरा हृदय किन बुरी आशंकाओं से ग्रसित हुआ जा रहा था! विभा दी के कमरे में पहुँचते ही मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। आज वहाँ इतने सारे लोग कहाँ से आ टपके? पाँच-सात जने जिनमें दो औरतें भी थीं। विभा दी बेसुध पड़ी थीं। मुझे पता चला कि अचानक ही उन्हें दिमागी बुखार चढ़ आया था। ऐसी दशा में मैं उन्हें कमल भैया का पत्र कैसे दे पाती? मैं बहुत चिंतित थी। वहाँ उपस्थित लोग भी मुझे अनजानी नजरों से देख रहे थे। इसलिए मैं पाँच-दस मिनट में ही वापस लौट आई थी।

कमल भैया और विभा दी के बारे में मेरी बुद्धि अटकलें लगाने लगी थी। लेकिन मुझे कोई हिसाब समझ में नहीं आ पाया। विभा दी न जाने कब तक पूरी तरह से ठीक हो पाएंगी। कमल भैया ने यदि पूछ लिया कि मैंने वह पत्र दे दिया या नहीं, तो मैं उनसे क्या कहूँगी? मैं ऐसा ही सोचती रही।

बेईमानी सिखाने से नहीं बल्कि स्वयमेव ही अपनी जड़ें जमाने की क्षमता रखती है। मेरे मन में भी तो खोट भर आया। मैंने रात के दो बजे कमल भैया का वह पत्र खोल लिया।

"प्रिय विभे! तुम ये न समझना कि मैं मुकर गया। लेकिन वास्तविकता यह है कि मैं इस शुष्क संसार के निरर्थक संबंध नहीं निभा सकता। हृदय की अंतरंग दुनिया में तुम्हारा प्रभाव अब मिटाया नहीं जा सकता। बस, तुम 'हाँ' कर दो तो मैं तुम्हें लेने आ जाऊँगा। स्वीकृति के बिना नहीं।— प्रतीक्षक, कमल।"

पत्र समाप्त हो गया। मेरी नींद तो पहले से ही काफूर हो चली थी। अब मेरा सिर भी घूमने लगा। फिर भी, मुझे एक आंतरिक प्रसन्नता थी कि मेरे दोनों ही मित्र प्रणय-सूत्र में बंधने जा रहे थे।

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

सुबह होते ही मैं कॉलेज जाने के लिए तैयार होने ही लगी थी कि पापा ने मेरे कमरे में आकर एक दुखद समाचार दिया— "सुमन बेटा, वो तुम्हारी हिंदी की मैडम नहीं रहीं। उन्होंने आत्महत्या कर ली।" वे और भी बहुत कुछ बोलते शायद। लेकिन मुझे इससे आगे कुछ भी सुनाई नहीं दिया। नाटक के एक अंक का अंत हो गया था, सुखांत या दुखांत, मैं नहीं जानती। अब मैं दौड़ कर विभा दी के कमरे में नहीं जा सकती थी। मैं उनकी शव-यात्रा में भी शामिल नहीं हो सकती थी। मैं भी तो लड़की थी, परतंत्र लड़की।

वह पत्र जिसे मैं फाड़ नहीं सकती थी और उसे अपने पास रखने का भी कोई औचित्य न था। बस, वह तो एक गुप्त पत्र था, एक समर्पित पत्र ! वह प्रेम का प्रमाण-पत्र था जो अब व्यर्थ ही था। इसके बाद मैंने कमल भैया को कभी नहीं देखा।

कॉलेज जाते ही मुझे एक पार्सल मिला। उसमें कमल भैया के नाम लिखे विभा दी के पत्र थे। जिनमें से एक भी प्रेम-पत्र नहीं था। फिर भी, विभा दी ने उन्हें मेरे नाम, मेरी निगरानी में छोड़ा। मेरा मन भर आया। मुझ पर इतना विश्वास, यह उनका मूक स्नेह ही तो था।

यदि मैं उस बीमारी की दशा में भी कमल भैया का वह पत्र विभा दी को दे देती तो शायद आज वे मुस्कराती हुई जिंदगी जीतीं। वे जीवन के बदलते मौसम का मोहक चित्रण कर रही होतीं।

लेकिन नहीं। बहुत-से लोग दुख उठाने के लिए तो जीवन गुजार देते हैं, पर सुख का एक क्षण भी उनसे नहीं जिया जाता। वे कूच कर जाते हैं। आज भी वे पत्र उसी प्रेम और सम्मान के साथ मेरे पास सुरक्षित हैं। काश ! मैं उनकी इस धरोहर की से रक्षा ईमानदारी कर सकूँ ! ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

बोझ

● भगवान अटलानी

अब तो यह प्रचलन नहीं रहा है किंतु आज से बीस-पच्चीस साल पहले लगभग सभी पत्र पत्रिकाओं में एक स्तंभ हुआ करता था, "पत्र मित्र"। इस स्तंभ में ऐसे लोगों के पते दिये जाते थे जो पत्र-मित्रता करने का शौक रखते थे। घर में, स्कूल कॉलेज में और सार्वजनिक पुस्तकालय में जाकर मैं और कुछ नहीं पढ़ता था। केवल उन लोगों के पते नोट करके ले आता था जिन्हें मुझे पत्र-मित्र बनाना होता था। अब यह स्वीकार करने में मुझे कोई हिचकिचाहट नहीं है कि बाल्यावस्था और युवावस्था के उस संधिस्थल पर मैं पत्र-पत्रिकाओं से जो पते नोट करके लाता था, उनमें से अधिकांश पते मेरी उम्र की लड़कियों के होते थे। मुझे घूमने का शौक था। बैडमिन्टन खेलता था। टिकट संग्रह करता था। पत्र-मित्रता के इच्छुक जिन लोगों के शौक मुझसे मिलते थे, लड़कियों के अलावा अगर मैं पते नोट करता था तो केवल उनके।

मेरी डाक में उन दिनों प्रतिदिन पचासों पत्र आते थे। स्कूल और कॉलेज के समय अलावा मैं पागलों की तरह पत्र लिखता रहता था। मन को एक खास तरह का संतोष और बल मिलता था, यह सोचकर कि देश के कोने-कोने में ही नहीं, विदेशों में भी मेरे मित्र हैं। ऐसा लगता था, जैसे विदेश और देश के कोने-कोने में मेरे कोई अपने बैठे हुए हैं। उस स्थान से सम्बन्धित कोई भी काम रुकेगा नहीं। अगर कभी मुझे वहाँ जाने का अवसर मिला तो कोई न कोई मित्र देखभाल के लिए उपस्थित रहेगा।

तब से लेकर अब तक मैं बहुत सफर तय कर चुका हूँ। चालीस वर्ष की अवस्था पूरी कर चुका हूँ। व्यवसाय है। एक लड़के और एक लड़की का पिता हूँ। सरकारी दफ्तर में यू.डी.सी. हूँ और मेरी ऋण लेकर मकान बनवाने की योजना बनाई हुई है। केवल योजना इसलिए क्योंकि लगता है जो अपना पैसा लगाना पड़ेगा, अभी तो इसकी व्यवस्था नहीं हो पाएगी। इसलिए मकान भी कुछ वर्षों के बाद बन पाएगा। माता-पिता का देहांत हो चुका है। तनख्वाह कट कटाकर केवल दो हजार चार सौ रुपये मिलती है। खींच खींचकर परिवार का काम चला लेता

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

हूँ। शहर से दूर पांच सौ रुपये महीने पर एक कमरे और कमरेनुमा रसोईघर वाला मकान किराये पर लिया हुआ है। बच्चे सरकारी स्कूल में पढ़ते हैं। और स्कूल से पैदल आते-जाते हैं। कुल मिलाकर फिलहाल काम चल जाता है। मेरे पास कुछ नहीं है, किंतु एक आशा है कि मेरा आर्थिक व सामाजिक जीवन एक दिन सोने, चाँदी और प्रतिष्ठा से भर जाएगा। इस आशावाद का कारण मुझे मालूम नहीं है किंतु समय की बैलगाड़ी को हाँकने की प्रेरणा यदि मुझे प्राप्त हुई है तो केवल इसी आशावाद से।

नून, तेल, लकड़ी की फिक्र ने मेरा सारा सुख सोख लिया है। महंगाई के कारण घूमने का कार्यक्रम मैं बना नहीं पाता। बैडमिंटन के लिए समय नहीं मिलता। टिकट संग्रह के लिए जितना समय और धन चाहिये, वह उपलब्ध नहीं है। व्यस्तता इतनी ज्यादा रहती है कि नए पत्र-मित्र बनाने की बात तो दूर रही, पुराने पत्र-मित्रों से भी संपर्क टूट गया है।

संपर्क टूटने का सिलसिला वर्षों पहले शुरू हो गया था। कुल दो ही लोग थे जिनके साथ पत्र-मित्रता बनी रही थी। उनमें से एक से कुछ वर्ष पहले मुलाकात हो चुकी है। इसलिए उसे अब पत्र-मित्र की संज्ञा देना उचित नहीं है। अब जिसे मैं सचमुच पत्र-मित्र कह सकता हूँ वह केवल एक व्यक्ति है, माइकल जॉन। वह स्वीडन में रहता है। मेरा हमउम्र है। वहाँ किसी केन्द्र का डाइरेक्टर है। विवाह नहीं किया है। अच्छा कमाता है और पत्र के आधार पर जो छवि मेरे मन में है, उसके अनुसार मस्त रहता है।

माइकल के साथ पत्राचार का सिलसिला लगातार चलता रहा है। बीच-बीच में कई बार विचार आया है कि माइकल के साथ पत्राचार जारी रखने में क्या तुक है ? मुझे स्वीडन जाना नहीं है। माइकल को मेरे पास आना नहीं है। मेरी हैसियत और औकात दोनों ऐसी नहीं हैं कि मैं माइकल की बराबरी कर सकूँ। मैं तो नव वर्ष, जन्मदिन और विवाह की सालगिरह पर भेजे गए उसके महँगे बधाई पत्रों का उसी रूप में उत्तर देने की स्थिति में भी नहीं हूँ। किंतु लगता है कि माइकल को मैं उस शहतीर की तरह देखने लगा हूँ जो तूफान से हहराते समुद्र में डूबते उतराते व्यक्ति का सहारा होता है। दूर देश में बैठा हुआ एक धनिक मेरा मित्र है, यदि इस विश्वास को मैं पत्रों के जरिये बनाये रख सकता हूँ तो क्या बुरा है ? फिर माइकल से चलने वाला पत्र-व्यवहार मुझे याद दिलाता रहता है कि सभी सैकड़ों की तादाद में मेरे पत्र-मित्र हुआ करते थे।

माइकल से मुलाकात की संभावना, आशा और शायद इच्छा भी मेरे मन में कभी पैदा नहीं हुई। लगता था कि कभी जब माइकल को उसके पत्रों के उत्तर नहीं

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मिलेंगे तो अनेक कल्पनाओं में से एक कल्पना वह यह भी करेगा कि मैं मर गया हूँ और इसलिए उसके पत्रों के उत्तर नहीं दे रहा हूँ। माइकल के कारण सचमुच का कोई तूफान मुझे लपेटता हुआ निकल जाएगा, यह कल्पना तो छोड़ दीजिए, उसके साथ मेरी पत्र-मित्रता चाय के प्यालों में तूफान का कारण बनेगी—ऐसा भी मुझे नहीं लगा कभी।

किंतु जीवन यदि लगी बँधी लीक पर चलता होता तो उसका नामकरण कुछ और करना पड़ता। एक दिन माइकल का पत्र मिला कि वह भारत आ रहा है। भारत-यात्रा के दौरान वह मेरे पास भी आएगा। मेरे पास आने की अपेक्षित तारीख भी लिखी थी उसने। दो रातें और ढाई दिन मेरे पास रुकेगा वह। फिर चला जाएगा।

माइकल के आगमन की सूचना ने मुझे एक साथ दो तटों पर फेंक दिया। एक भाव मुझे खुशी से सराबोर कर गया था और दूसरा भाव इस चिंता में डुबो गया था कि माइकल का आतिथ्य मैं कैसे करूँगा? दोनों भाव समान रूप से प्रभावशाली थे। मेरा एकमात्र पत्र-मित्र विदेश से आ रहा है। मेरी पत्र मित्रता की उपलब्धि है उसका आगमन। पत्र मित्रता का अंतिम उद्देश्य मुलाकात और उसके बाद वास्तविक मित्रता होता है। माइकल का आगमन पत्र मित्रता के सपने को सच में परिणत कर रहा था। जीवन की कुछ गिनी-चुनी खुशियों में से एक थी यह सूचना मेरे लिए।

सीमित आय में से कतर-ब्यौंत करके किसी तरह मैं परिवार की जरूरतों की पूर्ति करता हूँ। इस क्रम में मित्रों, परिचितों से रुपये उधार माँगकर काम चलाने का सिलसिला अनिवार्यतः मेरे साथ जुड़ गया था। किंतु किसी तरह एक से लेकर दूसरे के कर्ज को चुकाकर मैं अपनी साख बचा लेता था। माइकल धनाढ्य है। विदेशी है। सुख-सुविधाओं का आदी है। बहुत कम समय के लिए मेरे पास आ रहा है। उसका आतिथ्य सही तरीके से करना ही होगा। आतिथ्य करने का अर्थ था रुपया। वह मेरे पास था नहीं।

माइकल के आने की खुशी और उसके आतिथ्य पर होने वाला खर्च अपने-अपने तरीके से मुझे अपनी चपेट में ले रहे थे। कभी विचार आता, माइकल के पत्र का उत्तर ही नहीं दूँ। जिन दिनों वह आएगा, शहर छोड़कर कहीं और चला जाऊँगा। माइकल संपर्क करेगा। यह कहकर कि मुझे पत्र मिला ही नहीं है, शायद मैं माइकल के आतिथ्य से बच जाऊँगा। फिर सोचता था कि माइकल मेरा एकमात्र पत्र मित्र है। विदेश से आ रहा रहा है। केवल मुझसे मिलने के लिए। अगर उधार भी लेना पड़े तो क्या बुराई? माइकल के आने से मुझे जो खुशी मिलेगी, उसकी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

कीमत दो हजार रुपये से तो नहीं आंकी जा सकती ?

कुछ दिनों तक मैं ऊहापोह में फँसा रहा । कभी माइकल का स्वागत करने की भावना बलवती हो जाती और कभी रुपये उधार लेकर उसका आतिथ्य करने की मजबूरी उसे दबा देती । अंतत: तय किया कि माइकल को पत्र लिखकर यात्रा के कार्यक्रम के लिए उसे धन्यवाद देते हुए प्रसन्नता व्यक्त करूँगा और उसे यह एहसास होने नहीं दूँगा कि उसके स्वागत में मैंने कोई कमी छोड़ी है । यों भी मुझे लगता था कि शायद उसके आने पर इतने रुपए खर्च नहीं करना पड़ेगा । वह होटल में रुकेगा । होटल के माध्यम से टैक्सी की व्यवस्था करेगा । घूमने फिरने पर जो खर्चा आएगा, अधिक से अधिक वही बर्दाश्त करना पड़ेगा मुझे ।

हम दोनों के पास एक दूसरे के चित्र थे । फिर भी मैंने उसे लिखा कि ऐरोड्राम पर मैं एक काली टोपी पहनकर पहुंचूँगा । उसके आधार पर मुझे पहचानना उसके लिए संभव हो सकेगा । बीवी और बच्चे मेरी ही तरह उत्सुकता के साथ उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे । जिस दिन सुबह माइकल को आना था मैं टैक्सी लेकर हवाई अड्डे गया । इससे पहले केवल एक बार हवाई अड्डे जाने का मौका मिला था । इसलिए कानून कायदों की जानकारी मुझे नहीं थी । थोड़ा बहुत देख समझकर, थोड़ा बहुत आश्चर्यचकित होते हुए, थोड़ा बहुत घबराहट महसूस करते हुए अपने पहुँचने और हवाई हजाज के आने के बीच का लगभग एक घण्टा मैं भीतर से असामान्य महसूस करता रहा । गर्मी बहुत ज्यादा थी किंतु सुबह का समय होने के कारण सिर पर ओढ़ी हुई काली टोपी मुझे परेशान नहीं कर रही थी । यह बात अलग है कि हवाई हड्डे की लाऊँज में मैं अकेला व्यक्ति था जिसने काली टोपी तो क्या कोई टोपी भी पहन रखी थी । अलबत्ता माइकल के यहाँ रहने की अवधि में पहनने के लिए मैंने माँग कर अच्छे कपड़ों की व्यवस्था कर ली थी ।

माइकल आया । उसने दूर से ही मुझे पहचान लिया । मेरे लिए उसे पहचानना मुश्किल काम था नहीं । मैंने तपाक से माला पहनाकर, हाथ न मिलाकर भारतीय पद्धति से उसे गले लगा लिया । सचमुच उसे गले लगाऊँगा, इस तरह की कोई योजना मैंने नहीं बनाई थी, किंतु उसे देखकर मेरे अंदर कुछ ऐसा भावोद्रेक हुआ कि मुझे ध्यान ही नहीं रहा, वह विदेशी है और उससे हाथ मिलाना चाहिए या गले लगाकर मिलना उसके लिए अपरिचित और आश्चर्यचकित करने वाली तहजीब है । बाद में टैक्सी में माइकल ने मुझे बताया कि इस तरह गले लगाकर स्वागत करना उसे बहुत अच्छा लगा था । यों भी नई चीज का आकर्षण व्यक्ति को अधिक खींचता है । फिर इस मामले में तो यह केवल नई चीज ही नहीं थी । भावना व्यक्त करने का माइकल के लिए सर्वथा अनजाना, एक अनूठा तरीका भी था । टैक्सी में

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

मैंने माइकल से पूछा, "जिस घर में मैं रहता हूँ, वह बहुत छोटा है। वहाँ रहोगे तो तुम्हें वे सुविधाएँ नहीं मिल पाएंगी जिनके तुम आदी हो। इसलिए तुम पर कुछ थोप नहीं रहा हूँ। बताओ, घर चलोगे या होटल में ठहरना चाहोगे ?"

माइकल जैसे पहले से ही तय करके आया था। बिना हिचकिचाए उसने जवाब दिया, "तुम्हारे घर चलूँगा। बीस साल से पत्र-मित्र हूँ। तुम ढाई दिन के लिए मिल रहे हो। मैं तुम्हें और तुम्हारे परिवार को निकट से देखना चाहता हूँ।"

मैं जोर से हँसा, "इस कीमत पर भी कि इन ढाई दिनों में जो असुविधाएँ तुम्हें मिलेंगी, उन्हें जीवन भर भूल नहीं पाओगे।"

"तुम्हारी आत्मीयता का स्वाद एरोड्रम पर चख चुका हूँ। मैं समझ सकता हूँ कि जीवन भर मुझे क्या याद रहेगा ?"

एक समानांतर विचार माइकल से बातचीत करते हुए लगातार मुझमें दौड़ रहा था, "अच्छा हुआ, मैंने रुपयों की व्यवस्था कर ली है। अगर यह सोचकर कि माइकल होटल में रुकेगा, रुपयों की व्यवस्था नहीं करता या कम रुपयों की व्यवस्था करता तो क्या होता ?"

घर पहुँचने के बाद चाय पिलाकर मैंने माइकल को नहा धोकर तैयार होने के लिए कहा। जब तक वह तैयार होता, टैक्सी में बाजार जाकर माइक़ल के उचित आतिथ्य को ध्यान में रखते हुए मैंने खरीदारी की। सूखा मेवा, फल, मिठाई, नमकीन, अलग-अलग तरह की सब्जियाँ, सलाद के लिए जरूरी सामान, रोयेंदार दो तौलिये, पीयर्स साबुन की दो बट्टियाँ और इसी तरह की चीजें खरीदकर जब मैं घर लौटा तो माइकल नहा धोकर तैयार हो गया था। जब तक भोजन तैयार हुआ, मैंने माइकल के सामने सूखे मेवे पेश कर दिए। अंदर जाकर पत्नी से मैं बहुत सख्ती से कहकर आया कि जो सामान माइकल के लिए आया है, उसमें से कुछ भी बच्चों को नहीं देना है।

भोजन करके हम लोग शहर घूमने के लिए निकले। टैक्सी से जाते हुए रास्ते में एक गाँव पड़ा। उसे देखकर माइकल ने कहा, "भारत को गाँवों का देश कहा जाता है। मुमकिन हो तो किसी गाँव में ले चलो।"

माइकल को किसी गाँव में ले जाना तभी उचित होता, जब मेरे लिए वहाँ उसके आतिथ्य की, उसके घूमने-फिरने की, गाँव को देखने की दृष्टि से व्यवस्था करना संभव होता। चालीस किलोमीटर दूर एक गाँव में कॉलेज में साथ पढ़ा हुआ एक लड़का रहता है। वहाँ के स्कूल में अध्यापक है। बहुत सारी जमीन है जिस पर खेती होती है। दस-बीस गायें, भैंसें हैं। पक्का मकान है। जब उसकी शादी हुई, तब एक बार वहाँ गया था। इसके बाद जाने का अवसर तो नहीं मिला लेकिन जब

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

भी मुलाकात हुई, उसने हर बार मुझसे गाँव आने का आग्रह किया है। मगर माइकल के साथ वहाँ जाने का अर्थ होता ढेर सारा खर्चा। अस्सी किलोमीटर तो टैक्सी ही चलती। फिर रास्ते के लिए खाने पीने का सामान, शीतल पेय और इसी तरह की दूसरी चीजों की व्यवस्था करनी पड़ती। गर्मियों के दिन थे। सारी बातें उसी के अनुसार सोचनी जरूरी थीं। इसलिए मैं चाहता था कि माइकल की गाँव देखने की इच्छा को अगर किसी तरीके से टाला जा सके तो अच्छा है।

शहर से कोई दस-बारह किलोमीटर दूर पिछले दो साल से एक रेस्टोरेन्ट चल रहा है। कभी गया तो नहीं हूँ वहाँ, मगर सुना है कि इस रेस्टोरेन्ट में ग्रामीण परिवेश में, ग्रामीण खाद्य पदार्थों के साथ आगंतुकों को ग्रामीण वातावरण से परिचित कराया जाता है। गाँवों में जिस तरह की झोपड़ियाँ बनी होती हैं, जिस तरह चूल्हों पर खाना बनाते हैं, चौपाल पर जिस तरह बैठक होती है, उत्सवों पर जिस तरह के ग्रामीण नृत्य होते हैं और गाँव की रसोई में जैसे बाजरे की रोटी, खीचड़ा, राबड़ा, खट्टा आदि चीजें बनती हैं, वही सब वहाँ आने वालों को देखने और खाने को मिलता है। धोती और बंडी पहन कर ग्रामीण भाषा में बात करते हुए ग्रामीण रंग-ढंग से अभिवादन करते हैं। कृत्रिमता को असलियत का जामा पहनाने की पूरी व्यवस्था है रेस्टोरेन्ट में। यदि माइकल को उस रेस्टोरेन्ट में ले जाया जाए तो हो सकता है कि पैसा कुछ ज्यादा खर्च हो जाए किंतु चालीस किलोमीटर दूर जाकर गाँव देखने की तुलना में वह खर्च कम ही होगा। फिर रात का खाना घर पर नहीं बनेगा तो कुल मिलाकर जो अतिरिक्त खर्चा आएगा, वह बहुत ज्यादा नहीं होगा। मैंने माइकल के सामने प्रस्ताव रखा। हिचकिचाते हुए माइकल को मेरा प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा।

शाम को घर लौटकर फल, सूखे मेवे और नमकीन के बाद चाय पिलाकर मैं माइकल को निर्धारित रेस्टोरेन्ट में ले गया। वातावरण सचमुच वैसा ही बनाया गया था, जैसा मैंने सोचा था। एक मुश्त सौ रुपये प्रति व्यक्ति के हिसाब से लेकर उस रेस्टोरेन्ट में प्रवेश दिया गया। किंतु अंदर जाने पर किसी भी चीज पर किसी भी चीज के लिए कुछ भी खर्च करने की जरूरत नहीं थी। पाँच बीघे में बने, रेस्टोरेन्ट के परिसर में हर ओर विद्युत चालित लालटेनें जल रही थी। योजनापूर्वक अनपढ़ दिखाई देने वाले एक तालाब में नाव डालकर बोटिंग की व्यवस्था की गई थी। एक जगह कठपुतली के खेल की व्यवस्था थी। गाँवों में चलने वाले कुटीर उद्योगों की अनुकृतियाँ थी। अलग-अलग तरह की, गाँवों की तर्ज पर झोपड़ियाँ बनाकर उनकी सजावट की गई थी। मूंज की चारपाई थी, पेड़ों में लटके झूले थे। मचानें थीं। इधर उधर घूमने के लिए ऊँट और हाथी थे। धरती पर बैठकर पल

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

में रोटी और खीचड़ा, दोनों में आलू, गट्टे की सब्जी और कड़ी खाने की व्यवस्था थी। व्यवस्थित तरीके से गाँव को परोस दिया गया था।

प्रवेश के समय "राम राम सा" और प्रस्थान के समय "फिर पधारजो सा" का अर्थ मैंने माइकल को बताया तो गाँव को प्रत्यक्ष रूप से देखने की उसकी इच्छा बलवती हो गई। न चाहते हुए भी मुझे माइकल को साथ लेकर चालीस किलोमीटर दूर उस गाँव में जाने की बात निश्चित करनी पड़ी जहाँ मेरा मित्र रहता था।

घर का एक कमरा माइकल के लिए सुरक्षित कर दिया गया था। मैं, पत्नी और बच्चे रसोईघर के दूसरे कमरे में थे। रात को कमरों में बहुत गर्मी थी। हम लोग मकान की छत पर सोते थे। एक चारपाई छत पर डालकर मैंने माइकल का बिस्तर भी वहीं लगाया। हम सब को तो आदत थी। इसलिए सोते ही नींद आ गई। किंतु थोड़ी देर बाद माइकल ने मुझे सोते से जगाया। उसे मच्छर तंग कर रहे थे। रात के बारह बज चुके थे। उस समय मच्छरदानी की व्यवस्था करना संभव नहीं था। कोई विकल्प न देखकर मैंने माइकल के सामने प्रस्ताव रखा कि वह मेरे साथ होटल चला चले। रात को वहाँ सोकर सुबह फिर घर लौट आये। किंतु वह इसके लिए तैयार नहीं हुआ।

कमरे में सुलाना संभव नहीं था। गर्मी बहुत ज्यादा थी। छत पर वह सो नहीं सकता था, मच्छर काटते थे। होटल जाने के लिए तैयार नहीं था। मैं समझ नहीं रहा था कि ऐसी स्थिति में क्या किया जा सकता है? आखिर रात के उस विषम पहर में मैंने पड़ोसियों का दरवाजा खटखटाया। गृहस्वामी आँखें मलते हुए किसी तरह नीचे आए। दरवाजे के पास मुझे देखकर पहले तो उन्हें समझ में नहीं आया कि मैं क्यों आया हूँ? फिर धीरे-धीरे मेरी पीड़ा उनकी समझ में आई। उन्होंने मच्छरदानी और उसके डंडे लाकर दिए। मुझे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे किसी ने मेरे ऊपर जीवन का सबसे बड़ा उपकार कर दिया हो। लौटकर मच्छरदानी लगाकर मैंने माइकल के सोने की व्यवस्था की। मुझे नहीं मालूम कि इसके बाद माइकल को अच्छी तरह नींद आई या नहीं, किंतु रात को मुझे जगाया नहीं उसने।

सुबह नाश्ता करके हम लोग घूमने निकल गए। लगभग बारह बजे माइकल ने खरीदारी करने की इच्छा जाहिर की। बाजार से दो बजे तक कुछ कीमती पत्थर, बगरू प्रिन्ट की चादर और संगमरमर की दो छोटी मूर्तियाँ माइकल ने खरीदीं। वैसे तो हर जगह सचमुच या दिखावे के तौर पर खरीदी हुई चीजों का भुगतान करने की मैंने कोशिश की किंतु कहीं भी माइकल ने मुझे रुपये देने नहीं दिए। संगमरमर की दोनों छोटी मूर्तियाँ मैंने अपनी ओर से उपहार के रूप में उसे दीं। घर लौटकर भोजन करके तीसरे पहर हम लोग गाँव के लिए निकल पड़े। टैक्सी

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

को मैंने छोड़ा नहीं था और न माइकल के जाने तक छोड़ने की गुंजाइश थी। उसी से हम लोग लगभग पाँच बजे गाँव में पहुँचे।

मित्र ने देखा तो बहुत खुश हुआ। एक विदेशी को मैं साथ लेकर आया हूँ, इससे उसकी प्रसन्नता और बढ़ गई। जब उसे बताया कि माइकल वहाँ की हर चीज को स्वयं देखना चाहता है तो उसने मुझे आश्वस्त किया कि गाँव में जो कुछ है, उसका दिग्दर्शन माइकल को अच्छे ढंग से करा देगा।

गाँव आने से पहले मुझे कल्पना तो थी, किंतु यहाँ जो असुविधाजनक स्थितियाँ सामने खड़ी थीं, वे मेरी कल्पना से बहुत ज्यादा थीं। गाँव में बिजली थी, किंतु उसकी आँखमिचौनी लगातार चलती रहती थी। गोबर के ढेर लगे हुए थे। ऊबड़ खाबड़ कच्चे रास्ते थे। बेतरतीब ढंग से बहती नालियाँ थी। अधिकांश मकान भी कच्चे थे। मुझे सबसे ज्यादा डर यह लग रहा था कि रात को यहाँ सोना कैसे संभव होगा माइकल के लिए ?

मित्र ने हमें जिस कमरे में ठहराया था उसमें दो चारपाइयाँ थी। कोने में अनाज के ढेर लगे हुए थे। बिजली नहीं होने के कारण पंखा बंद था। हालाँकि एक बहुत बड़ी खिड़की बाहर की तरफ खुलती थी, मगर बाहर सूख रहे छानों की गंध असह्य प्रतीत होती थी। हमारे कमरे के साथ सटी हुई रसोई में लकड़ियों से चूल्हा जल रहा था। धुआँ वातावरण में था और धुएँ की कड़वाहट हमारी आँखों में थी।

थोड़ी देर में मित्र गाँव के सरपंच को ले आया। उसके साथ गाँव के आठ-दस दूसरे गण्यमान्य लोग भी थे। मकान के सामने खुले में कीचड़ और बहती नालियों के बीच चारपाई डालकर हम लोग बैठ गए। भाषा माइकल की समझ से बाहर थी। मैं दुभाषिये का काम कर रहा था।

कुछ समय के बाद सरपंच हम लोगों को गाँव की चौपाल पर ले गया। पंद्रह बीस लोग वहाँ पर बैठे थे। वहाँ होने वाली बातचीत का अनुवाद करना तो संभव नहीं था किंतु मैं जो कुछ देखता, उसे बीच-बीच में माइकल को बता देता था। भाषा की अपारदर्शी ठोस दीवार बीच में होने के बावजूद, आँखों, चेहरों और प्रभाव से झलकता सम्मान माइकल बखूबी समझ पा रहा था। लगभग आठ बजे हम लोग उठकर घर आए।

मित्र अपने घर के पास बने कुएँ पर हमें ले गया। वहीं बाल्टी से पानी खींचकर उसने हम लोगों से हाथ-मुँह धोने का आग्रह किया। इसके बाद हम रसोई के सामने बने चौक में आकर बैठ गए। माइकल को फर्श पर बैठने में दिक्कत हो रही थी। पालथी मारकर बैठना उसके लिए श्रमसाध्य काम था। किंतु हम लोगों की देखा-देखी वह उसी तरह बैठने की चेष्टा कर रहा था। भोजन में दाल, बाटी,

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

चूरमा और खीर परोसी गई। सामने चौकियाँ रखी गईं थीं। जिस प्यार और मनुहार के साथ मित्र ने भोजन कराया उसे देखकर माइकल अंदर तक भीग गया। रात को छत पर सोने की व्यवस्था थी। मुझे डर था कि माइकल फिर मुझे बारह बजे जगाएगा। किंतु शायद हवा के प्रवाह की तेजी थी या कोई और कारण कि चारों ओर फैली गंदगी के बावजूद वहाँ मच्छर नहीं थे। खुली छत, ठण्डी हवा और चारों ओर छितरी हुई चाँदनी में उल्टी लटकी तारों की थाली देखकर माइकल अभिभूत था। ऐसा वातावरण उसे आज तक कभी देखने को मिला नहीं था। माइकल की आनंदावस्था देखकर गाँव में प्रवेश के बाद महसूस हुई शर्म मुझसे कोसों दूर भाग गई थी।

सुबह उठे तो हम लोग बहुत तरोताजा थे। निवृत्त होने के लिए गाँव से दूर जब खेतों में गए तो मित्र गाँव के भूगोल, खेत में होने वाली उपज, सिंचाई-व्यवस्था और उपज से होने वाली आमदनी के बारे में विस्तार से बताता रहा। लौटते हुए गाँव का तालाब भी दिखाया उसने। स्नान हम लोगों ने घर के बाहर बने कुएँ पर किया। इस बार कुएँ से पानी खींचने का काम माइकल ने किया। अपने लिए ही नहीं, उसने मेरे लिए और मित्र के लिए भी कुएँ से पानी खींचा। पानी खींचने की प्रक्रिया में उसके हाथों में छाले पड़ गए। मगर नए अनुभव का जो सुख उसे मिल रहा था, वह छालों की तुलना में बहुत बड़ा था।

माइकल को शाम की फ्लाइट से जाना था। इसलिए अधिक से अधिक बारह बजे लौटना हम लोगों के लिए जरूरी था। ग्यारह बजे हम लोग भोजन करने के लिए बैठे। इस बार भोजन में खाद्य सामग्री लगभग वैसी ही थी, जैसी हम लोगों ने ग्रामीण परिवेश वाले रेस्टोरेन्ट में खाई थी। किंतु हर चीज देशी घी में बनी हुई थी। हर चीज में प्यार और अपनत्व भरा था। इसलिए हर चीज का स्वाद भी बढ़ गया था। माइकल ने तो कह भी दिया, "उस रेस्टोरेन्ट में जो कुछ मैंने देखा था, यहाँ नहीं आता तो उसी की छवि मेरे साथ रहती। यहाँ आकर पता लगा कि गाँव उससे कहीं अधिक आत्मीय और बहुत ज्यादा तनावमुक्त है।"

हम लोग रवाना होने लगे तो लगभग पूरा गाँव विदा देने के लिए एकत्र हो गया। लगता था कि कुछ घण्टों के सहवास के दौरान ही माइकल के साथ लोग इतने जुड़ गये थे कि हमारा लौटना उन्हें अखर रहा था। दूर देश जाने वाले किसी आत्मीय की तरह हमें विदा देने के लिए इकट्ठे हुए लोगों के चेहरों पर विषाद और आँखों में अफसोस था। माइकल के मन में भी कुछ टूटने जैसी अनुभूति थी। अनेक वर्षों तक साथ रहने के बावजूद जितना मोह पैदा नहीं होता, माइकल के मन में इस गाँव से चलते समय उससे ज्यादा मोह पैदा हो गया था। बाकी लोगों से

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

तो वह हाथ मिलाकर विदा हुआ किंतु मित्र को उसने अपने आलिंगन में कस लिया था। आँखों में आँसू नहीं थे, बाकी सब कुछ था माइकल के चेहरे पर गाँव से रवाना होते समय।

देर तक और दूर तक हिलते हुए हाथों के बीच हमारी गाड़ी जल्दी ही गाँव से निकलकर मुख्य मार्ग पर आ गई। माइकल पूरी तरह चुप था। संभवत: अपनी भावनाएँ वह मुझसे बाँटना चाहता था किंतु उपयुक्त शब्द उसे मिल नहीं रहे थे। मैंने भी जानबूझकर मौन वार्तालाप की स्थिति को तोड़ा नहीं।

हम लोगों की विचार तंद्रा तब टूटी, जब गाड़ी झटके के साथ एक पेट्रोल पंप पर आकर रुकी। ड्राइवर ने गाड़ी में से उतरकर पेट्रोल भरवाया। भुगतान करते समय खिड़की के पास आकर उसने मुझसे दो सौ रुपये मांगे। मैंने जेब टटोली। कागजों समेत जो कुछ था बाहर निकल आया। रुपयों को अलग किया। गिनकर देखा तो 142 रुपये थे। मैंने 100 रुपये का नोट ड्राइवर को देते हुए कहा, "अभी सौ रुपये ले लो। बाकी फिर देख लेंगे।"

"भाई साहब, मैंने दो सौ रुपये का पेट्रोल गाड़ी में भरवा लिया है।"

"कोई बात नहीं है। सौ रुपये अपने मिला लो।"

"मेरे पास होते तो मैं आपसे नहीं माँगता। यहाँ तो भुगतान करना ही पड़ेगा।"

मुझे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ ? 142 रुपये खींचकर दो सौ रुपये बना नहीं सकता था। ड्राइवर के पास रुपये थे नहीं। भुगतान करना जरूरी था। मैंने कुछ देर खामोश रहने के बाद ड्राइवर से पूछा, "तुम्हारे पास कितने रुपये हैं ?"

"बीस-पच्चीस रुपये होंगे।"

मैं फिर सोचने लगा। कोई रास्ता नहीं मिल रहा था। ड्राइवर खिड़की के पास मुझे घूरता खड़ा था। तभी शायद माइकल को बात समझ में आ गई। उसने जेब से सौ-सौ के कुछ नोट निकाले और ड्राइवर की तरफ बढ़ा दिये। ड्राइवर ने सौ रुपये का नोट लेकर बाकी रुपये माइकल को लौटा दिये। मेरे दिये सौ रुपये और माइकल का दिया हुआ सौ का नोट लेकर वह भुगतान करने चला गया। मैं लज्जा से गड़ा जा रहा था। समझ में नहीं आ रहा था, माइकल से क्या कहूँ ? माइकल ने ही बाँह बढ़ाकर मुझे अपनी तरफ खींचा। मैंने उसकी आँखों में देखा। वहाँ उदारता, निश्छलता और आत्मीयता के विस्तृत आकाश का प्रतिरूप था। अपनत्व की एक रोशनी उसकी आँखों में थी। हम दोनों में से किसी ने कुछ नहीं कहा। मैंने अपनी आँखें झुका ली और वह बहुत देर तक मुझे अपने आप से सटाये रहा।

घर लौटने के बाद माइकल ने पैकिंग की। इस दौरान मैंने कुछ रुपयों की

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

व्यवस्था की और बाजार जाकर माइकल को देने के लिए सौ ग्राम रुई की एक रजाई लेकर आया। जब लौटा तो माइकल पैकिंग पूरी कर चुका था। मैंने रजाई उसके हैण्डबैग में डाल दी। माइकल ने न कुछ कहा और न विरोध किया।

एयरपोर्ट जाने का समय हो गया था। दरवाजे पर विदा देने के लिए पत्नी और दोनों बच्चे आ गए थे। उसने झुककर बच्चों को प्यार किया और यहाँ आने के बाद सीखा हुआ हाथ जोड़कर नमस्कार करके उसने पत्नी को धन्यवाद दिया।

एयरपोर्ट आकर उसने गाड़ी में से उतरते हुए मुझे अपना कैमरा दिया। "इसे मेरी निशानी समझकर अपने पास रखना।" मैंने विरोध करना चाहा, किंतु माइकल ने बोलने का अवसर ही नहीं दिया। सिक्योरिटी चेक के लिए माइकल जब रवाना हुआ तो मैं बाहर निकलकर गाड़ी में आ बैठा।

ऐरोड्रम से घर की तरफ आते हुए मुझे जो सबसे बड़ी चिंता सता रही थी, वह थी माइकल की यात्रा के दौरान हुए लगभग ढाई हजार रुपये के कर्ज की वापसी की चिंता। माइकल के साथ ने मुझे बहुत सुख दिया था किंतु वह सुख कितना महँगा था? माइकल को अपना कैमरा मुझे देने की क्या जरूरत थी? जब तक ढाई हजार रुपये का कर्ज चुक नहीं जाता, तब तक तो माइकल को याद रखना पड़ेगा मुझे! अगर उसका दिया हुआ कैमरा बेच भी दूँ तो कितना पैसा मिल जाएगा?

मैंने जैसे ही घर में प्रवेश किया, पत्नी लगभग दौड़ती हुई मेरे पास आई, "आपके मित्र यह लिफाफा भूल गए हैं। बहुत सारे नोट पड़े हैं इसमें। उन्होंने जहाँ अपना सामान पैक किया था, वहीं यह लिफाफा भी पड़ा था। हवाई जहाज चला नहीं गया हो तो जल्दी से जाकर यह लिफाफा लौटा दीजिए।"

मैंने पत्नी से वह लिफाफा लिया। देखा, उसमें छोटे-बड़े मिलाकर पाँच सौ डालर थे। लगभग दस हजार रुपये। लिफाफे में एक पर्ची भी थी। उस पर अंग्रेजी में लिखा था, "मेरी वजह से तुम्हारा बहुत सारा पैसा खर्च हो गया है। तुम्हारे प्यार को पैसे से नहीं तोला जा सकता। मेरे कारण तुम्हें कोई तकलीफ हो, यह मैं नहीं चाहता। इसलिए यह लिफाफा छोड़ रहा हूँ। जो अपनत्व तुमने मुझे दिया है, उसे मरते दम तक भूल नहीं सकूँगा....।"

मैं मूर्तिवत् निश्चल खड़ा था और पत्नी बार-बार मुझे जाने के लिए कह रही थी। ••

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

रचनाकारों से सम्पर्क

1. **सिम्मी हर्षिता**
के-24, लाजपत नगर-III,
नई दिल्ली-110024
दूरभाषः (011)-6833601

2. **कुमारी नीर 'शबनम'**
(कु. निर्मला शंकरराव चांदेकर)
चित्रवीथी, समाधि वार्ड,
चंद्रपुर, महाराष्ट्र-442402

3. **डॉ. अज़रा 'नूर'**
37, कालका माता रोड, गणेश नगर
पहाड़ा, उदयपुर
राजस्थान-313001

4. **डॉ. आदर्श मदान**
'आदर्श निकुंज,' डॉ. क्षेत्रपाल
क्लीनिक के पीछे, कचहरी रोड,
अजमेर, राजस्थान- 305001
दूरभाष- 42978

5. **डॉ. अपर्णा चतुर्वेदी 'प्रीता'**
6/393, मालवीय नगर,
जयपुर, राजस्थान-302017
दूरभाष : 141-550591

6. **सैली बलजीत**
132, के.वी. सब स्टेशन, ढांगू रोड,
पठानकोट, पंजाब

7. **कृष्ण मनु**
बी-3/35, मुनीडीह, (धनबाद)
बिहार-828129

8. **नीलप्रभा भारद्वाज**
56-एच ब्लाक, श्रीगंगानगर,
राजस्थान
फोन- 32956

9. **निर्मला सिंह**
185-ए, सिविल लाइन्स,
बरेली-उत्तर प्रदेश-243001
दूरभाष- 0581-471214, 479775
मोबाइल- 098370-32297

10. **सरला अग्रवाल**
आस्था, 5 बी-20, तलवंडी, कोटा,
राजस्थान-324005
दूरभाष- 422060

11. **सुषमा चौहान**
केंद्रीय विद्यालय, वायु सेना
अर्जुनगढ़,
नई दिल्ली-110047

12. **निर्मला सिंह**
फ्लैट नं.-24-सी, ब्लाक यू ऐंड वी,
शालीमार बाग, दिल्ली- 110032
दूरभाषः 011-7210611

13. **डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी**
'आश्रय', नई नगड़ा टोली,
चौथी गली (पूरब),
रांची, (बिहार) -834001

14. **कांतिलाल ठाकरे**
6 विश्वकर्मा नगर, अन्नपूर्णा मार्ग,
इंदौर, मध्य प्रदेश।
दूरभाष- 0731-481488

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

15. कमलेश भट्ट कमल
34-ए, मयूर विहार, मथुरा
उत्तर प्रदेश-281001
दूरभाष- 400377

16. डॉ. विमला उपाध्याय
वृंदावन, राजेन्द्र पथ, धनबाद
बिहार- 826001
दूरभाष- 0326-205928

17. डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
वृंदावन, राजेन्द्र पथ, धनबाद,
बिहार-826001
दूरभाष- 0326-205928

18. किशनलाल शर्मा
8/193, भोगीपुरा, आगरा,
उत्तर प्रदेश-282010

19. भगवती प्रसाद द्विवेदी
द्वारा-महाप्रबंधक, दूरसंचार जिला,
पो.बा. 115,
पटना (बिहार)-800001
दूरभाष- 0612-232973

20. चन्द्रभान राही
मोहनी होम्स, टी-आई-376,
बी सेक्टर, सर्वधर्म कोलार मार्ग,
भोपाल, मध्य-प्रदेश।

21. कु. अनिता सिंह चौहान
20, रामहारा, रोजगार कार्यालय
के पास, विदिशा, मध्य प्रदेश।

22. सुमन शर्मा
क्वा. नं. ई-127/2 बी., खेतड़ी नगर
राजस्थान 333504
दूरभाष: 01513-20552

23. भगवान अटलानी
ए/13, जटिया हिल्स, लोहागल रोड
अजमेर, राजस्थान-305006
फोन- 0145-52755

□□

SPS Central Library
Acc No. 70781
Srinagar

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust.

CC-0. In Public Domain. Funding by IKS-MoE